MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

आधुनिक हिन्दी काव्य

बैचलर ऑफ़ आर्ट्स (बी.ए.)

तृतीय सेमेस्टर

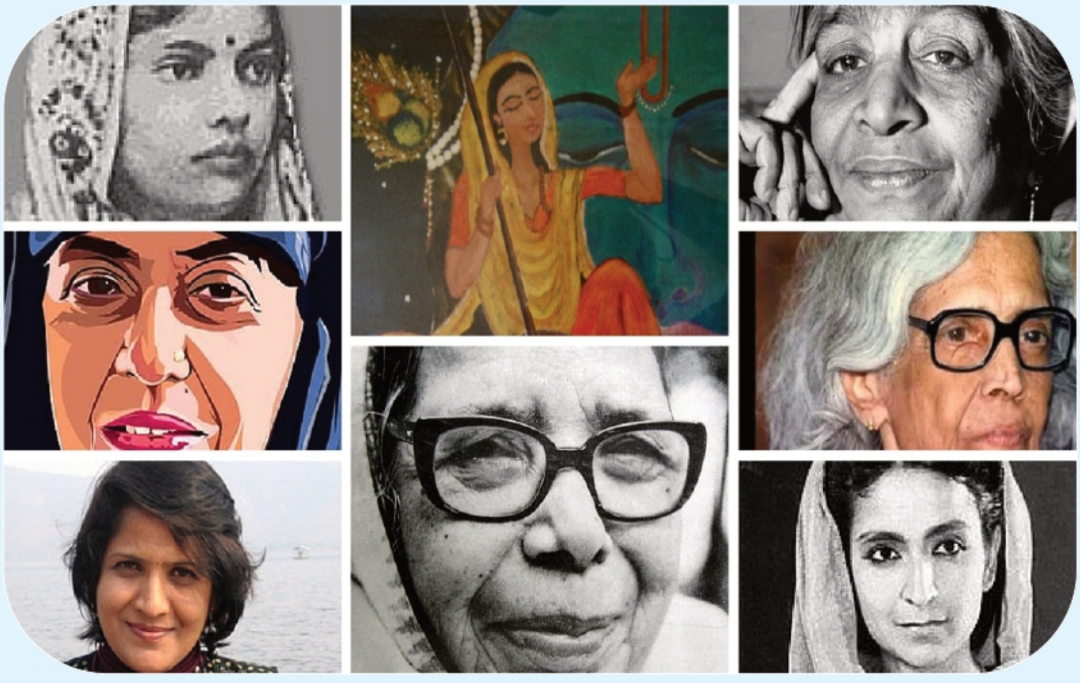

SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1- Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh
2- Dr. Sudhir Sharma , Subject Expert ,HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai
3- Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh
4- Dr. Sunita Shashikant Tiwari Associate Professor, MATS University Raipur Chhattisgarh
5- Dr. Rajesh Kumar Dubey , Subject Expert, Principal , Shahid Rajeev Pandey Government College ,Bhatagaon , Raipur ,Chhattisgarh

COURSE COORDINATOR

Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

COURSE /BLOCK PREPARATION

Dr. Suparna Shrivastava , Assistant Professor , Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

March, 2025

ISBN-978-93-49916-26-5

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & Published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer-Publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from contents of this course material, this is completely depends on AUTHOR'S MANUSCRIPT.

Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

अनुक्रमणिका

माड्यूल	विषय – आधुनिक हिन्दी काव्य – **III**	
माड्यूल – 1	अर्वाचिन/आधुनिक हिन्दी काव्य का परिचय	
	इकाई – 1 राष्ट्रीय काव्यधारा (सन् 1857 से 1920 ई. तक)	1-8
	इकाई – 2 छायावादी काव्यधारा (1920 से 1935 ई. तक)	9-16
	इकाई – 3 भारतेन्दु युगीन काव्य और उसकी विशेषताएँ	17-21
	इकाई – 4 द्विवेदी युगीन कविता और उसकी विशेषताएँ	22-34
माड्यूल – 2	छायावादी काव्य और प्रमुख प्रवृत्तियाँ	
	इकाई– 5 छायावाद की अवधारणा	35-43
	इकाई– 6 हिन्दी साहित्य छायावाद	44-54
	इकाई – 7 छायावाद की विशेषताएँ और प्रमुख प्रवृत्तियाँ	55-63
माड्यूल – 3	प्रगतिवादी काव्य एवं उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ	
	इकाई– 8 प्रगतिवाद की अवधारणा	64-72
	इकाई– 9 हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद	73-81
	इकाई – 10 प्रगतिवाद की विशेषताएँ और प्रमुख प्रवृत्तियाँ	82-92
माड्यूल – 4	नई/आधुनिक कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	
	इकाई – 11 मैथिलीशरण गुप्त समीक्षात्मक भाग	93-97
	इकाई – 12 जयशंकर प्रसाद समीक्षात्मक भाग	98-102
	इकाई – 13 महादेवी वर्मा आलोत्मक चेतना	103-107
	इकाई – 14 माखनलाल चतुर्वेदी समीक्षात्मक खण्ड	108-112
	इकाई –15 सच्चिदानंद हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय समीक्षात्मक भाग	113-117
	इकाई – 16 सुभद्रा कुमारी चौहान समीक्षात्मक भाग	118-123
	इकाई – 17 वीरेन्द्र मिश्र समीक्षात्मक भाग	124-130
	इकाई – 18 दुष्यंत कुमार समीक्षात्मक भाग	131-140
	इकाई – 19 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	141-156

Acknowledgement

The Material (Pictures and images) we have used is purely for educational purpose. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Sould any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future of this book.

इकाई–1

अर्वाचीन/ आधुनिक हिन्दी काव्य का परिचय अर्वाचीन/आधुनिक

आधुनिक षब्द समसामयिक, समकालीन एवं वर्तमान का द्योतक है। किन्तु आज जो समसामयिक, समकालीन है, कालान्तर में वही अतीत का स्वरूप धारण कर लेता है। अस्तु, इस दृश्टिकोण से ष्आधुनिकष् षब्द को भ्रामक ही कहा जाती है। फिर भी विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का विभाजन अपने–अपने दृश्टिकोण से किया है। कला विभाजन के द्वारा उक्त ष्आधुनिकष् षब्द का अर्थ खोजनेवालों में प्रथम वर्ग उन विद्वानों का है। जिन्होंने सन् 1857 से आज तक के लिखे गये काव्यों को भाशा की दृश्टि से आधुनिक कहा है। द्वितीय मत यह है कि नयी प्रवृत्ति की दृश्टि से भी भारतेन्दु–युग से उनके परवर्ती समस्त काल को आधुनिक कहना समीचीन होगा। इस प्रकार भाशा तथा प्रवृत्ति दोनों आध ाारों को लेकर सन् 1857 से आज तक के काव्य को आधुनिक कहा जाना उचित होगा। कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता है कि निःसन्देह, गद्य की दृश्टि से भारतेन्द्र युग के गद्य को ष्आधुनिक गद्यष् कहा जा सकता है, पर भारतेन्दु युग के काव्य में ब्रजभाशा प्रयोग को देखकर इसे आधुनिक कविता कैसे कहा जा सकता है? इस तर्क पर विचार करते हुए यह समाधान हो सकता है कि खड़ी बोली की कविता के प्रारम्भ से ही आधुनिक कविता का प्रारम्भ माना जाय ।

यहाँ आचार्य रामचन्द्र षुक्ल के मतों को प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है, जिन्होंने आध ुनिक काल का प्रारम्भ सं. 1900 (सन् 1843) से वीकार किया है और उसे षाद्यकालष् का नाम प्रदान किया है । इस पृश्ठभूमि में उनको कतिपय विचारधाराएँ थीं। गद्य का प्रारम्भ, आधुनिकता की आभा तथा समसामयिकता का बोध द्य अनेक मत–मतान्तरों के पष्चात् आज भी आचार्य षुक्ल का कला विभाजन प्रायः सभी के द्वारा स्वीकार्य बन गया है। उनके इतिहास ने अपना प्रतिमान स्थापित कर लिया। आचार्य षुक्ल की संस्कारित ष्नयी धाराष् प्रावाहमान होकर नयी कविता के बाद की कविता (अकविता, साठोत्तरी कविता आदि) तक पहुँच गयी है।

आधुनिक काल की सर्वाधिक और महत्त्वपूर्ण विषेशता है– खड़ी बोली का आगमन तथा पद्य समकक्ष गद्य का विकास। इस समय पद्य के लिए ब्रजभाशा ही उपयुक्त समझी जाती थी, जिसका मोह आधुनिक गद्य–संस्थापक भारतेन्दु हरिष्चन्द्र से भी नहीं छूट पाया। परन्तु इस युग की मुख्य साहित्यिक घटनाएँ हैं– 1893 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1900 ई. में नागरी को षासकीय मान्यता प्राप्त होना, 1900 ई. में ष्सरस्वतीष् का प्रकाषन तथा ष्जय हिन्दी जय नागरी की प्रतिश्ठा होना। इसलिए भाशा के आधार पर भी इसका नामकरण हो सकता हैय यथा–खड़ी बोली (हिन्दी) का उद्‌भव काल, खड़ी बोली का सुधार काल, खड़ी बोली का लाक्षणिक काल, खड़ी बोली का नव्य अर्थकाल तथा खड़ी बोली के अर्थ की अर्थवत्ता का काला परन्तु काव्य की प्रवृत्तियों के परिचय के लिए इसे हम राश्ट्रीय काव्यघरा, छायावादी काव्यधारा तथा छायावादोत्तर काव्यधरा कह सकते हैं।

(1) राश्ट्रीय काव्यधारा (सन् 1857 से 1920 तक)

इस काव्यधारा के अन्तर्गत भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग दोनों को एक साथ सम्बन्ध किया जा सकता है । भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के नेतष्त्व में युगीन कवियों ने काव्य के बहिरंग तथा

अन्तरंग दोनों में परिवर्तन किया। काव्य विशय की दृश्टि से रीतिकालीन श्रंषारिका को मोहासक्ति में न्यूनता आयी तथा राश्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्याओं को काव्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। बंगला और अंग्रेजी के सम्पर्क के कारण हिन्दी कवियों के विशयों में विविधता और व्यापकता का पदार्पण हुआ। यहाँ पर ओर कवि यदि विक्टोरिया की वन्दना करता है––

पूरी अमी को कटोरिया–सी चिरंजीवी रहो विक्टोरिया रानी।

–अम्बिकादत्त व्यास

तो दूसरी ओर विदेषी षासन के प्रति क्षेत्र व्यक्ति कर देष–प्रेम की भावना को भी उजागर करता है –

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

धन विदेष चलि जात यह अति वारी ।

सर्वसु लिये जातं अंग्रेज

प्रताप नारायण मिश्र

प्रमुख कवि – भारतेन्दु बाबू हरिष्चन्द्र, अम्बिकादत व्यास, राधाकृश्ण दास, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, जगमोहन सिंह, नवनीतलाल चतुर्वेदी आदि हैं। इस पुरानी धारा के द्वितीय उत्थान के उल्लेख्य कवि हैंकृ अयोध्यासिंह उपाध्याय ष्हरिऔधष् श्रीधर पाठक, जगन्नाथदास, ष्रत्नाकरष् सत्यनारायण ष्कविरत्नष् आचार्य रामचन्द्र षुक्ल, बचनेष, वियोगी हरि आदि।

भारतेन्दु के पष्चात् हिन्दी साहित्य का नेतष्व आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में आया। आपने ष्सरस्वतीष का भारत ग्रहण कर हिन्दी को व्याकरण सम्मत बनाया। आपके प्रयास से खड़ी बोली प्रतिश्ठित हुई। द्विवेदी जी की नीतिवादिता से श्रंषार का उच्छंष्खल स्वरूप समाप्त हो गया। यह ष्इतिवष्तात्मकष काव्ययुग रहा है। इसमें अधिकांष कवियों की दृश्टि ष्वस्तु के बाह्य अंग पर जाकर ही रूक गयी। वह उसके साथ तादात्म्य स्थापित न कर सकी। इस युग में कवियों ने पौराधिक और ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर काव्य रचना की। ष्प्रयप्रवासष इस युग की मुख्य रचना है। ष्साकेष का प्रारम्भ भी इसी युग में हुआ। द्विवेदी जी के निर्देषन में धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, देषभक्ति आदि विभिन्न प्रवष्त्तियाँ विविध रूपों में प्रकट हुई।

प्रमुख कवि मैथिलीषरण गुप्त, गयाप्रसाद षुक्ल ष्सनेहीष् रामंचरति उपाध्याय, लाला भगवानदीन, रामनरेष त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि इसे युग के प्रमुख कवि हैं।

(2) छायावादी काव्यधारा (1920 से 1935 ई. तक)

द्विवेदी युग के नैतिक बुद्धिवाद और इतिवष्तात्मकता के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में सूक्ष्म ने स्थूल के प्रति विद्रोह किया और छायावाद ने जन्म लिया। इस काव्य धारों पर अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावाद तथा बंगला साहित्य का प्रभाव है। उपनिशद् साहित्य का रहस्यवाद भी

इसमें अन्तर्निहित है। इस काव्यधारा ने हिन्दी को एक नवीन भावलोक तथा नवीन अभिव्यंजना शैली दी। अब कविता बहिरंग हो गयी। इस काव्यधारा की निम्नलिखित प्रवष्त्तियाँ निर्धारित की गयी हैं.

(1) सौन्दर्य भावना, (2) आत्माभिव्यक्ति, (3) करूणा, वेदना की निवष्त्ति, (4) प्रकृति–प्रेम, (5) रहस्य–वाद, (6) राश्ट्रीय भावना, (7) भानवतावाद की प्रतिश्ठा, (8) नयी अभिव्यंजना शैली– प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, वक्रता तथा चित्रात्मकता ।

प्रमुख कवि– जयषंकर ष्प्रसादष्, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी, ष्निलालाष्, डॉ. रामकुमार वर्मा।

छायापवादोत्तर काव्य चार धाराओं में विभक्त होता हुआ दिखाई देता है– (1) राश्ट्रीय काव्यध ाारा, (2) प्रगीत काव्यधारा, (३) प्रगतिवादी काव्यधारा, (4) प्रयोगवादी काव्यधारा (कालान्तर में नयी कविता, अकविता, साठोत्तरी कविता आदि) ।

(1) राश्ट्रीय काव्यधारा – यह धारा भारतेन्द्र काल से ही चली आ रही हैं। इसमें जिन कवियों ने योगदान किया है, उनके नाम हैं– अयोध्यासिंह उपाध्याय ष्हरिऔधष्, ष्माखनलाला चतुर्वेदी, मैथिलीषरण गुप्ता, बालकृश्ण षर्मा, ष्नवीनष्, रामधारी सिंह षदिनकरष् त ष्राश्ट्रीय आत्माष्। इसे अक्षुण्ण धारा भी कहा जाता है।

(2) प्रगीत काव्यधारा– छायावाद की अतिषय काल्पनिकता के फलस्वरूप गीत की नयी अन्विति लेकर इसका प्रादुर्भाव हुआ और इसमें हरिवंषराय ष्बच्चनष्, नरेन्द्र षर्मा, रामेष्वर षुक्ल ष्अंचलष् के हस्ताक्षर उपकर आए। कालान्तर में यही धरा यथार्थ साग्रही और नए उपमानों की लालसा से पोशित होती गई और इसने ष्नवनीतष् की अमिध स्वीकार की। इस धारा के प्रमुख कवि हैं–– गोपालहिं नेपाली ष्नीरजष्, बालस्वरूप ष्राहीष्, षिवबहादुर सिंह भदौरिया सिंह ।

(3) प्रगतिवादी काव्यधारा – छायावाद का अतिषय रोमांस बहुलता, कल्पनाप्रियता तथा मार्क्स के दर्षन की व्यापकता के कारण इस धारा का आविर्भाव हुआ। इसकी मूल उपलब्ध ि हैं– काव्य के प्रति यथार्थ दृश्टि। प्रगतिवादी काव्य ने मजदूर किसान वर्ग के चित्र प्रस्तुत किए तथा समाज में वर्ग–भेद की संरचना गाढ़ी की। समाज में किसान मजदूर, उनके घरों की बहू–बेटियाँ की समस्या, मार्क्स का यथार्थवादी दृश्टिकोण, उपादानों में हँसिया हथौड़ा, लाई सेना चीन के उपकरणधर्मा प्रयोग ही इसके उपकरण हुए, जिसकी दृश्टि अनरंगों न होकर बहिरंगी है। इन कविताताओं में अनुभूति की गहराई का अभाव है। इस धारा मुख्य प्रवष्त्तियाँ हैं– यथार्थपरक दृश्टि, वर्ग–भेद सर्वहारा वर्ग का चित्रण, षोशितों– पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, धर्म ईष्वरादि का विरोध, वैष्विक बोध, मानववाद, व्यश्टि के स्थान पर समश्टि की प्रतिश्ठा, व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोगा

मुख्य कवि – पन्त, निराला, दिनकर, नवीन, नागार्जुन, रेण केदार, ष्सुमनष् गजानन माधव मुक्तिबोध, षमषेर, त्रिलोचन, भवानीप्रसाद मिश्र, धूमिल, भारतभूशण अग्रवाल आदि ।

(4) प्रयोगवाद – प्रयोगवाद का जन्म छायावाद के विरूद्ध प्रतिक्रया के रूप में हुआ। इसमें भदेसपन का अग्रह है। छायापवादी भावतत्व से असन्तुश्ट होकर प्रगतिवाद ने एक निष्चत सामाजिक–राजनीतिक जीवन पति को स्वीकार किया तो प्रयोगवाद ने काव्य–वस्तु और षैली– षिल्प के नवीन प्रयोगों द्वारा अनेक रूप और अस्थिर को उपयुक्त बनाने की ओर यान दिया। पुनः जीवन में नये मूल्यों के प्रतिश्टित होने पर भाव–बोध को नए सिरे से व्यवस्थित करने की आवष्यकता थी। प्रयोगवादी कवियों में जीवन, समाज, धर्म, राजनीति काव्यवस्तु षैली, छन्द तुक, कवित के दायित्व आदि को लेकर मतभेद हैं। हमारे जगत् के सर्वमान्य और स्वयंसि) मौलिक सत्यों को भी वे नहीं स्वीकार करते, जैसे– लोकतन्त्र की आवष्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यान्त्रिक युद्ध को उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा कानन बाला और सहगल के गानों की उत्कृश्टता आदि। इन कवितयों के प्रयोगषीलता के परिणामस्वरूप जो प्रवृत्तियाँ उभरी, दे इस प्रकार हैं

(1) अति यथार्थ का अग्रह, (2) बौषिकता, (3) भदेस का चित्रण, (4) घोर वैयक्किता, (5) अतषप्ति एवं विद्रोही के स्वरय (6) मध्यम वर्ग की कुण्डा की विवषत्ति, (7) यौन वर्जनाओं का चित्रण,

प्रमुख कवि – अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूशण अग्रवाल, डॉ. रामविलास षर्मा, प्रभाकर माचवे, नलिन विलोचन षर्मा, केषरी नारायण, षकुन्तला माधुर आदि ।

नयी कविता में पर्यापत काव्य– सष्जन हुआ। प्रयोगवाद के अनेक दोशों का इसमें परिहार हुआ। फिर भी इसमें अन्तर्विरोधी दृश्टि उपलब्ध होती है। उदाहरणार्थ– आषा–निराषा, आस्था–अनास्था, अस्तित्व – अनस्तित्व तथा पीड़ा–संत्रास, कुण्डा, घुटन और लघुमान आदि इसमें उपलब्ध होते हैं। इसके साथ ही प्राकृतिक दृष्य, आधुनिक युग–बोध, परिवर्तित भाव–विकास, संस्कृत बहुला तथा ग्रामीण अंचल की भाशा का प्रयोग हुआ। सन् 1959 में तीसरा सप्तक प्रकाष में आया, जिसमें लोकगीतों को प्रधानता दी गयी तथा कविता का कलेवर दिन–प्रतिदिन छोटा–सा हो गया।

प्रमुख कवि – कालान्तर में प्रयोगवादी कवि ही नयी कविता के षीर्शस्थ कवित हुए। इनके अतिरिक्त अन्य कुछ नाम इस प्रकार हैं– नरेष मेहता, भवानीप्रसाद, धर्मवीर भारती, सर्वेष्वरदयाल सक्सेना, अजित कुमार, डॉ. जगदीष गुप्ता आदि ।

नयी कविता के पष्चात् यौन वर्जनाओं का पुंज ष्अकविताष आयी तथा व्यंग्योमुखी प्रतीयमान तत्वों से आपूरित साठोत्तरी कविता प्रकट हुई। इस कविता का कवि कविता को कविता मानता है और वह दुरूहता तथा अस्पश्टता से दूर हटकर दो टूक बात करने का विष्वासी है।

भारतेन्दु युगीन काव्य और उसकी विषेशताएँ

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु–युग का प्रारम्भ सन् 1868 से प्रारम्भ होकर सन् 1903 में समाप्त होता है। इसे आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक युग माना गया है जिसके प्रवर्तक भारतेन्दु बाबू हरिष्चन्द्र थे। काव्य या साहित्य की प्रवषत्तियों की दृश्टि से यह संक्रान्ति युग कहा जा सकता है–रीति युग समाप्त हो रहा था और आधुनिक कविता का

जन्म आधुनिक परिवेष के अनुसार हो रहा था। एक तरु इस काल में काव्य विशयक नवीन उद्भावनाएँ जन्म ले रही थीं तो दूसरी ओर रीतिकालीन विषेशताओं को भी प्रश्रय मिल रहा था। इस युग के साहित्यकार कवियों की विषेशता यह थी कि वे कवि की अपेक्षा पत्रकार, समाज–सुधारक, प्रचारक अधिक थे। अपनी इस मनोवषत्ति के प्रतिलन में उन्होंने अपनी विभिन्न पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय समाज में प्रचलित रूढ़ियों, रूग्ण परम्पराओं, कुरीतियों, मिथ्याचारों, दम्भ, कपट, पुलिस कर्मचारियों के उत्पीड़न, न्यायालयों की अनीति, आर्थिक षोशण, राजनीतिक विडम्बना आदि को उजागर किया और इस प्रकार जनता को उद्बुत्रा किया। अपनी इस मनोवषत्ति से दूर हटकर उन्होंने राधा–कृश्ण की भक्ति के सुमध ुर गीतों की सषश्टि की। इन कवियों साहित्यकारों की इसी प्रवषत्ति को लक्षित करके आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने लिखा है, श्अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक और तो वे यज्ञकर और द्विजवेदव की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं, दूसरी ओर बंग देष के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में एक ओर तो राधा–कृश्ण की भक्ति में झूमते हुए भक्त भाल गूँथते हुए दिखाई देते हैं, दूसरी ओर मन्दिर के अधिकारियों और टीकाघरी भक्तों के चरित्रा की हँसी उड़ाते और स्त्री–षिक्षा, समाज–सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन के उस सन्धिकाल में जैसी षीतल कला का संचार अपेक्षित था। वैसी षीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नहीं।

भारतेन्दु बाबू के वर्चस्व के सन्दर्भ में डॉ. रामविलास षर्मा का यह मत समीचीन है कि भारतेन्दु युग की विषेशता यह रही है कि समस्त युग के साहित्याकाष में भारतेन्दु जी छाए रहे। उनकी प्रेरणा से पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाषित हुई, उनके संकेत पर अनेक व्यक्ति लिखने लगे। तत्कालीन युवक और साहित्यिक अभिरूचि के व्यक्तियों के लिए वे प्रेरणाश्रोत थे और उनकी इच्छा के विरूत्रा न किसी ने कुछ कहा और न लिखा । जो व्यक्ति साहित्यिक दृ श्टि से उनके विरोधी थे, जनता ने उनको अपना विरोधी माना। उनकी प्रेरणा से अनेक साहित्यिक संस्थाएँ अस्तित्व में आई और हिन्दी जगत् में राश्ट्रीय, सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न हुआ।

भारतेन्दु युगीन प्रमुख कवि– इस युग के कवियों में उल्लेखनीय हैं– प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधकृश्ण दास, बद्रीनारायण चौधरी ष्प्रेमघनष् विजयानन्द त्रिपाठी, आदि।

भारतेन्दु बाबू के ह्रदय में मातषभूमि के प्रति अनन्य भक्ति थी। वे भारत की दुरवस्था के प्रति क्षुब्ध थे। यही कारण है कि उन्होंने ष्भारत की दुर्दषाष् तथा ष्नील देवीष् नाटकों के गीतों में तथा अन्यत्रा भी भारत की दीनहीन दषा पर आँसू बहाए हैं–

आबहु सब मिलि रोहु भाई !

हा! हा! भारत दुर्दषा न देखी जाई ।

भारतेन्दु जी भारत के आर्थिक षोशण से अत्यधिक पीड़ित थे जो अनवरत अंग्रेजी नीति के द्वारा किया जा रहा था। इस आर्थिक षोशण के प्रति भी उन्होंने भारतीय जनता को उद्बुद्ध किया। इसी प्रकार अन्य दिषाओं में भी उन्होंने काव्य सर्जना की। उनकी कविताओं में कहीं देष के अतीत गौरव की गाथा कहीं वर्तमान पतनावस्था के प्रति संकेत है तो कहीं षक्ति, श्रृंगार आदि के कवित्तों और सवैयों के द्वारा जनसामान्य का सर्वतोभावेन अनुरंजन किया है।

अपने पत्रा ष्ब्राह्मणष् के माध्यम से हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान की गरिमा को स्थापित करने वाले पं. प्रतापनारायण मिश्र का नाम इस में उल्लेखनीय है। उन्होंने देषभक्ति के साथ राजभक्ति का निर्वाह किया, विविध विशयों पर मनोरंजक निबन्ध लिखे, भक्ति, गोरक्षा आदि विशयों पर लेख लिखे। इनकी ष्गंगाष्, ष्बुढ़ापाष्, ष्तृप्यन्ताम्ष् कविताएँ अतीव मनोरंजक हैं। कविता में भाव के साथ हास्य–व्यंग्य, विनोद आदि की योजना करने में वे कुषल थे।

प्रतापनारायण मिश्र के अतिरिक्त बदरीनारायण चौधरी ष्प्रेमघनष् ने एक तरु सामाजिक विशयों पर लेखनी चलाई तो दूसरी ओर देषभक्ति का प्रचार–प्रसार भी किया। अम्बिकादत्त व्यास का नाम भी यहाँ परिगणनीय है जिनकी प्राचीन और नवीन दोनों प्राकर की कविताएँ उपलब्ध होती हैं।

काव्य विषेशताएँ

भारतेन्दु युगीन काव्य की समीक्षा के अनन्तर जो प्रमुख प्रवष्त्तियाँ उभरकर आती हैं, वे निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत की जाती हैं–

(1) देषभक्ति– भारत में राश्ट्रीय धारा प्रारम्भ भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। भारतेन्दु युग के कवियों ने विषेशतः भारतेन्दु ने दो कार्य किए (1) भारत के मध्यम वर्ग को देषभक्ति की षिक्षा दी, और (2) सामान्य जनता को जाग्रत किया। उनकी ष्कवि वचन सुधा का यह सिद्धान्त – वाक्य दृश्टव्य हैं, जिसमें देषभक्ति की विलक्षण व्यंजना है

खलगनन सों सज्जन दुखी गति होइ हरिपद गतिर है।अपधर्म छटै स्वत्व निज भारत है

कर दुख है

(2) आर्थिक दुरवस्था का संकेत – अंग्रेजी षासन व्यवस्था तथा तत्कालीन आर्थिक षोशण की ओर संकेत करते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा है–

भीतर भीतर सब रस चूस बाहर से तन मन धन सैं। जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन? नहिं अंगरेजा।

(3) अंग्रेजी राजभक्ति – डॉ. सुरेष चन्द्र गुप्त भारतेन्दु युग की राश्ट्रीय चिन्तन धारा के दो पक्ष देखते है, देष–प्रेम और राजभक्ति। प्रथम पक्ष के अन्तर्गत उन्होंने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानष् का गुणगान किया तो दूसरे पक्ष में जजिया जैसा कर न लगाने वाले अंग्रेजों के षासनकाल में प्रजा की सुख–समृत्रि की मुक्त कण्ड से प्रषंसा की। यह प्रषंसा दो रूपों में देखी जा सकती है– (1) जहाँ षासन को सामान्य प्रषस्ति, (2) जहाँ विषेश रूप से महारानी विक्टोरिया के दीर्घ जीवन की कामना की गई–

अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी ।

पूरी अमी की कटोरिया– सी

चिरंजीवी रहो विक्टोरिया रानी

अम्बिकादत्त व्यास

(4) षासन व्यवसथा की भर्त्सना भारतेन्दु के काल की पत्र–पत्रिकाओं में ब्रिटिष सरकार की कड़ी आलोचना भी होती थी। इसी के अन्तर्गत व्याप्त भ्रश्टाचार एवं विसंगतियों पर भी व्यंग्य का प्रयोग कवियों के द्वारा किया जाता था। भारत की ऐसी दषा पर दुःख प्रकट करते हुए भारतेन्दु ने कहा या–

अब जहँ देखहूँ वहँ दुःखहि दिखाई।हा! हा! भारत दुर्दषा न देखी जाई द्यद्यपै धन विदेष

चलि जात यह अति वारी ।सर्वसु लिए जात अंगरेज प्रताप नारायण मिश्र

(5) सामाजिक चेतना – नवीन वैचारिक धरातलों पर प्रकाषित भारतेन्दु युगीन पत्रा–पत्रिकाओं ने न सिर्फ समाज–सुधार का स्वर बुलन्द किया, वरन् लोकतान्त्रिक चेतना को पल्लवित पोशित करने के क्षेत्र में वे भी अग्रणी रही हैं। भारतेन्दु की होली का यह वर्णन वस्तुतः आजादी प्राप्त करने एवं अपने समाज को पुर्निर्माण करने का घोशणा–पत्र ही है–

भारत में मची है होरी ।

इस ओर भाग अभाग– एक दिसि होय रही झकझोरी ।

अपनी अपनी जब सब चाहत होड़ पड़ी दुहुँ ओरी।

उल्लेखनीय है कि सन् 1880 की यह रचना राश्ट्रीय कांग्रेस को पूर्ण स्वतन्त्राता प्राप्ति के संकल्प भारतीय समाज की हिंदु–चेतना से रहित व्यक्ति उनकी दृश्टि में इस प्रकार की से सुदूर पूर्व की है।

प्रताड़ना का पात्रा है

धिक् वह मात पिता जिन तुम सो कायर पुत्र जन्यो ।

धिक् वह घरी जनम भयौ जामै यह कलंक प्रकट्यो ।

(6) हिन्दी भाशा – प्रेम – भारतेन्दु युग के कवि राधचरण गोस्वामी जहाँ ष्हमारी उत्तम भारत देषष का उद्घोश करते हैं, वही भारतेन्दु और आगे बढ़कर हिन्दी भाशा की उन्नति की बात कहते हैं, जिसके बिना हृदय का षूल समाप्त होने वाला नहीं है–

षनिज भाशा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।बिन निज भाशा ज्ञान के मिटत न हिय

को सूल

(7) नारी औदार्य – समाज के संगठन की दिषा में भारतेन्दु ने नारी जागरण का यह महत्वपूर्ण कार्य हाथ में लिया। उन्होंने स्त्रियों की पत्रिका ष्बाला बोधिनीष के माध्यम से महिलोपयोगी सामग्री का प्रस्तुतीकरण किया। इसका सिद्धान्त इस प्रकार था–
जोई हरि सोइ राधिका जो षिव सोई षक्ति

नारी जो सोई पुरूश यामें कछु न विभक्ति।सीता अनसूया सती अरुन्धती अनुहारिषीला लाज विद्यादि गुण लहो सकल जग नारि।उक्त सिद्धान्त वाक्य से भारतेन्दु का नारी के प्रति उदात्त दृश्टिकोण स्पश्ट हो जाता(8) मिश्रित भाशा प्रयोग – यद्यपि भारतेन्दु जी ने अपना अधिकांष काव्य ब्रज भाशा में हीलिखा है, तथापि वह खड़ी बोली के सर्वथा विरोधी नहीं थे। यही कारण है कि उन्होंने कुछकविताएँ खड़ी बोली में भी लिखी हैं। कहना न होगा कि काव्य भाशा के लिए ब्रजभाशा औरखड़ी बोली के समर्थकों में विवाद इसी युग में प्रारम्भ हुआ।

द्विवेदी युगीन कविता और उसकी विषेशताएँ द्विवेदी युग को आधुनिक कविता का द्वितीय स्थान काल कहा जाता है। इसका समय सन्1900 से 1920 ई. तक माना जाता है। भारतेन्दु जी के पष्चात् हिन्दी साहित्य का नेतष्त्वआचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में आया। उन्होंने पत्रिका सरस्वतीष का भार ग्रहणकरते ही हिन्दी को व्याकरण मम्मत बनाने का कल प्रयास किया। उनके प्रयोग से भाशा
षुरू हुई, उसका परिमार्जन हुआ, उसमें विभक्तियों का समीचीन प्रयोग होने लगा और अनुवाद प्रति का प्रवर्तन हुआ। आचार्य द्विवेदी का कृतित्व बहुविध है उन्होंने कवि, निबन्ध ाकार, अनुवादक, आलोचक और सम्पादक के रूपों को प्रचलित किया पर इसके आधर पर उन्हें अधिक महत्व प्राप्त नहीं हो सका। उनका महत्व ऐतिहासिक योगदान की दृश्टि से अधिक है। सर्वप्रथम उन्होनें युग और साहित्य के बीच घनिश्ठ सम्बन्ध स्थापित किया, अपनी ष्मासिक पत्रिका श्सरस्वतीष के माध्यम से अनेक कवि और लेखकों को जन्म दिया और उनके कृतित्व को परिमार्जित रूप में प्रस्तुत कराया, भाशा के क्षेत्र में स्वैराचार उनके नियन्त्रण से दूर हआ। भाशा–परिश्कार के सदन में उनके कार्य में जिन भाशाविदों ने योगदान किया उनके नाम हैं– पं. कामताप्रसाद गुरू, गौरीषंकर मिश्र तथा चन्द्रधर षर्मा गुलेरी।

द्विवेदी युग के अनेक कवियों ने राश्ट्रयता की भावना व्यंजित की है जिनमें मैथिलीषरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और सोहन लाल द्विवेदी उल्लेखनीय हैं। इन कवियों के कृतित्व के द्वारा राश्ट्रीयता का स्वरूप जो भारतेन्दु युग से स्पश्ट नहीं हुआ था, वहाँ जनता के सामने अपने यथार्थ रूप में अभिव्यक्त हो गया। रीतिकालीन परम्परा से पष्थक इस युग के कवि एक तरह पौराणिक त ऐतिहासिक विशयों पर काव्य–रचना करने लगे, दूसरी ओर स्वच्छन्द भावनाओं का प्रकाषन भी काव्य के द्वारा होने लगा। साहित्य में उपेक्षित तथा निम्न वर्ग के पात्रों को अपेक्षित स्थान प्राप्त हुआ।

द्विवेदी जी का युग ष्इतिवृत्तात्मकताष के लिए प्रसिद्ध है। इसका अभिप्राय यह है कि इस युग में इतिहास के आधार पर घटनाओं का चयन कर उन्हें काव्य–विशय के रूप में स्वीकार किया गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की नैतिकता, आदर्षवादित आदि मानदण्डों से प्रावित और परिचालित होकर सभी कवियों ने बौ(िकता, आदर्षवादित आदि को अपनाकर राम, श्रीकृश्ण आदि के चित्रों को प्रस्तुत किया जिनमें श्रृंगार का निरूपण वर्जित माना गया।

प्रमुख कवि – इस युग में कवियों में उल्लेखनीय हैं– अयोध्यासिंह उपाध्याय, ष्हरिऔधष् श्रीधर पाठक, मैथिलीषरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, सियारामषरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेष त्रिपाठी, राजाराम षुक्ल ष्राश्ट्रीय आत्माष्, गया प्रसादषुक्ल ष्सनेहीष आदि।

(1) अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के पष्चात् काव्य–रचना के क्षेत्र में हरिऔध ने षीर्श स्थान प्राप्त किया। पहले वे ब्रजभाशा के काव्य–रचना करते थे पर कालान्तर में सड़ी बोली में लिखने लगे। बोलचाल की खड़ी बोली, संस्कृतनिश्ठ खडत्री बोली के समान अधिकार से कविता लिखने वाले इस महाकवि ने ही खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य षप्रियप्रवासष प्रदान किया। ष्चोखे चौपदेष्, ष्चुभते चौपदेष एवं ष्पद्य प्रसूनष इनके अन्य पग्रन्थ हैं। षप्रियप्रवासष में कवि ने श्रीकृ श्ण को महापुरूश मानते हुए राधा और श्रीकृश्ण के आदर्ष मानव चरित्र के माध्यम से लोकमंगल का महान सन्देष इस ग्रन्थ में दिया है। यहाँ राम राश्ट्र के लिए समर्पित होने वाली नारी रत्न के रूप में चित्रित हैं। ष्वैदेही वनवासष हरिऔध का अन्य महाकाव्य है। इसमें राम के राज्याभिशेक के बाद सीता के वनवास की कारूणिक गाथा का मर्मस्पर्षी वर्णन है।

(2) मैथिलीषरण गुप्त

भारतीयता की साकार प्रतिमा मैथिलीषरण गुप्त का काव्य भारतीय संसकृति का सरस काव्यमय व्याख्यान है। धर्मिकता, मानव मूल्यों के प्रति अटूट आस्था, लोकमंगल की भावना आदि भारतीय जीवन

की स्वाभाविक विषेशताएँ उनके काव्य में सहज रूप से मुखरित हो उठी हैं। राश्ट्रीय विषेशताओं के इस प्रतिनिधित्व के कारण महात्मा गांधी ने उन्हें ष्राश्ट्रकविष घोशित किया था। गुप्त जी का खड़ी बोली का महाकाव्य ष्साकेतष है। इसके अतिरिक्त ष्जय भारतष् पंचवटीष्, ष्भारत भारतीष्, ष्यषोधराष्, ष्द्वापरष्, ष्रंग में भंगष्, ष्अनघष्, ष्झंकारष आदि इनकी अन्य कृतियाँ हैं।

उक्त कृतियों के अतिरिक्त श्रीधर पाठक, रत्नाकर, सत्यानारायण कविरत्न, रामनरेष त्रिपाठी, राश्ट्रीय आत्मा का आदि कवियों ने भी अपने कृतित्व से इस युग की रिक्त झोली भर दी। काव्य प्रवषत्तियाँ–

द्विवेदी युग के समस्त काव्य का अवगाहन या अध्ययन करने पर अधेलिखित प्रवषत्तियाँ उभरकर आती हैं। इन्हें निम्नलिखित षीर्शकों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(1) राश्ट्रीयता की भावना जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि इस युग में राश्ट्रीयता का स्वरूप पूर्णतः स्पश्ट हो चुका था। मैथिलीषरण गुप्त के साथ अन्य कवि माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेष त्रिपाठी आदि देष–प्रेम तथा राश्ट्रीय भावना से आपूरित होकर विभिन्न सन्दर्भों को लेकर काव्य–रचना कर रहे थे। मैथिलीषरण गुप्त की राश्ट्रीयता का स्वरूप उनके काव्य ग्रन्थ ष्भारत भारतीष में देखा जा सकता है। इसमें अतीत का गौरव गान करते हुए वर्तमान के प्रति जागरूक रहने का आहवन किया गया है। कवि का उद्‌बोधन है–

हम कौन थे क्यों हो गये और क्या होंगे अभी।

आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी

(2) सामाजिक सुधारवादी दृश्टि सामाजिक जीवन में व्याप्त अन्धविष्वासों, कुप्रथाओं, रूढ़ियों आदि को समाप्त करके एक स्वस्थ समाज की स्थापना का प्रयास इस युग के प्रायः सभी कवियों का रहा है। गुप्त जी ने अपने काव्य में छुआछूत, विधवा विवाह, अनमेल विवाह आदि विभिन्न सामाजक समस्याओं पर निर्भीक होकर अपना सुधारवादी दृश्टिकोण प्रस्तुत किया है–

प्रार्थना अब ईष की करहूँ कर जुग जोर।

दीनबन्धु सुदृश्टि कीजे बाल विधवा ओर।

(3) लोकतन्त्र का समर्थन – द्विवेदी युग के कवि लोकतन्त्रात्मक राजनीति के समर्थक थे। वह युग गांधीवाद का था, अतः उनके विचारों का प्रभाव कवियों पर पड़ना अनिवार्य हो गया था। राश्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर जेल यात्रा वाले गुप्त जी का लोकतन्त्रवादी दृश्टिकोण उनके काव्य में स्पश्ट षब्दों में प्रकट है। ष्बक–संहारष में प्रजा द्वारा आततायी षासन को उखाड़ नेकने का आहवन है–

राजा प्रजा का पात्र है वह एक प्रतिनिधि मान है।

यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है। हम दूसरा राजा चुनें जो सब तरह सबकी सुने ।

कारण, प्रजा का ही असल में राज्य है।

(4) आकर्शक प्रकृति–चित्रण – इस युग की कविता में प्रकृति के अत्यन्त मणीय चित्र उपलब्ध होते हैं प्रायः आलम्बन, उद्दीपन, वातावरण निर्माण आदि के रूप में प्रकृति को प्रस्तुत किया गया है। इस युग में प्रसिद्ध कवि ष्हरिऔधष को ये पंक्तियाँ प्रकृति के सौन्दर्य का यथावत् निरूपण करती हैं–

दिवस का अवसान समीप था गगन था कुछ लोहित हो चला। तरूषिखर पर थी अब राजती कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।

(5) मानवतावादी दृश्टि – इस युग की समस्त कविता मानवतावाद की चेतना से अनुप्राणित है। यहाँ समस्त विष्व की सेवा–भावना के मूल में यह मानवतावाद ही सिथत है। हरिऔध ा के महाकाव्य में नायक ती नायिका दोनों ही इसी लोक–कल्याणकारी उद्देष्य के प्रति संकल्पषील हैं। इनके श्रीकृश्ण के लिए वाक्य हैं––

विपत्ति के रक्षण सवीत का सहाय होना असहाय जीव का । अवारना संकट से स्वजाति को मनुश्य का सर्वप्रधान कृत्य है

(6) भक्ति भावना – भक्ति काल की भक्ति भावना का यहाँ प्रभाव देखा जा सकता है। इस युग के गुप्त जी वैश्णव होने के कारण राम के अनन्य भक्त है, उन्हें अन्य कोई इश्ट प्रभावित नहीं कर

सका। इसी प्रकार कवि रत्नाकर श्रीकृश्ण की भक्ति से आपूरित हैं। उद्धव षतक के मंगलाचरण से यह तथ्य प्रमाणित है। कुछ उदाहरण दृश्टव्य हैं– गुप्त जी

धनुर्वाण या वेणु लो ष्याम रूप से संग। मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग।।

रत्नाकर–जयति जसोमति के लाडले गुपाल जना

रावरी कृपा सौं सा सनेह लहिबाँ करै

(7) इतिवष्तात्मक काव्य–रचना – द्विवेदी जी के कठोर नियंत्रण के परिणामस्वरूप इस युग में इतिहास से सम्बन्धित कविताओं का प्रणयन किया गया। जहाँ इतिवष्तात्मक का किचित् पहरिहार है, वहाँ कविगण उपदेषात्मक काव्य–रचना तक ही सीमित रहे हैं। उदाहरणार्थ– ष्आषाष् ष्सन्तोशष् ष्साहस आदि पर इनकी रचनाएँ देखी जा सकती हैं। मैथिलीषरण गुप्त के प्रायः समस्त काव्य–ग्रन्थ इतिवष्तात्मक ष्हो हैं। साकेत में उनके इश्टदेव ऐतिहासिक पुरूश राम का चरित्र है! ष्भारत भारतीष् के लेखन के लिए भी

गुप्त जी ने द्विवेदी जी से ऐतिहासिक सामग्री की अपेक्षा की थी। इसी प्रकार का काव्य हरिऔध जी का है जिनके महाकाव्य ष्प्रिप्रवासष् के नायक इतिवृत्त प्रसिद्ध श्रीकृश्ण हैं। ये प्रायः सभी काव्य नीतिपरक हैं––

मैं नहीं यहाँ संदेष स्वर्ग का लाया। इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

इकाई–2

छायावादी काव्य और उसकी प्रमुख प्रवषत्तियाँ

सन् 1918 से 1936 तक चलने वाली आधुनिक हिन्दी काव्यधारा का नाम ष्छायावादष् है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनुसार यह आधुनिक हिन्दी कविता के उत्थान का तृतीय काल है। छायावाद का उदय द्विवेदी युगीन काव्य की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ था। द्विवेदी – युग में कविता गद्य बन गयी थी। इतिवृत्तात्मक वर्णन और बौद्धिक विवरण ही कविता के प्रतिपाद्य थे। भाशा सरल, सीधी, अभिव्यक्ति–कला विहीन और अनुभूति यथार्थ और स्पश्ट थी। इस प्रकार का काव्य चाहे पण्डितों की अच्छा लगा हो किन्तु भावुक सहृदय की मध ुमयी आत्मा का अतृप्त रह गयी। इस अतृप्ति की प्रतिक्रिया के रूप में ही छायावाद की अभिव्यक्ति हुई थी। दूसरे षब्दों में यों कह सकते हैं कि द्विवेदी युगीन कविता के प्रति सहृदय कवियों की विद्रोह भावना ही छायावाद के रूप में मूर्तिगान हो उठी थी। डॉ. रामविलास षर्मा का मत है, श्छायावाद भी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवाद के बन्धनों के प्रति विद्रोह था ।

डॉ. गोविन्द त्रियुणायत ने छायावाद की प्रवषत्तियों का विभाजन (1) आध्यात्मिक, तथा (2) कलागत सैलीगत भेदों में किया है। उनके अनुसार, श्छायावाद यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कोई आध्यात्मिक वाद नहीं है, किन्तु राजनैतिक, वैयक्तिक और आध्यात्मिक निराषाओं ने छायावादी कवियों को बरबस अध्यात्मोन्मुख होने के लिए बाध्य कर दिया था।श इसके विपरीत डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने हिन्दी साहित्य के वैज्ञानिक इतिहास में छायावादी प्रवषत्तियों को तीन भागों में विभाजित किया है– (1) विशयगत, (2) विचारगत, तथा (3) षैलीगत । यहाँ इन्हें व्रमषः प्रस्तुत किया जा रहा है–

(1) विशयगत प्रवषत्तियाँ–

1. नारी सौन्दर्य और प्रेम चित्रण– डॉ. गुप्त के अनुसार, नारी सौदर्य तथा प्रेम दोनों श्रंषार रस के ही अंग है। इसलिए ये एक–दूसरे के पूरक है। यदि भास्त्रीय षब्दावली में कहें तो प्रथम श्रंषार रस का आलम्बन है तथा द्वितीय उसका स्थायी भाव । छायावादी कवियों ने नारी को उसके प्रेयसी रूप में ग्रहण किया जो हृदय औरयौवन की सम्पूर्ण विभूतियों से मण्डित है तथा जो धरती के यथार्थ सौन्दर्य एवं स्वर्ग की काल्पनिक सुशमा से सुसज्जित है। विवाह के बन्धन में न पड़ने के कारण एक ओर तो लाज, उमंग और उत्साह से भरपूर है दूसरी ओर वह स्वकीया परकीया के पचड़े से भी दूर है। प्रसाद पन्त और निराला के काव्य में इसी प्रेयसी के सौन्दर्य के षत–षत चित्र अंकित हैं। ष्कामायनीष् की श्र) का एक सूक्ष्म पर रमणीय चित्र यहाँ प्रस्तुत है–

नील परिधान बीच सुकुमार

खिल रहा मष्दुल अधखुला अंगा। खिला हो ज्यों बिजी का फूल।

मेघ वन बीच गुलाबी रंगा

2 जहाँ तक प्रेम का सम्बन्ध है, छायावादी कवि किसी प्रकार की यदि, मर्यादा से नियमबद्धता को स्वीकार नहीं करते। निराला ने ष्प्रेयसीष में प्रेम का अदार्ष स्थापित करते हुए लिखा है–

दोनों हम भिन्न वर्ण भिन्न जाति भिन्न रूप

भिन्न धर्म भाव पर केवल अपनाव से प्राणों से एक थे।

छायावादी कवियों के प्रेम में वैयकिकता है। अन्य षब्दों में, इन्होंने अपनी प्रेमानुभूति की व्यंजना की। इस प्रेम की अन्य विषेशता सूक्ष्मता है। इन्होंने श्रृंगार के स्थूल क्रिया– व्यापारों की अपेक्षा उनको सूक्ष्म भाव दषाओं का उद्घाटन अधिक किया है। इस प्रेम की चौथी विषेशता है कि इनकी प्रणय–गाथा का अन्त अफलता एवं निराषा में होता है, अतः यहाँ रूदन अधिक है। एक विरहानुभूति देंखे–

विस्मष्त हों वे बीती बातें अब जिनमें कुछ सार नहीं।

वह जलती छाती न नहीं, अब वैसी षीतल प्यास नहीं द्यद्य

उनके अलौकिक प्रेम को रहस्यवार कहा जाता है। डॉ. गुप्त ने लिखा है कि रहस्यवादी कवित लौकिकता से अलौकिकता की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होता है, किन्तु पन्त और निराला की जीवनी का क्रम उल्टा है। ष्वीणाष में पन्त रहस्यवादी थे, ष्गुन्जनष में पत्नी या प्रेयसीवादी और ष्युगान्तरष के बाद भौतिकवादी बन गए। निषला के बारे में यह तथ्य है। उनके ज्ञान तत्व की एक झलक– दृश्टिव्य है–

. स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार

न जाने नक्षत्रों से कौन

चकित रहता वि–सा नादाना

निमन्त्रण देता मुझको मौन

(2) विचारगत प्रवषत्तियाँ–

उक्त विचारगत प्रवषत्तियों के द इस प्रकार किए गए हैं–

(1) दर्षन के क्षेत्र में अद्वैतवाद या सर्वात्मवाद

तुमं तुंग हिमालय षृंग

और मैं चंचल गति सुर–सरिता।

तुम विमल हृदय उच्छ्वास.

और मैं कान्त– कामिनी कविता

(2) धर्म के क्षेत्र में रूढ़ियों एवं बाह्याचारों से मुक्त व्यापक मानव – हितवाद

औरों को हँसते देखो मनु

हँसों और सुख पाओ।

अपने सुख को विस्तष्त कर लो

सबको सुखी बनाओ।

(3) समाज के क्षेत्र में समन्वयवाद

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है

इच्छा क्यों पूरी हो मना

एक दूसरे न मिल सकें

(4) प्रेम और अनुभूति का सन्देष

(3) षैलीगत प्रवृत्तियाँ

रे यह विडम्बरा है जीवन की।

तप र मधुर–मधुर मन

विष्व वेदना में तप प्रतिल

गन्ध ही न तू गन्ध युक्त बना

तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन

(1) मुक्तक गीति षैली प्रधानता – डॉ. त्रिगुणायत का कथन है, श गीतिकाव्य की जिनको प्रमुख विषेशताएँ हो सकती हैं, वे सब छायावाद में अभिव्यक्त हुई हैं।श गीतिकाव्य की प्रमुख विषेशताओं में कवि की आत्माभिव्यक्ति की बन्ध की निरपेक्षता, उक्ति– वैचित्रय, चमत्कार की प्रधानता, सल बिम्ब विधान और चित्रात्मकता, कल्पना की समाहार षक्ति, भाप की समाज षक्ति आदि विषेश उल्लेखनीय है। इस क्रम में ष्आंसूष की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

बिजली माला पहिने फिरे

मुसक्याता था आँगन में

हाँ कौन बस जाता था

षुभ बूँद हमारे मन में।

(2) प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता – लाक्षणिक

जी के दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं––

(प) जलधि लहरियों की अँगड़ाई बार–बार जाती ने।

(पप) सबल तंरगाघातों से उस क्रुद्ध सिन्धु के विलेन सी।

(3) नए अंलकारों का प्रयोग– मूर्त को अमूर्त रूप में सथ अमूर्त को मूर्त रूप में चित्रित करने के

लिए छायावादी कवि ने अनेक नवीन उपमानों का प्रयोग किया है, यथा–

(क) मूर्त के लिए अमूर्त उपमान

(ख) अमूर्त के लिए मूर्त उपमान

(ग) विषेशण– वियर्यय

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल

कीर्ति किरन–सी नाच रही

तुम्हारी आँखों का बचपन

खेलता जब अल्हड़ खेल

(घ) विरोधाभास

षीलत ज्वाला जलती है

(ङ.) रूपकातिषयोक्ति

(च) कोमलकानत पदावली

(छ) मानवीकरण

बाँधा था विधु को किसने

इन काली जंजीरों से।

मष्दु मन्द मन्द मंधर–मंथर सिन्धु सेज पर धरा बघू अब तनिक संकुचित बैठी सी ।

ekM;y & 3

प्रगतिवादी काव्य और उसकी प्रमुख प्रवषत्तियाँ
इकाई– 8 प्रगतिवाद की अवधारणा

प्रगतिवादी हिन्दी कविता के चतुर्थ स्थान के रूप में माना जाता है। इस वाद उदय सन् 1936 मैं उस समय हुआ था जब लखनऊ में प्रेमचन्द को अध्यक्षता में प्रतिषील लेखक संघ की पहली बैठक हुई। इस संघ के संस्थापकों में मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर का नाम विषेश उल्लेखनीय है। इस बैठक में प्रेमचन्द जी ने प्रगतिषील साहित्य के आदर्षो पर प्रकाष डालते हुए कहा कि, श्हमारी कसौओ पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च निदान

हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाष हो, जो हममें गति, संघर्श और बेचौनी पैदा करे सुलाएं नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।श इसी के पष्चात् सन् 1938 में ष्रूपाभष नामक मासिक पत्रिका के सम्पादकीय में इसके दो सम्पादकों – पन्त एवं नरेन्द्र षर्मा ने हिन्दी कविता को नए प्रगति पथ पर लाकर खड़ा करने की आवष्यकता महसूस की थी, जिसकी पूर्ति में प्रगतिवाद का उदय हुआ।

• डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, श्सामाजिक यथार्थ दृश्टि प्रगतिवाद की विषेशता है।श डॉ. नगेन्द्र ष्आस्था के चरणष में लिखते हैं कि श्साम्यवाद का समर्थन, पूँजीवाद और उससे सम्बद्ध राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और साहित्यिक रूढ़ियों के विरूद्ध क्रान्ति तथा साधारण दक्षिणपन्थी राश्ट्रीयता से भिन्न प्रकार की राश्ट्रीयता प्रगतिवाद के घटक तत्व हैं।श डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार, श्सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की प्रवृत्ति, साम्राज्यवाद का विरोध, वर्ग संघर्श का चित्रण, वर्तमान समस्याओं पर विचार, प्रचार का माध्यम, यथार्थवादिता, साम्राज्यवाद का विरोधी भावना को प्रगतिवादी साहित्य समस्याओं पर विचार, प्रचार का मुयम, यथार्थवादिता, साम्राज्यवाद का विरोधी भावना को प्रगतिवादी साहित्य प्रवृत्ति की विषेशताओं के रूप में स्वीकार किया है।श इन सबका समन्वित प्रस्तुतीकरण यहाँ किया जा रहा है–

(1) षोशकों के प्रति घृणा– आर्थिक क्राति के कारण हो प्रगतिवादी काव्य में षोशकों के प्रति तीव्र चूणा की भावना दिखाई पड़ती है। प्रगतिवादियों के अनुसार संसार के लोगों की केवल दो जातियाँ हैं– षोशक और षोशिता वर्ग संघर्श की इस प्रवृत्ति को प्रगतिवादी में स्थान दिया गया है। सुमित्रानन्द पन्त की इस अनुभूति में प्रतीकात्मक ढंग से षोशकों के प्रति घृणा की भावना व्यक्त हैं–

दुत झरी जगत् के जीर्ण पत्र

अन्यत्र स्पश्ट रूप में वे इस प्रकार लिखते हैं–

वे नष्षंस हैं, वे जन के श्रम से पोशिता

दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे षोशितां

नर पषु वे ! भू पर! मनुजता जिनसे लज्जित।

(2) सामाजिक क्रान्ति की भावना– डॉ. नगेन्द्र के षब्दों में, श प्रगतिवादियों के अनुसार साहित्य सामाजिक अभिव्यक्ति है। सामाजिक क्रान्ति के लिए प्रगतिवादी रचनाकार सामन्तीय और पूँजीवादी व्यवस्था को नश्ट–भ्रश्ट कर देना चाहता है।श सुमित्रानन्दन पन्त ने इस व्यवस्था को लक्ष्य करके क्रान्ति का आहावन करते हुए कहा है–

गा कोकिल बरसा पावक कण।

बालकृश्ण षर्मा ष्नवीनष ने सामाजिक विशमता और अव्यवस्था को देखकर सब कुछ नश्ट करे देने के लिए आक्रोष व्यक्त किया है–

कवि कुछ ऐसी तान दो

जिससे उछल–पुथल मच जाये।

सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए ही प्रगतिवादी कवि ईष्वर और आत्मा को सर्वोपरिता की कौन कहे उसके अस्तित्व को ही नहीं स्वीकार करता। कार्ल मार्क्स ने अध्यात्मवाद को ष्जनता की कीमष तथा षोशकों का अस्त्र कहा था।

(3) आर्थिक क्रान्ति की प्रवष्त्ति– प्रगतिवादी साहित्य द्वारा में मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार, आर्थिक क्रान्ति की भावना सन्निहित है। प्रगतिवादी केवल कान्ति के आधार पर परिवर्तन का इच्छुक होता है, फिर चाहे रक्त क्रान्ति ही हो तो क्या? यह प्रवष्त्ति समस्त जीवन–दर्षन को ही प्रगतिवादी स्वीकार करती है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के षब्दो में, श्वर्गहीन समाज की स्थापना प्रगतिवाद का लक्ष्य है और वह आर्थिक विवादों के परिवर्तन के साथ सामाजिक मान्यताओं में भी परिवर्तन की अपेक्षा करता है।श निराला की कविता षभिक्षुकष में इस प्रकार की अनुभूति दृश्टव्य है–

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

(4) यथार्थ चित्रण– डॉ. नगेन्द्र ने ष्आस्था के चरण में लिखा है कि श्प्रगतिवादियों ने अपना अभिव्यक्ति के उपकरण आग्रहपूर्वक साधारण स्वस्थ जनजीवन से ग्रहण करना आरम्भ किया।श लौकिक और यथार्थ चित्रण दो धरातल पर प्रकट हुआ है– सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण और सामान्य प्राकृतिक परिवेष का चित्रणा यहाँ क्रमषः दोनों के चित्र दर्षनीय हैं–

(37) सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण

(ब) प्राकृतिक परिवेष का चित्रण

ष्वानों को मिलता दूध वस्त्र

भूखे बालक अकुलाते हैं।

खड़ी बोली अलसी

लिए षीष कलसी

मुझे खूब सूझी

हिलाया झुलाया गिरी पर न कलसी।

(5) साम्राज्य का विरोध – मार्क्सवाद से प्रतिबद्धता के साम्राज्यवाद के विरोध को जन्म दिया है। ष्प्रगतिषील लेखक संघष के घोशणा–पत्र में कहा गया था कि प्रगतिषील साहित्य सदा साम्राज्य विरोधी होता है। घोशणा पत्र में कही गई इस बात का प्रगतिवादियों ने बराबर

पालन किया। उसने हमेषा आततायियों और षोशकों का विरोध किया है। इसी सन्दर्भ में षनिरालाष की ये पंक्तियाँ प्रतीकात्मक रूप से षोशक पूँजीवादी साम्राज्यवादी संस्कृति की भर्त्सना करती हैं–

अबे सुन बे गुलाब

भूल मत गर पाई खुषबू रंगो आव खून चूसा खाद का तने अषिश्ट

डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

(6) मार्क्सवाद का प्रचार– मार्क्सवादी साहित्य को प्रचार का साधन मानता है। इसलिए प्रगतिवादी साहित्य में मार्क्सवाद के प्रचार की कामना निरन्तर व्यापक होती दिखाई देती है। मार्क्सवाद के प्रचार के अन्तर्गत भौतिक द्वन्द्ववाद की रागात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति के साथ ही उसका सैद्धान्तिक कथन, मार्क्स का स्तवन, रूस तथा लाल सेना की प्रषस्ति आदि का भी समावेष होता है। सुमित्रानन्दन पन्त की एक ऐसी ही मार्क्स की स्तुति यहाँ प्रस्तुत है–

धन्य मार्क्स चिर तमाच्छन्न पष्थ्वी के उदयषिखर पर।

तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर

इसी प्रकार षिवमंगल सिंह ष्सुमनष ने लाल सेना की प्रषस्ति में कविता लिखी है–

चली जा रही वढ़ी लाल सेना मास्को अब दूर नहीं।

(7) मानव का षक्ति में विष्वास – दीन–दुःखी और पलित मानव को उबुद्ध कर प्रगतिवादी कवित कने उसे कर्म का सन्देष देकर ऊपर उठाया है। प्रगतिवादी कवियों को ईष्वर में विष्वास नहीं है पर वे मानव की अपरिमित षक्ति में भरपूर आस्था रखते हैं। नरेंद्र षर्मा की ये पंक्तियाँ यह प्रतिपादित करती हैं कि ईष्वर को पुकारना व्यर्थ है। उसके स्थान पर अपनी स्वयं की कर्मण्यता का आश्रय लेकर आगे बढ़ना होगा। दुःख दैन्य की वर्शा करने वाला जीवन में संमृद्धि और सुख नहीं ला सकता–

जिसे तुम कहते हो भगवान

जो बरसाता है जीवन में रोग षोक दुख दैन्य अपार उसे सुनाने चले पुकार ?

(8) नारी – औदार्य – प्रगतिवादी कवियों ने नारी को षोशित के रूप में स्वीकार किया है। उनकी दृश्टि में नारी उनकी दया और स्नेह का भाजन है। हिन्दी के आदिकाल की नारी भोग्या थी, भक्तिकाल में उसे अस्पृष्य माना गया, रीतिकाल में वह वासना की पुतली बना दी गई, आधुनिक काल में भी द्विवेदी युग ने उस पर आदर्षो का आरोप किया। छायावादी युग में वह अप्सरा बनी, पर प्रगतिवादी रचनाकार उसे कि ष्मानवीष के रूप में प्रतिश्ठित करने में सचेश्ट है–

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिश्ठित।

उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह नर पर रहे न अवसित

इकाई– 8 प्रगतिवाद की अवधारणा

प्रगतिवादी की कला–चेतना

यहाँ प्रगतिवादी काव्य की कलागत विषेशताओं पर निम्नलिखित षीर्शकों में विचार किय ाजाता है– (क) भाशा – प्रगतिवाद की भाशा व्यंग्य प्रधान है। प्रगतिषील रचनाकारों नेषोशकों पर प्रहारार्थं चुभती हुई भाशा का प्रयोग किया है। डॉ. नामवर सिंह का कथन है,शहिन्दी कविता में व्यंग्य काव्य का जितना सुन्दर विकास प्रगतिवाद में हुआ, उतना कभीनहीं।।(ख) छन्द विधान – डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत का कथन है कि प्रगतिवादियों ने श्स्वतन्त्रछन्दों की योजना की है और नए ढंग से लिखने का प्रयास किया है।

(ग) अलंकार विधान – प्रगतिवाद ने अलंकारों को विषेश महत्व नहीं दिया। कविवर पन्त का कथन तुम वहन कर सको, जन–जन मेरे विचार।

वाणी मेरी चाहिए, तुम्हें क्या अलंकार ।

निश्कर्शस्वरूप कहा जा सकता है कि मार्क्सवादियों ने प्रगतिवाद के नाम पर संकुचित

को अपनाकर साहित्य की मूल चेतना को ही आहत कर दिया है। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादियों ने प्रअने ही साहित्य को नारेबाजी का षिकार बना दियारू

प्रयोगवादी काव्य और उसकी प्रवष्त्तियाँ, आगारिक प्रवष्त्तियाँ–

आधुनिक हिन्दी कविता के पंचम् धान काल में प्रयोगवाद का परिगणन किया जाता है। इसका समय सन् 1940 से लेकर 1950 ई. तक मीना जा सकता है। यह काव्य भी प्रगतिवादी काव्य के प्रति व्यक्त प्रतिक्रिया का परिणाम माना जाता है। प्रगतिवाद की बौद्धिकता और तथाकथित वैज्ञानिकता, तथाकथित सामाजिक चेतना, पलायनवादिता आदि की प्रतिक्रियास्वरूप यह समझा गया है कि कला वस्तुतः जीवन के ही लिए नहीं हैं, वरन् कला, कला के लिए भी है। इस प्रकार की मान्यता वाले प्रयोगवादी कवि भी मार्क्स तथा मनोविज्ञान से प्रभावित है और काव्य में नए प्रयोगों के पक्षपाती हैं।

डॉ. गणपति ने प्रयोगवाद की प्रमुख दो प्रवष्त्तियाँ– (1) आन्तरिक प्रवष्त्तियाँ, एवं (2) बाह्य प्रवष्त्तियाँ स्वीकर करने के अनन्तर उनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है। जिनकी उप–प्रवष्त्तियाँ भी यहाँ दृश्टव्य हैं–

(1) घोर वैयक्तिकता – प्रयोगवाद का लक्ष्य निजी मान्यताओं, विचारधाराओं एवं अनुभूति का प्रकाषन करना है। वैयक्तिकता की यह प्रवष्त्ति रीतिकाल के स्वच्छन्द श्रृंगारी कवियों एवं आधुनिक युग के छायावादी कवियों में भी विकसित हुई थी, किन्तु उन्होंने वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना इस प्रकार की जिससे वह प्रत्येक पाठक के हृदय को आन्दोलित कर सकें, किन्तु इन कवियों में यह बात नहीं मिलती। कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के लिए देखिए–

साधारण नगर के

एक साधारण घर में

मेरा जन्म हुआ,

पंचपन बीता अति साधारण

साधारण खानपान

साधारण वस्त्र—वास

(2) बौद्धिकता एवं षुश्कता — नए कवि अनुभूतियों से प्रेरित होकर काव्य—रचना कम करते हैं— अपने मस्तिश्क को कुरेदकर उसमें से कविता को बाहर खींच लाने का प्रयास अधिक करते हैं।

वस्तुतः उसमें रागात्मकता की अपेक्षा विचारात्मकता अपितु अस्पश्ट विचारात्मकता अधिक होती है। प्रयोगवादियों का दावा है कि बौद्धिकता में भी एक प्रकार का रस होता है, बौद्धिक युग में बौद्धिकता की ही अधिक आवष्यकता है। इन कवियों की यह मान्यता है कि मस्तिश्क को कुरेदना ही कविता का उद्देष्य है। राजेन्द्र किषोर की इन पंक्तियों में यह तत्व प्रखर है—

अन्तरंग की इन घड़ियों पर छाया डाल

अपने व्यक्तित्व को एक निष्चित साँचे में डाल दूँ।

नजी जो कुछ है अस्वीकृत कर दूँ। आत्मा को न मानूँ

तुम्हें न पहचानूँ आदि।

(3) दूशित वषत्तियों का नग्न रूप में चित्रण जिन वषत्तियों को अष्लील, असामाजिक एवं अस्वस्थ कहकर समाज और साहत्य द्वारा दमन किया जाता रहा है, उन्हीं को उभारकर प्रस्तुत करने में नए कवि को गौरव का अनुभव होता है। अपनी अतषप्ति, कुण्ठाओं एवं दमित वासनाओं का प्रकाषन ने निःसंकोच रूप से करते हैं। अनन्त कुमार पाशाण की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

मेरे मन की अँधियारी कोठरी में

अतष्प्त आकांक्षा की वेष्या बुरी तरह खाँस रही है।

षकुन्तला माथुर की ष्सुहाग बेलाष भी इस क्रम में परिगणनीय है जिसकी निम्न पंक्तियों में डॉ. गुप्त के अनुसार ष्लपक झपकष है—

चली आई बेला सुहागिन पायल पहने

बाण सिद्ध हरिणी —सी

बाँहों में लिपट जाने की

उलझने की, लिफ्ट जाने की,

मोती की लड़ी रामान

(4) निराषावादिता – नए कवि को न अतीत से ही प्रेरणा मिलती है और न ही वह भविश्य की आषा–आंकाक्षाओं से उल्लसित हैं। उसकी दृश्टि केवल वर्तमान तक सीमित है, अतः ऐसी स्थिति में उसका क्षणवादी, निराषावादी और विनाषात्मक प्रवष्त्तियों में लीन हो जाना स्वाभाविक है। उसकी स्थिति उस व्यक्ति की भाँति है जिसे यह विष्वास हो कि अगले क्षण प्रलय होने वाली है। ष्मुद्राराक्षसष को ये अनुभूतियाँ इसी का परिचायक हैं–

आओ हम उस अतीत को भूलें

और आज की अपनी रग–रग के अन्तर को छू लें।

छू ले इस क्षण

क्योंकि कल के वे नहीं रहे,

क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।

(5) भदेस का चित्रण – प्रयोगवादी कवियों ने पअनी अस्वस्थ सौन्दर्य – चेतना एंव विकृत रूचि के कारण कुरूप असुन्दर एवं भद्दे दृष्यों का चित्रण भी रुचिपूर्वक किया है, यथा–

मूत्र सिंचित मष्त्तिका के वष्त

तीन टाँगों पर खड़ा नत ग्रीव धैर्य धन गदहा ।

(6) क्षण की महत्ता– ष्छायावादोत्त काव्यष नाम के ग्रन्थ में डॉ. सिद्धेष्वर प्रसाद का कथन है कि श्क्षण के महत्व को स्वीकार करने के कारण प्रयोगवादी कवि ने प्रत्येक क्षण के भेगे हुए यथार्थ को महत्व दिया है। वह प्रत्येक क्षण को पीकर अपने को कायम रखना चाहता है। वस्तुतः क्षण काल की लघुतम इकाई भी विराट् है, महत् हैं।श एक विषेश क्षण की अनुभूति को गिरिजा कुमार माथुर किस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं, यहाँ देखने योग्य हैं–

आ अचानक सूनी–सी सन्ध्या में

जब मैं यो. ही मैले कपड़े देख रहा था,

किसी काम में जी बहलाने,

एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपेटा,

गिरा रेषमी चूड़ी का

छोटा सा टुकड़ा,

उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहने थी,

रंग भरी उस मिलन रात में।

(7) साधारण विशयों का चयन— डॉ. गुप्त के अनुसार नए कवि के पास कहने के लिए कोई बड़ी बाल या कोई विषेश विशय नहीं है। अपने आसपास की साधारण वस्तुओं, जैसे—चूड़ी का टुकड़ा, चाय की प्यालियों, बाटा को चप्पल, साइकिल, फ्रेंच लेदर, कुर्ता, वेटिंग रूम, होटल, दाल, तेल, नॉन, लकडी आदि को लेकर इधर—उधर की कुछ कह देता है, वही उनके लिए कविता बन जाती है—

बैठ कर ब्लेड से नाखून काटें,

बाह्य प्रवष्त्तियाँ—

बढ़ती हुई दाढ़ी में बालों के बीच की खली जगह छाँटे,

सर खुजलायें, जम्हुआएँ,

कभी धूप में आएँ

कभी छांह में जाएँ।

डॉ. गणपति चन्द्र गुप्ता ने इस षीक के अन्तर्गत प्रयोगवादी कवियों के अन्त— साक्ष्यों अथवा वक्तव्यों को प्रस्तुत किया जो उन्होंने अपने कवि कर्म के सन्दर्भ में ए हैं। ष्तीसरा सप्तकष में उल्लिखित सर्वेष्वरदयाल सक्सेना के वक्तव्य का विष्लेशण करते हुए उन्होंने लिखा कि श कवि ने कविता की प्रेरणा से कविता नहीं लिखी, अपितु हिन्दी में एक भी दार्षनिक कवि, एक भी समझदार आलोचक और एक भी जागरूक पाठक न होने की विवषता के कारण लिखी।श अभिप्राय यह है कि सक्सेना साहब की कविता करने मात्र से उक्त सारी समस्याओं का समाधान हो जायेगा। इस कंथन के पष्चात् उनकी कविता का एक नमूना उनकी किस प्रवृत्ति को उजागर करता है, यह विचारणीय है—

मैं डरी—डरी सी, चले नहीं जाना बालमा बेले की पहले में कलियाँ खिल जाने दो द्यद्य

इसी प्रकार ष्तीसरा सप्तकष के कवि मदन वात्स्यायन का यह कथन प्रयोगवादी कविता की

प्रवष्त्ति को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

उशा देवता से लेकर गधे तक नग्न यौन भावना से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक, देहाती अमराई से लेकर कलपुर्जी तक, अवचेतन से लेकर स्थूल के अनुत्तेजित चित्रण तक इतना व्यापक विस्तार षायद पहले किसी वाद को कविता का न हुआ।श

एक तीसरा कथन कीर्ति चौधरी का है, जिसमें उन्होंने प्रयोगवादी कवियों की अतिरिक्त क्षमता का विज्ञापन किया है——

श्अपने रचनाओं की व्याख्या प्रायः लेखक करने लगे हैं। पहले युगों में ऐसी बात नहीं थी। इस दृश्टि से हमारे साहित्य में बड़ी प्रगति की है।

षैलीगत प्रवृत्तियाँ—

डॉ. गुप्त के अनुसार, श्नए कवियों ने नूतन प्रयोगों को अपना लक्ष्य मानते हुए अपनी कविता 1. मेंनए बिम्बों, नए प्रतीकों, नए उपमानों, मुक्त छन्दों और नयी षब्दावली का प्रय ोग किया है।परम्परागत प्रतीकों एवं उपमानों के स्थान पर उन्होंने आधुनिक युग के उपकरणों– विषेशतवैज्ञानिक साधनों की प्रतिश्ठा का प्रयास किया है। उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं–

(1) नए प्रतीक(२) नए उपमान चुप है।

(३) नए विम्ब प्यार बल्ब यूज हो गया।

ऑपरेषन थियेटर सी, जो हर काम करते हुए श्री कोठरी में दीप की लौ–संकती ठण्डा

अन्धेरा ।बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा ।

डॉ. कैलाष बाजपेयी ने अपने षोध प्रबन्धक, आधुनिक हिन्दी कविता में षिल्प में प्रयोगवादी

काव्य की षिल्पविधि एवं षैली में अनेक दोशों का उल्लेख किया, जो किसी भी जिज्ञासु के लिए उपादेय सिद्ध हो सकता है।

माड्यूल – 4

नई / आधुनिक कविता की प्रमुख प्रवषत्तियाँ

ष्नयी कविताष षब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है– सामान्य अर्थ में तथा विषेश अथवा रूढ अर्थ में। सामान्य अर्थ में ष्नयी कविताष के अन्तर्गत सन् 1960 के बाद लिखी जाने वाली एक विषेश प्रकार की कविताएँ आती हैं।

नयी कविता का प्रारम्भ – नयी कविता की प्रवषत्तियों का प्रारम्भ 1940 के आसपास मानना उचित है। सन् 1954 में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के संयुक्त सम्पादकत्व में ष्नयी कविताष नामक अ) वार्शिक पत्रिका इलाहाबाद से प्रकाषित हुई और इस पत्रिका के प्रकाषन के साथ हिन्दी जगत् में नाम प्रचलित हुआ। सन् 1959 के आसपास ही नयी कवितापरक रचनाएँ प्रकाषित होने लगी थी और सन् 1960 से इसकी एक सुनिष्चित परम्परा उपलब्ध होती है। सन् 1956–57 में वह एक स्वतन्त्र कविता धारा के रूप में प्रकट हुई। सन् 1960 से तो हिन्दी काव्य–क्षेत्र में कविता युग का नाम ही नयी कविता है।

ंज ंति ंज ंपमकरण ष्नयी कविताष का नामकरण अज्ञेय की देन कहा जाता है पर विचार करने पर यह प्रकट होता है कि उक्त नाम विदेषों से आयात किया हुआ नाम है। सन् 1930 में लन्दन में ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित पत्रिका ष्न्यू वर्सष (छमू टमतेम) प्रकाषित हुई। सारांष यह है कि नवीनता व्यंजक के नैषन के कारण ष्नयी कविताष का नाम रखा गया। स्वच्छन्दतावादी – प्रगतिवादी मान्यताओं को समाहित करती हुई ष्नयी कविताष अब सर्वमान्य हो गयी है।

नयी कविता का प्रवर्तक – कुछ लोगों की मान्यता है कि अज्ञेय इस विषिश्ट काव्यधारा के प्रवर्तक हैं। यह स्वीकार्य हैं कि सन् 1940 के पष्चात् र व्रत कविताओं पर अज्ञेय का प्रभाव दृश्टिगत, होता है, फिर भी इन कविताओं की समीक्षा परीक्षा से इनकी भिन्न प्रवषत्ति का बोध ा होता है। यह प्रवषत्ति धीरे–धीरे अपना व्यापक प्रचार–प्रसार करके सर्वमान्य कविता धारा के रूप में प्रतिश्ठित हो गई है। अस्तु, प्रयोगवाद के जनक के रूप में प्रतिश्ठित अज्ञेय का नीय कविता के क्षेत्र में आगमन देर से हुआ। अतः उन्हें प्रवर्तक का पद नहीं दिया जा सकता। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का दावा है कि नयी कविता की अवतारणा उनके तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा हुई, जिसका मूर्त रूप ष्नए पत्तेष (सन् 1954) के रूप में सामने आया। इस प्रकार इन दोनों को संयुक्त रूप से इस विषिश्ट कविता धारा का प्रवर्तक माना जा सकता है।

(1) जीवन के प्रति आस्था – नयी कविता के कवियों में जीवन के प्रति अटूट आस्था एवं विष्वास दिखाई पड़ता है। वर्तमान जीवन की विशम परिस्थितियों उनके मन में टूटने का भाव नहीं पैदा करतीं। इनकों जीवन के विषाल प्रषस्त क्षेत्र में केवल ष्वेस्टलैण्ड का प्रसारष ही नहीं दिखाई देतष और ष्मानवष में केवल ष्हालोमैनष का रूप ही नहीं दृश्टिगत होता। ष्भविश्यष को अपनी इच्छानुसार ढालने की क्षमता में इनका अगाध विष्वास है–

ओ भवितव्य के अरबो तुम्हारी रास

हम आष्वस्त अंतर से मजबूत हाथों से दवा हर बार मोड़ेंगे।

(2) क्षणवाद की अभिव्यक्ति – जे.पी. सार्त्र द्वारा प्रवर्तित अस्तित्ववाद वस्तुतः अतीत और भविश्य के स्थान पर केवल वर्तमान में विष्वास करता है। वह वर्तमान क्षण की अनुभूति को भविश्य की कल्पनाओं से अधिक महत्व देता है। नीचे की पंक्तियों में यह देखा जा सकता है कि अज्ञेय जैसे अमर्थ कवि ने किस प्रकार भविश्यत् के ष्कलष को महत्व न देकर वर्तमान की उपादेयता को व्यंगित किया है–

मिथ्या, कल मिश्रा,

कल की निषि बनसार तमिस्त्रा

और अकेली होगी

स्मषति की सूखी राजा रूऑसी

एक हैली होगी।

(3) समाजपरक व्यक्तिवाद – छायावादी काव्य को आवरणग्रस्त, सूक्ष्म वैयक्तिकता तथा प्रगतिवादी काव्य की व्यक्तिनिरपेक्ष सामूहिकता के विरूद्ध प्रयोगवादी कवियों ने जिस व्यक्तिवाद का प्रवर्तन किया उसमें वैयक्तिकता अहंवादिता तथा असामाजिकता के रूप में साकार हो उठी। नए कवियों को इस प्रवषत्ति की व्यर्थता का बोध हुआ और उन्होंने अपने अहं को समाज के साथ एकाकार करना चाहा। यह सामाजिकतापरक वैयक्तिकता सर्वप्रथम अज्ञेने में दिखाई पड़ती है–

यह दीप अकेला स्नेह भरा।

हे गर्व भरा मदमाता पर

को भी पंक्ति को दे दो।

(4) नागरिक जीवन की आलोचना– नया कवि सामाजिक परिस्थितियों की विडम्बना को बड़ी सषक्त, तटस्थ एवं वस्तुगत वाणी प्रदान करेंरू सकता है। ष्अज्ञेयष की कविता ष्साँपष इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। इसमें कवि ने ष्साँपष के माध्यम से नागरिक जीवन के सम–सामयिक स्वार्थ–विशमय परिवेष की बड़ी सांकेतिक तथा तीखो व्यंजना प्रस्तुत की है–

साँप तुम सभ्य हुए नहीं, न होगें

नगर में बसता भी तो तुम्हें नहीं आया एक बात पूछें, उत्तर दोगे ?

फिर कैसे सीखा डसना ?

तिश कहाँ पाया ?

भवानी प्रसाद मिश्र की षीत नरोष तिथा सर्वेष्वरदयाल की ष्कलाकार और सिपाहीष कविताएँ भी इसी प्रकार की राजनीति विशमताओं को व्यक्त करती है।

(5) यौन का मुक्त चित्रण– नयी कविता में यौनाकर्शण बौद्धिक जटिलता वाले विषुद्ध मानव का यौनाकर्शण है, जिसमें आध्यात्मिकता का योग नहीं है और न यहाँ किसी नैतिकता का आवरण धारण किया. गया है। यहाँ नारी न तो नरक का द्वार मानी गयी है और न स्वर्ग की अप्सरा नारी उसकी जीवन–संगिनी हैं, जो जिन्दगी में उसके साथ–साथ खटती और पिसती है। नारी का सुन्दर रूप उसे लुभाता है और योग के लिए आमंत्रित करता है –

इन फिरोजी होठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी ।

आज मुख्य मेहमान तुम

रात के इस लोर षो में

एक बार बस एक बार

अपने तन की छाप छोड़ जाओ मुझ पर

(6) ईष्वरी मूल्यों की अस्वीकृति– नयी कविता के कवि मानवेतर षक्तियों पर विष्वास नहीं करते । ऊपर से लबादे की तरह ओढ़ी हुई या लम्बी दाढ़ी–मूँछ की तरह लगाई गयी आस्थाओं से वह पृथक् है । मुक्तिबोध की निम्नलिखित पंक्तियों इस प्रकार का ही विज्ञापन करती हैं.

फिर भी यषस्काय दिक्काल सम्राट्

तुम कुछ नहीं हो, फिर भी हो सब कुछ

काल्पनिक योग्य की पूँछ के बालों को काटकर होठों पर मूँछ लटका रखी है।

(7) दलित मानवता के प्रति संवेदना

नए कवियों को दलित मानवता के प्रति विषेश सहानुभूति

है। ष्स्नेह – षपथष षीर्शक कविता में कवि किस प्रकार नगे, भूखे भिक्षुक के प्रति संवेदनषील है, यहाँ दर्षनीय है–

हैं षथ तुम्हें करुणाकर की है षपथ तुम्हें उस नंगे की, जो रोह – भीख की माँग–माँग, मर गया कि उस भिखमंगे की।

(8) षिल्प– वैषिश्टय – षिल्प की दृश्टि से नयी कविता में गद्य का विषेश समावेष हुआ है। नया कवित समसामयिक परिवेष की व्यंजना बौद्धिक दृश्टि से करना चाहता है, इसलिए वह भावात्मक लयबद्ध छन्दों की अपेक्षा गद्यात्मक छन्दों को ही अपनी बौद्धिक अभिव्यक्ति के लिए अधिक अनुकूल मानता है। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसलिए ष्नयी कविताष का नाम षाये कविताष प्रस्तावित किया है।

प्रतीक तथा बिम्ब – विद्यपान के प्रति नए कवियों का विषेश आकर्शण रहा है। अज्ञेय प्रतीक को ज्ञान के अन्वेशण का साधन मानते हैं। नयी कविता में प्रतीकों का चयन जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से किया गया है। ये प्रतीक परम्परागत न होकर अछूते तथा अपरिचित क्षेत्रों से चुने गए हैं।

विम्ब–विधान के क्षेत्र में भी नए कवि न वर्ण, गन्ध, स्पर्ष और नाद सम्बन्धी अनेकानेक सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। यहाँ श्री षमषेर का एक वर्ण–चित्र प्रस्तुत है.

प्रात नम था– बहुत नीला षंक जैसे

भोर का नभ

लीपा हुआ चौका

राख से लीपा

(अभी गीला पड़ा है।)

भाशा की दृश्टि से नए कवियों का आकर्शण अब सरल षब्दों की ओर बढ़ रहा है। उनके द्वारा प्रयुक्त षब्दों में लोक जीवन की गन्ध भी समाई रहती है। इधर नयी कविता में ष्लोक धुनोंष के प्रयोग की प्रवृत्ति भी विषेश बढ़ी है।

अन्त में निश्कर्श रूप में यह कहा जा सकता है कि उपलब्धि और सम्भावनाओं की दृश्टि से नयी कविता आज के युग की काव्य–प्रवषत्ति है। उसमें एक सीमा तक अवष्य ही अनास्था, कुण्ठा तथा विकृतियों की अभिव्यक्ति हुई है, लेकिन साथ ही उसमें भविश्य की कविता के स्वस्थ तत्व भी सन्निहित हैं और वे दिनों–दिन अधिक विकसित होकर एक विषिश्ट आकार ग्रहण करते जा रहे हैं।

इकाई – 11 मैथिलीशरण गुप्त समीक्षात्मक भाग

मैथिलीषरण गुप्त रू जीवन–परिचय– राश्ट्रकवि मैथिलीषरण गुप्त का जन्म सन् 1886 ई. झाँसी जिले के अन्तर्गत चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ रामचरण था। रामचरण जी परम निश्ठावान् वैश्णव, भगवद्भक्त और काव्य–प्रेमी थे। गुप्त जी की प्रारम्भिक षिक्षा अपने गाँव में ही हुई। आगे पढ़ने के लिए वे झाँसी गये, परन्तु वहाँ मन न लगने कारण लौट आये और घर पर ही रहकर स्वाध्याय करने लगे। पिता के काव्यानुरागी स्वभाव का उन पर प्रभाव पड़ और बाल्यकाल में ही उन्होंने एक कविता रच डाली। पिता ने प्रसन्न होकर उन्हें महान् कवि होने का आषीर्वाद दिया, जो आगे चलकर ग्लीभूत हुआ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में गुप्त जी को अपनी प्रतिभा के अनुरूप क्षेत्र प्राप्त हुआ और उनकी काव्य–चेतना का विसतार हुआ। द्विवेदी जी के आदेष से ही गुप्त जी ने सर्वप्रथम खड़ी बोली में ष्भारत भारतीष नामक काव्य–रचना की, जिससे उन्हें अपूर्व ख्याति प्राप्ति हुई। इसके बाद उनके अनेक काव्य–संग्रह प्रकाषित हुए– देष–प्रेम, समाज–सुधार, धर्म, राजनीति, भक्ति आदि इनकी कविता के वर्ण्य विशय है। सांस्कृतिक और राश्ट्रीय भावनाओं से युक्त कविता लिखने के कारण ही इन्हें राश्ट्रकवि की उपाधि प्राप्त हुई।

श्री मैथिलीषरण गुप्त जी का जीवन अत्यन्त सरल था। मौन रहकर साहित्य – साधना में लीन रहने वाले कलाकारों में गुप्त जी का नाम अग्रगण्य है। वे संरत होकर भी गम्भीर विचारक थे। धर्मिक क्षेत्र में वे श्री समप्रदाय के अनुयायी रामोपासक वैश्णव थे, भी उनके धर्म के मूलमन्त्र, ईष्वर–प्रेम, सब धर्मो में समान श्रम, सत्य और अहिंसा थे। गाँधीवाद ने उनके अन्तस् को प्रभावित किया और कर्त्तव्य–क्षेत्र में वे मानवता के उपासक थे और जहाँ भी उन्हें मानव की महत्ता के दर्षन हुए, उस महत्ता को उन्होंने अपने साहित्य का आधार बनाया। राम–कृश्ण तथा बुद्ध जैसे महामानवों ने उनके अमर–काव्यों को प्रेरणा दी और उर्मिला, यषोधरा जेसी महनीय महिलाओं के पावन चरित्र पर उनका कवि हृदय न्यौछावर हुआ। आस्तिकता, देष–प्रेम और साहित्य प्रेम यही उनके व्यक्तित्व का त्रिवेणी संगम था।

गुप्त जी को उनके काव्य की सर्वोत्कृश्टता पर सम्मानित करते हुए आगरा विष्वविद्यालय ने डी. लिट् और साहित्य सम्मेलन ने ष्साहित्य वाचस्पतिष की माद उपाधि से विभूशित किया। इनके ष्साकेतष नामक महाकाव्य पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने मंगलाप्रसाद पारितोशिक प्रदान किया। सन् 1945 ई. में भारत सरकार से आपको ष्पद्म भूशणष की उपाधि प्राप्त हुई। आप दो बार राज्यसभा के सदस्य भी मनोनीत किये गये।

12 दिसम्बर, सन् 1964 ई. को साहित्याकाष का यह जनमगाता सूर्य अस्त हो गया। रचनाएँ – मैथिलीषरण गुप्त ने लगभग चालीस ग्रन्थों की रचना की, जिनमें मौलिक, अनूदित, प्रबन्ध ाात्मक, चम्पू आदि सभी प्रकार की रचनाएँ हैं। साकेत पबन्ध काव्य), जयद्रथ वध (खण्ड काव्य), पंचवटी (लघु खण्ड काव्य), द्वापर (गीतकाव्य), यषोधरा, भारत–भारती, चन्द्रहास, अनव, सि)राज, स्वदेष गीत, नहुश, कुणालगीत, मंगलघट, अर्जन और विसर्जन, रंग में भंग, किसान, वैतालिक, षकुन्तला, पत्रावली, हिन्दू, षक्ति, गुरूकुल, विकट भट, झंकार, प्रदक्षिणा, काम और कर्बला, गुरुतेगबहादुर, पृथिवीपुत्र, अजित, हिडिम्बा, विष्ववेदना, प्रदक्षिणा, अंजलि और अर्ध्य, त्रिपथगा (वकसंहार, वन– भैरव, सैरन्ध्री) तथा जयभारत गुप्त जी की प्रमुख कृ तियाँ हैं। गुप्त जी ने मेघनाद का वध, प्लासी का युग), वीरांगना, विरहिणी, ब्रजांगना, स्वप्नवासवदत्ता आदि का संस्कृत और बंगला से हिन्दी में अनुवाद किया। गरसी से उमर खय्याम की रूबाइयों का भी हिन्दी अनुवाद किया।

इन रचनाओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ष्रंग में भंगष और ष्जयद्रथ वधष कवि की आरम्भिक प्रयोगवादी रचनाएँ हैं। ष्भारत–भारतीष उन्हें राश्ट्र–चेतना का जगरूक कवि सि) करती ष्पंचवटीष उनकी साहित्यिक जागृति का प्रथम स्वर है। वह स्वर आगे–आगे विराट घोश बनता हुआ ष्साकेतष और ष्यषोधराष जैसे अमर काव्यों का सृजन करता है। ष्झंकारष और ष्मंगलघरष गुप्तजी की रहस्यवादी रचनाएँ हैं। पर कला की दृश्टि से गुप्तजी की ये श्रेश्ठ रचनाएँ नहीं हैं। वस्तुतः रहस्यवाद उनकी मूल प्रवृत्ति ही नहीं हैं, केवल यह तो युग संस्पर्ष है।

मैथिलीषरण गुप्त का काव्य सौश्ठव भाव पक्ष कलापक्ष

भारतीय संस्कृति के अमर गायक कविवर श्री मैथिलीषरण गुप्त जी हिन्दी–साहित्य के युग प्रतिनिधि कवि हैं, जिन्होंने युग की नाड़ी टटोल कर उसके स्पन्दन को अपनी वाणी द्वारा व्यक्त किया है। उनके काव्य में साहित्य और समाज का सुन्दर समन्वय मिलता है। जहाँ उनकी काव्य–प्रतिभा ने एक ओर अपनी सामाजिक चेतना से जीवन रस लिया है, वहीं दूसरी ओर भारतीय राश्ट्र और समाज की नसों में नव–जीवन का पुनीत श्रोत प्रवाहित किया है। उनकी काव्य–सम्पदा का क्षेत्र बड़ा व्यापक और विषाल है। वे अपने काव्य– आंचल में अपने युग की सभी प्रवषत्तियों को सहेज कर चले हैं। भारतीय . संस्कृति का भव्य आदर्ष, अतीत– गौरव का गान, वर्तमान के परिश्कार की प्रेरणा और भविश्य का सुखद सन्देष यह सब गुप्त जी के काव्य की भाव–भूमि है। उनकी भाव–भूमि जितनी सषक्त एवं सुविस्तष्त हे, उसकी अभिव्यक्ति के लिए उनका कलाप उतना ही समृ) षाली है। उनके काव्य में भाव और कला का मणिकांचन संयोग दृश्टिगोचर होता है। उनके भावपक्ष और कलापक्ष का यह अद्‌भुत समन्वय उनकी उत्कृश्ट काव्य–प्रतिभा का परिचायक है।

गुप्त जी की भावपक्षीय विषेशताओं की विवेचना निम्नलिखित षीर्श – बिन्दुओं के आधार पर

भाव पक्षीय – वैषिश्ट्य

(1) भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक– गुप्त जी मूलतः भारतीय संस्कृति के कवि हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के आदर्ष पुरुशों व पावन चरित्रों का सुन्दर चित्रांकन किया है। आत्म गौरव, आत्म–त्याग, देष–प्रेम और बलिदान का सन्देष सुनाहर हमें आत्म–बल एवं आत्म–विष्वास प्रदान किया हैद्य ष्अनधष काव्य–रचना में ष्मघष का भव्य चरित्र दर्षनयी है–

षविष्व वेदना विकल करे मुझ को सदा,

रखे सजग सजीव आतं या अपादा।

(2) समन्वयवादी कवि– गुप्त भी समन्वयवादी कवित हां व मूलतः राम भक्त होकर भी अन्य धर्मों के प्रति भी सहिश्णु रहे हैं। आप ने अपनी काबा और कर्बला रचनाओं में ष्इस्लाम ध् ार्मष तथा षुरुकुलष चरना में किक्ख मत के प्रति सहानुभूति एवं उदारता को अभिचित्रित किया है। आपके काव्य में भारतेन्दु युग, द्विवेदी–युग, छायावाद, रहस्यवाद आदि सभी साहित्यिक धाराओं एवं वादों का समन्वित रूप परिलक्षित होता है।

(3) मर्यादा पुरूशोत्तम के अनन्य एवं एकनिश्ठ भक्त– गुप्त जी भगवान राम के परम भक्त और अनन्य उपासक हैं। आनने राम के विष चरित्र का गुणगान किया है। राम को आदर्ष और मर्यादा का प्रतीक के रूप में देखते हुए उन्हें आधुनिक समाज की समस्याओं के समाध् ाानकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया हैं आपने राम के चरित्र को सहन व सम्भाव्य बत ते हुए एक महाकाव्य के रूप में समझा है।

षराम ! तुम्हारा चित्र तो स्वर्ण एक काव्य है।

कोई भी कवि बन जाये न संभाव्य है।ष

गुप्त जी की भक्ति एकनिश्ठ है। यही कारण है कि कृश्ण चरित्र प्रधान ष्द्वापरष् रचना में भी गुप्त जी ने राम के ही प्रभाव से अपने आप को प्रभावित मानते हुए कहा

ष्धनुर्बाण या वेणु लो, ष्याम रूप के संगामुझ पर चढ़ने से रहा, राजा दूसरा रंग।

(4) राश्ट्रवादी विचाराधारा— मैथिलीषरण गुरु जी की काव्यधारा राश्ट्रवादी चेतना से सिंचित और खिली हुयी है। आपने अपने समय की अंग्रेजी षासन की गुलामी की बेड़ियों में सी हुयी भारतीय जनता के दुःख और यातना को गम्भीरतापूर्वक अनुभव किया था। इसलिये स्वतंत्रता का आहावन करते हुए गुप्त जी ने देषद्रोही और देष के गद्दारों को टकार लगाते हुये कहा है—

ष्जिसको न निज जाति, निज राश्ट्र अभिमान है।

वह नर नहीं है, पषु निरा है औ मष्तक समान है।ष्

(5) गाँधीवाद विचारधारा — गुप्त जी गाँधीवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थे। इस विचारधरा के अनुसार आप समन्वयवादी दृश्टि के पूरक बन गये थे। वे समाज—सुधार, सर्वधर्म—समन्वय और जातीय साम्प्रदायिक सद्भाव एवं भाई—चारे की भावना की संस्थापना के प्रबल पक्षधर थे। राजतन्त्र और प्रजातन्त्र का परस्पर मूल करने की भावना से आपने लिखा है कि—

ष्राजा प्रजा का पात्र हैय वह एक प्रतिनिधि मात्र है।यदि वह प्रजापालक नहीं तो हर

तरह से त्याज्य है।

(6) रस— परिपाक— गुप्त जी की रचनाओं में षृंगार, करूण, षान्त, वात्सल्य तथा वीर आदि रसों का बड़ा सुन्दर परिपाक हुआ है। श्रृंगार मार्यादित है, उसमें हलकापन कहीं भी नहीं है। माता सीता के इस रूप चित्रण से यह बात सर्वथा स्पश्ट है—

ष्अचल पर कटि में खोएं कछोटा मारे।

सीता माता भी आज नई धज धारे

गुप्त जी का विरह— चित्रण बड़ा मार्मिक और ह्रदयस्पर्षी है। ष्साकेतष् की उर्मिला तो विरह की मूर्तिमान प्रतीक है। वह सती अपने मानस—मन्दिर में प्रियतम की प्रतिमा स्थापित कर विरह में जलती हुयी स्वयं ही उसकी आरती बन जाती है। उसे अपना भी ज्ञान नहीं रहता है—

ष्मानव — मन्दिर में सती पति की प्रतिमा थाप ।

जलती—सी उस विरह में बनी आरती आप।।

इसी प्रकार ष्साकेतष् महाकाव्य के ष्भरत—षोकष् प्रसंग में ष्करुण रसष् साकार हो उठा है। कवि की ये पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं——

षफिर प्रदक्षिण कर तथा कर जोड़, रो उठे यों भरत धीरज छोड़।

तात ! यह क्या देखता हूँ आज? जा रहे हो तुम कहाँ – नरराज

(7) प्रकृति–चित्रण– गुप्त जी के काव्य में प्रकृति की सुरम्य स्थली का मनोहारी चित्रण हुआ है। आपने अन्य कवियों की भाँति प्रकृति के चित्रात्मक, संवेदनात्मक, उपदेषात्मक एवं अलंकारिक चित्रण किये हैं। आफ्नो एस पि का कोमल एवं उदार रूप हा आभाचात्रत दृश्टिगोचर होता है। इस दृश्टि से ष्साकेतष के प्रथम सर्ग का ष्प्रभात–वर्णनष अवलोकनीय है–

ष्सूर्य का यद्यपित नहीं आना हुआ, किं समझो रात का जाना हुआ। क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चुके, रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ चुके

कलापक्षीय वैषिश्ट्य–

(1) वर्णन–विषता वर्णन की विषतः गुप्त जी की काव्य–कला की प्रमुख विषेशता है। भाव, वस्तु, दृष्य सभी का वर्णन गुप्त जी ने बड़े ह विषद् रूप में किया है। उनकी वर्णन–षैली

बड़ी सजीव और प्रभावोत्पादक है। ष्साकेतष महाकाव्य के प्रथम सर्ग में अयोध्या नगरी का बड़ा ही भव्य . और विषद् चित्रण किया गया है। कवि की ये पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

श्देख लो साकेत नगरी है वहीं, स्वर्ग से मिलने गगन में जा ही। केतु–पट अंचल सदृष्य हैं उड़ रहे, कनक कलसों पर अमर दृग जड़ रहे ।।

(2) उक्ति– वैचित्य – किसी बात को सीधे ढंग से कहना गुप्त जी जानते ही नहीं हैं। उनके कथन व्यंजना और लक्षण के सौन्दर्य से सम्मन्न हैं। इसीलिए गुप्त जी के काव्य में अनोखी उक्तियाँ दृश्टिगोचर होती हैं। ष्यषोधराष खण्डकाव्य में नारी जीवन की दयनीयता पर कवि का यह कठोर व्यंग्य कितना मार्मिक है–

ष्अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी । आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।।

(3) भाशा वैषिश्ट्य – गुप्त जी ने अपने काव्यभावों की अभिव्यक्ति के लिए खड़ी बोली भाशा को ही आधार बनाया है। व्याकरण की दृश्टि से वह सर्वथा परिश्कृत औरपरिमार्जित है। यद्यपि आपकी रचनाओं की भाशा प्रौढ़ तथा संयत हो गयी है। महाकाव्य ष्साकेतष तथा खण्डकाव्य ष्यषोधराष में खड़ी बोली भाशा का बड़ा ही कलात्मक रूप देखने को मिलता है। गुप्त जी की इस भाशा पर वैसे संस्कृत का प्रभाव है, प्रायः उसका सहज और प्राकृत रूप ही उनकी काव्य रचनाओं में विद्यमान है। भावों के ह्रदयस्पर्षी और मार्मिक होने के कारण उन्हें समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है। एक उदाहरण देखिये–

ष्तन तड़प–तड़प कर तप्त तात ने त्यागा।

क्या रहा ओसिप्त और तथापि अभागा।ष

(4) षैली– वैषिश्ट्य – गुप्त जी ने अपने काव्य में भावात्मक तथा चित्रात्मक षैली का आकर्शक प्रयोग किया है। इन दोनों षैलियों में आपका चिन्तन, दर्षन, मनन और

आत्माभिव्यंजना साकार हो उठी है। इस प्रकार को षैली के प्रयोग में संचकता और चित्रोपमता के गुण विषेश रूप से प्रयुक्त हुये हैं। निम्नलिखित उदाहरण दृश्टव्य हैं—

ष्श्री नक्षत्र राषि—निषा ओस टपकाती।

रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती

(5) अलंकार योजना— गुप्त जी मैं अपनी भाशा षैली को अलंकारों की चमक—दमक से खूब सजाया है। आपकी अलंकार योजना बड़ी सज्ज और आकर्शक है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिष्योक्ति, विभवना, सन्देह, भ्रान्तिमान, मानवीकरण, विषेशण विपर्यय आदि गुप्त जी के प्रिय अलंकार हैं, जिनका सहज सौन्दर्य आपकी काव्य—रचनाओं में सर्वत्र दृश्टिगोचर होता है। कैकेयी के क्रोध के उपरान्त राम के विनम्र वचन दषरथ के लिए ठीक वैसे ही जैसे कान के पष्चात् भूमि पर मेघवृश्टि होना—

ष्असर पूर्व उतार तारक हार, मलिन—सा सित—षून्य अम्बार—धारद्य प्रकृति—रंजन—हीन—दीन अजत, प्रकृति षविधवाष थी भरे हिम वस्त्रा ।

(6) छन्द योजना— छन्द—योजना की दृश्टि से भी गुप्त जी का काव्य समष्) षाली है। वर्तमान खड़ी बोली कविता में जितने छन्दों का प्रयोग गुप्त जी ने किया है, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं किया है। आपने तुकान्त, अतुकान्त सभी प्रकार के छिन्द लिखे हैं। आपकी रचनाओं में रोला, छप्पय, सवैया, कवित्त, दोहा, हरिगीतिका, आर्यापद, पादाकुलेक, आदि मात्रिक छन्दों ती षार्दूल विक्रीडित, षिखरणी, मालिनी, द्रुतविलम्बित आदि वर्णिक छन्दों का विशय और प्रसंग के अनुकूल फल प्रयोग दृश्टिगोचर होता है।

साहित्य में स्थान एवं महत्व — आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के विकास में गुप्त जी की काव्य—साधना में महत्वपूर्ण भूमिका का सम्पादन किया है। भारतेन्दु—युग के पष्चात् लोकप्रियता की दृश्टि से श्री मैथिलीषरण गुप्त जी का स्थान आज के समूचे हिन्दी कवियों में सर्वोपरि है। एक स्थान पर गुप्ज जी ने लिखा है— ष्हाय ! लेखक कहीं जनसाधारण का कवि हो सकता, परन्तु प्रतिभा देवी का वह प्रसाद प्राप्त न हो सका।ष

वास्तव में देखा जाये तो गुप्त जी को प्रतिभा देवी का यह प्रसाद सबसे अधिक मिला है। इस प्रसाद की प्राप्ति के लिए उन्होंने जो साधना की है, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर है। आज भी उनकी कविता जनता के हृदय में राश्ट्रीयता और धैर्य—निश्ठा का मन्त्र बैंक रही है। गंगा की निर्मल जन—धारा की भाँति जन—जीवन के धरातल पर वह वह रही है। यही कारण है कि गुप्त जी की लोक प्रियता आज भी जनता के बीच विद्यमान है। आपकी साहित्यिक देन का मूल्यांकन करते हुये आपकी महत्वपूर्ण काव्य— कृति ष्साकेतष पर मंगला प्रसाद पारितोशिक मिला और भारत सरकार ने आपको ष्पद्मभूशणष अलंकार से अलंकृत किया। निश्कर्शतः यह कहना समीचीन है कि जीवन के षाष्वत मूल्यों को प्रतिपादित करने वाले गुप्त जी का आधुनिक कवियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

गुप्त जी के काव्य में अभिव्यक्त राश्ट्रीय भावना

श्री मैथिलीषरण गुप्त जी हमारे आज के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। भाव, भाशा, षैली छन्द और अलंकार योजना सभी दृश्टियों से गुप्त जी की रचनाएँ अपने युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। हिन्दी काव्य–धारा के विकास में इस युग का प्रारम्भ बीसवीं षताब्दी के प्रथम दषक से माना जा सकता है। यह वह युग था, जब समाज सुधार और राजनीति के आंदोलनों की देषव्यापी चेतना सर्व व्याप्त थीं। विधवा–विवाह, अछूतोद्धार, नारी जागरण आदि समाज सुधार के नये आन्दोलन प्रकाष में आ रहे थे। राजनैतिक क्षेत्र में भी देष एक नया मोड़ ले रहा था। गाँधी के नेतृत्व में सारा देष स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कटिबद्ध था।

. गुप्त जी ने विरासत में प्राप्त इस नवीन पूँजी की भारतवर्श के वर्तमान परिवेष में ढाल कर समषद्धिषाली बनाया। गुप्त जी के युग की सभी प्रवषत्तियों उनकी रचनाओं में साकार हुयी हैं, जिनकी विवेचना, निम्नलिखित षीर्श– बिन्दुओं के अन्तर्गत दृश्टव्य हैं–

(1) राश्ट्रीयता– राश्ट्र–कवि या युग–प्रतिनिधि कवि उस कवि को कहा जाता है, जो अपने राश्ट्र की समकालीन सभी दषाओं तथा समस्याओं का अंकन करता है। राश्ट्र कवि की कविता में उसके युग के स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। वह अपने युग का चित्रण करके जन–जीवन को नई दिषा प्रदान करता है और उसमें नवीन चेतना का संचार करता है। राश्ट्र– निश्पक्ष भाव से सम्पूर्ण राश्ट्र की समस्त भावनाओं का सच्चे रूप से प्रतिनिधित्व करता है।

उपर्युक्त मान्यताओं के सापेक्ष में गुप्त जी सच्चे अर्थों में एक युग प्रतिनिधि या राश्ट्रकवि सिद्ध होते हैं। उनके काव्य में अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि सभी समस्याओं का व्यापक रूप से चित्रण मिलता है। उन्होंने प्राचीन मर्यादी, समन्वय, प्रेम, कर्मठता आदि आदर्षवादी भावनाओं की पश्ठभूमि में अपने युग की समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उनके काव्य में युग–चेतना का व्यापक रूप से सन्निवेष दृश्टिगोचर होता है। गुप्त जी ने रामकाव्य को प्रमुखता देते हुए राश्ट्रीय चेतना और आधुनिकता का समावेष अपने साहित्य में किया है।

सम्वत् 1969 में गुप्त जी की रचना ष्भारत–रतीष् प्रकाषित हुयी, जिसने गुप्त जी को राश्ट्रकवि के रूप में प्रतिश्ठित किया। इस में भारतीय संस्कृति और परम्परा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में भारतीय अस्मिता की पहचान और उसका गौरव गान दिया गया है। इसके माध्यम से उन्होंने राश्ट्रीय जागरण के सबसे प्रबल और समर्थ स्वर से युग मानस का झंकृत कर दिया। उनकी इस रचना ने देष के लाखों नव–युवकों को देष–प्रेम और बलिदान की सूर्ति प्रदान की। यदि यह कहा जाये कि उनकी ष्भारत–भारतीष् सचमुच राश्ट्र के मुक्ति आन्दोलन की गीता बन गयी थी, तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसके अतिरिक्त गुप्त जी को अन्य काव्यकृतियाँ जैसे– वैतालिक, स्वदेष संगीत, रंग में भंग, विकट–भट आदि लगभग सभी रचनायें देष–भक्ति और देष–प्रेम की दिव्य – भावनाओं से संजोई हुयी हैं। उन्होनें अपने देषवासियों की दुर्दषा को देखकर उस पर विचार करने के लिए आह्वावन किया है–

को है–

ष्हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी ?

आओं विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।

विदेषी षासन के प्रति उनके मन में तीव्र आक्रोष था, जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने इस प्रकार

ष्नीचता का भी पाया कुछ पार है, क्या तुम्हारे लिये ही संसार है ? तुम प्यारे देष को लूटा करो पर यहाँ जीना हमारा भार है।

गुप्त जी को भारतवर्श के अतीत गौरव पर गर्व है। वे भारत को संसार का गुरू मानते हैं–

ष्संसार को पहले हम ने ज्ञान–षिक्षा दान दी।

व्यापार की, व्यवहार की और विज्ञान की।

हिन्दू–मुस्लिम एकता गुप्त जी के युग की महत्वपूर्ण समस्या थी। गुप्त जी ने उन्हें एकता सूत्र में बाँधते हुये कहा है कि––

ष्जाओ तुम जाकर अपनी अजान दो । और गा बढकर उतारें हम आरती ।।

(2) गाँधीवाद विचारधारा – गुप्त जी गाँधीवादी विचारधारा के पोशक हैं। वे काय से और मन से गाँधी जी के सिद्धान्तों के साथ रहे हो गाँधीवाद में जो सत्य और अहिंसा के प्रति तीव्र आग्रह है, बलिदान, त्याग और देष–प्रेम की जो वनायें हैं, समाज सेवा का जो भव्य आदर्ष है, अछूत, नारी– समाज, किसान, मजदूर आदि दलितों के प्रति जो प्रेम–भाव है, हिन्दू–मुस्लिम एकता की जो गंध है, उसके बहुत ही स्पश्ट स्वर गुप्त जी के काव्य के मुखरित हुये हैं। इस प्रकार गाँधीवाद का मूर्तिमान रूप उनके काव्य में प्रतिबिम्बित होता है। वे स्वयं गाँधी जी को अपना ष्इश्टष् मानकर उनके सिद्धान्तों का अनुसरण करने का संकल्प लेते हुये कहते हैं–

ष्न तन सेवा, न म सेवा, न जीवन और धन सेवा।मुझे है इश्ट–जनवा, सदा सच्ची भुवन

– सेवा गुप्त जी ने ष्साकेतष् महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य में राम वन गमन

के अवसरपर सीता जी वनवासी भल कुमारियों को सूत कातना सिखाती हैं और अयोध्य

ावासी श्रीरामको वन जाने से रोकने के लिए सत्याग्रह का आश्रय लेते हैं। देखिये कवि

के षब्दों में–

ष्राजा हमने राम तुम्हीं को है चुना, करो न तुम यों हाथ लोकमत अनसुना । जाओ यदि जा सको, रौंद हमको यहाँ, यों कह पथ में लेट गये जन वहाँ ।

(3) सामाजिक चेतना– गुप्त जी का काव्य समाज–परक है। उन्होंने अपने सुख–दुःख की बाते नहीं कीं, बल्कि अपने समाज और देष की परिस्थितियों के चित्रों को अपने काव्य में मूर्त रूप प्रदान किया। गुप्त जी ने अपने युग के समाज का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसके विकास के लिये मर्यादा– पालन की अनिवार्यता को प्रतिपादित किया। उन्होंने अपने महाकाव्य नायक श्रीराम के माध्यम से समाज में मर्यादा को प्रतिश्ठित करने का प्रयास किया। दृश्टव्य हैं ये पंक्तियाँ–

ष्मैं नहीं सन्देष यहाँ स्वर्ग का लाया, मैं भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया। मैं आया और भी जिसमें बनी रहे मर्यादा

गुप्त जी समाज में वर्ण व्यवस्था के पक्षपाती थे, परन्तु परस्पर प्रेम तथा सद्भावना को वे अनिवार्य मानते थे । ष्भारत–भारतीष की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

ष्आचार में कुछ भेद हो जाने पर प्रेम हो व्यवहार मेंदेखें हमें कौन सुख मिलता नहीं

संसार में।।

गुप्त जी प्रजातान्त्रिक षासन प्रणाली में विष्वास करते हैं। उनका विचार है कि अत्याचारी ब्रिटिष षासन को समाप्त करके देष में संघ राज्य की स्थापना की जानी चाहिए। उन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए देष के नवयुवकों का आह्वान करते हुये लिखा है कि–

ष्एक–एक सौ–सौ अन्यायी, कंसों को ललकारो।

अपनी जन्मभूमि के ऊपर, धन–जीवन सब वारो

(4) भारतीय सांस्कृतिक एकता– गुप्त जी भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रबल पक्षपाती रहे हैं। यही कारण हैं कि उन्होंने भारतवर्श में पल्लवित सभी संस्कृतियों के मूल तत्वों की विवेचना के लिये प्रत्येक के प्रतीक काव्यों की रचनायें लिखी हैं। जैसे– ष्चन्द्रहासष, षतिलोत्तमाष, ष्नहुशष– उनके पौराणिक संस्कृतिक के काव्य हैं। जयद्रथ वध, वक–संहार, वन– वैभव, सैरन्ध्री और द्वापर– उनके महाभारतकालीन संस्कृति के आधार हैं। राम– संस्कृति उनकी ष्पंचवटीष और ष्साकेतष रचनाओं में विकसित हुयी है।. बौद्धकालीन संस्कृति का विकास उनकी ष्यषोधराष, ष्कुणालष, और अन रचनाओं में दृश्टिगोचर होता है। ष्रंग में भंगष, षुरुकुलष, षुरू तेगबहादुरष, षसिख और राजपूत संस्कृति की प्रतीक रचनायें हैं। ष्भारत–भारतीष, षकिसानष, षहिन्दू–षक्तिष और षविष्व वेदनाष काव्य रचनाओं में वर्तमानकालीन राश्ट्रीय संस्कृति का स्वर गुंजायमान है। मुस्लिम संस्कृति ष्अर्चन और विसर्जनष में दृश्टिगोचर होती है। ष्झंकारष,

में गुप्त जी ने भारतीय आध्यात्मवाद को झंकृत किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने भारत वर्श की सभी संस्कृतियों को भारतीयता के धागे में पिरो कर एक सुन्दर बाला भारत माँ के गले में पहनाने का सल प्रयास किया है। उनका विचार है कि पारस्परिक विरोध ही हमारे वर्तमान के पतन का कारण रहा है। अतः भारत के पतनोन्मुख वर्तमान का निर्माण परस्परिक एकता के सूत्र में बँधकर अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास से प्रेरणा लेकर सम्भव हो सकता है। देखिये कह के विचार–

ष्वर्तमान का यह आयोजन है, ति भावी जीवन का।

कुछ अतीत संकेत मिले तो, अतीव लाभ इस जन का

(5) उपयोगितावाद – गुप्त जी की कला आदर्षवादिता के रूप में उपयोगितावाद के सिद्धान्त को लेकर चली है । जन–कल्याण के लिये जो कुछ उपयोगी है, वहीं उनके काव्य का विशय है। गुप्त जी ने स्पश्ट रूप से कहा है कि

ष्हो रहा है जो जहाँ, यदि कही हमने कहा तो क्या कहा

किन्तु होना चाहिये कब, क्या कहाँ, व्यक्त करती है, कला यहाँ

(6) मानवतावाद – गुप्त जी ने ष्साकेतष् में मानवतावादी प्रवृत्तियों का सजीव चित्रण किया है। इस काव्य के नायक राम के सन्देष में मानवों के उच्चादषों की स्थापना, सुख एवं षान्ति का प्रसार, सन्तप्त प्राणियों की सुरक्षा, तुच्छ मानव में भी ईष्वर तत्व की प्रतिश्ठा, इस भूतल पर स्वर्ग का निर्माण और निःस्वार्थ लोक सेवा आदि के स्वर मुखरित हुये हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मानो पीड़ितों की पुकार सुनकर राम के मुख से स्वयं कवि का मानवता–प्रेमी हृदय बोल रहा है। कवि के अनुसार भगवान श्रीराम ने केवल भारत–भूमि के कल्याण के लिये ही जन्म नहीं लिया है, अपितु सम्पूर्ण संसार को सन्मार्ग दिखाने के लिये वे अवतरित हुये हैं। ये पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं––

ष्पथ दिखाने के लिये संसार को, दूर

करने के लिये भू–धार को।

सफल करने के लिये जनः त्रुटियाँ, क्यों

न करता वह स्वयं निजे कृतियाँ।ष्

(7) नारी – दषा का मार्मिक चित्रण गुप्त जी ने अपमानित, षोशित पीड़ित नारी व्यथा को नवीन रूप में ढाल कर प्रस्तुत किया है। उन्होंने उसकी मार्मिकता को पहचाना है। उनका विचार है कि मनुश्य ने षास्त्रों की रचना करके सारे नियमों के बन्धन नारियों के लिये ही रचे हैं। और स्वयं सुविध 1– भोगी बन गया है। ये पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

ष्नरकृत षास्त्रों के बन्धन हैं, कारी हो को लेकरा,अपने लिये सभी सुविधायें पहले ही कर

बैठे नरा

राश्ट्रीय काव्य–धारा में स्थान निश्कर्शतः यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी अपने युग, समाज और राश्ट्र के कवि नायक अथवा प्रतिनिधि कवि ही उनके काव्य में धरातल का निर्माण अतीत गौरव की पष्ठभूमि पर हुआ है, किन्तु पात्र प्राचीन होते हु भी वर्तमान युग की बातें करते हैं। उनका साहित्य, जीवन का साहित्य है। जीवन को ऊँचा उठाने का साहित्य है, मानव कल्याण की प्रेरणा ही उनके काव्य की जननी है। समाज सेवा और राश्ट्र सेवा ही उनके काव्य का लक्ष्य है। अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध है कि गुप्त जी सच्चे अर्थों में राश्ट्र – कवि हैं एवं भारतीय संस्कृति और अस्मिता के प्रबल समर्थक हैं। इसीलिये राश्ट्रीय काव्य धारा में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

28 गुप्त जी के काव्य में नारी भावना

कविवर मैथिलीषरण गुप्त द्विवेदी युग के महान ऋवि माने जाते हैं जिनकी रचनाओं में राश्ट्रीयता, समाज–सुधार, युग–निरूपण, भारतीय संस्कृति एवं नारी भवना का विषद चित्रण हुआ है। उन्होंने साके माहाकाव्य में वियोगिनी उर्मिला का, मातष्त्व भाव की प्रबलता से युक्त कैकेयी का, द्वापर काव्य में षबिघष्ताष् का, यषोधरा खण्डकाव्य में ष्यषोधराष् का तथा षविश्णुप्रियाष् में इसकी नायिका का चित्रण बड़े मनोयोग से किया है।

(1) गुप्त जी के नारी सम्बन्धी विचार – अपने नारी सम्बन्धी विचारों का व्यक्त करते हुये गुप्त
जी ने नारी के सम्पूर्ण जीवन को जिन दो पंक्तियों में व्यक्त किया है, वे उनकी नारी भावना
को मार्मिकता से अभिव्यक्त करती हैं––

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी । आँचल में हैं दूध और आँखों में पानी ।

इन पंक्तियों में नारी को अबला कहते हुए उसकी असामर्थ्य एवं अक्षमता पर दुःख व्य क्त
किया गया है तथा उसमें मातष्त्व भाव की प्रबलता को स्वीकार करते हुए उसके जीवन को
दुःख भरा हुआ माना गया है।

किन्तु ऐसा नहीं है कि गुप्त जी नाही. को नर से हीन मानते हों। वे नारी से नर की तुलनामें हुए

उसे नर से श्रेश्ठ निरूपित करते हुए

कहते हैं–एक नहीं दो–दो मात्राएँ नर से भारी नारी

नारी पर लगाये गये बन्धनों का विरोध करते हुये वे कहते हैं–

नरकृत षास्त्रों के बंधन हैं सब नारी ही को लेकरा

अपने लिए सीी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर।।

पुरुश के अत्याचारों से त्रस्त नारी स्यनीय, षोशित एवं उपेक्षित है। पुरूश उस पर अविष्वास
करता है, उसे असह्य समझता है, उस पर अयाचार करता है। कैसी विडम्बना है कि पुरुश
के तो सौ दोश भी क्षम्य हैं, पर नारी का एक भी दोश सम्य नहीं है। द्वापर में नारी समस्य ा
का चित्रण करते हुए वे कहते हैं–

अविष्वास हा अविष्वास ही

नारी के प्रति नर का। नर के सौ दोश क्षम्य हैं,स्वामी है वह घर का नारी की दुरावस्था

को उन्होंने मुखर वाणी दी है। पुरुश ने उसके अधिकारों का हनन करकेअपराध किया है।

अपनी अद्धांगिनी को अधिकारों के काम पर ठेंगा दिखाने वाला पुरुश हीनारी के षोशण

के लिए उत्तरदायी है। वे कहते हैं– अधिकारों के दुरुपयोग काकौन कहाँ अधिकारी ।

कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या अद्धांगिनी तुम्हारी

नारी पर अविष्वास करने वाला यह पुरुश भी नारी की कोख से उत्पन्न हुआ है। जाया और जननी होकर भी उसे ष्पाप की पिटारीष कहना कहाँ तक उचित है–

उपजा किन्तु अविष्वासी नर हाय! तुझी से नारी ।

जाया होकर जननी भी है तू ही पाप – पिटारी ।।

' (2) नारी की महत्ता की स्थापना – स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व सामन्सी प्रवषत्ति के कारण नारी पर अनेक अत्याचार होते रहे हैं। समाज में उनका कोई विषेश अधिकार भी नहीं था। जाया और जननी होते

हुए भी परिवार में उसका महत्व न था। वह पुरुश की वासना पूर्ति का साधन मात्र थी और प्रत्येक व्यक्ति की दृश्टि में नारी की नग्न मूर्ति ही समाई हुई थी। गुप्त जी ने इस स्थिति का चित्रण द्वापर में निम्न पंक्तियों में किया है–

नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई?

माँ बेटी या बहिन हाय क्या संग नहीं वह लाई ?

गुप्त जी ने नारी की महत्ता स्थापित करते हुए द्वार में षविधृताष के माध्यम से अपनी नारी – भावना को अभिव्यक्ति दी है। वह अन्याय का विरोध करने वाली तेजस्विनी नारी के रूप में चित्रित की गयी है। अन्याय के समक्ष कभी न झुकने का आह्वान करती हुई वह कहती है–

जाती हूँ जाती हूँ अब मैं और नहीं रुक सकती ।

इस अन्याय समझ पि मैं कभी नहीं झुक सकती

(3) नारी का विरहिणी रूप – साकेत में उर्मिला के विरहिणी रूप का चित्रण भी किया गया है। नवम सर्ग में कवि ने रामकथा की उपेक्षित पात्र उर्मिला के विरह का विषद चित्रण करते हुए उर्मिला चिन्ता, विशाद, काम आदि मनोभावों से ग्रस्त होकर उस विरह में स्वयं आरती की लौ की भाँति जलती है और मानस मन्दिर में प्रिय की प्रतिमा को स्थापित कर उनकी पूजा करती है–

मानस मन्दिर में सखी प्रिय की प्रतिमा थापा । जलती सी उस विरह में बनी आरती आप वेदना विह्वल होकर वह जो गीत गाती है, उसमें उनके मन की व्यथा साफ सुनी जा सकती है– वेदने तू भी भली. बनी।

पायी मैने आज तुझी में अनी चाह धनी

(4) पति–परायणा अनुरागिनी पत्नी

साकेत की उर्मिला पति–परायणा अनुरागिनी पत्नी है। वह इस अनुराग के कारण ही प्रियको वनभेज देती है औरउनकी पथ का विघ्न नहीं बनती। वह कहती है– हे मन, तू प्रियपथ का विघ्न न बना

यषोधरा की षोपाष को अपने प्रिय से केवल यही षिकायत है कि वे उससे कहकर गृह–त्याग करते। यदि वे उससे कहकर जाते, तो उसे आत्म–सन्तोश सिलता और वह उन्हें कभी नहीं नहीं रोकती ! अपनी इस व्यथा को व्यक्त करती हुई वह कहती है–रू

सखि वे मुझसे कहकर जाते।

सिद्धि हेतु स्वामी गए यह गौरव की बात।

पर चोरी चोरी गये यह बड़ा व्याघात ।

वह कहती है कि उन्होंने मुझ पर विष्वास नहीं किया। षायद वे समझते थे कि मैं उनके मार्ग की बाधा बनकर उन्हें जाने से रोक दूँगी, पर ऐसा नहीं था, मैं उनके मार्ग की बाधा नहीं बन सकती थी–

सखि वे मुझे कहकर जाते ।

कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथबाधा ही पाते? मुझको बहुत उन्होंने माना, फिर भी क्या पूरा पहचाना मैंने मुख्य उसी को जाना जो वे मन में लाते।

गुप्त जी ने नारी को आदर्ष पत्नी के रूप में चित्रित करते हुए कहा है–

पति ही पत्नी की गति है

इस कसौटी पर उनके सभी नारी पात्र– यषोधर (गोपा), सीता, उर्मिला, विश्णुप्रिया, विधष्ता आदि खरे उतरते हैं। यषोधरा कहती है–

प्रिय तुम तपो सहूँ मैं भरसक देखूँ बस हे दानी द्यकहाँ तुम्हारी गुणगाथा में मेरी करुणा कहानी चित्रकूट में सीता ने अपनी कुटिया को ही मनभावन राजमहल समझते हुए पति के साथ कोअपनी सबसे बड़ी पूँजी माना है। इस प्रकार सीता आदर्ष पत्नी के रूप में चित्रित की गयी है–

निज सौधन में उटज पिता ने छाया ।

मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया द्यद्य सम्राट स्वयं प्राणेष सचिव देवर हैं,

देते आकर आषीश हमें मुनिवर हैं ।।

(5) नारी का स्वाभिमानी रूप – गुप्त जी को नारियाँ सहज, स्वाभिमान एवं दर्प से परिपूर्ण हैं। उर्मिला को अपने रूप का दर्प है, तभी तो वह कामी को फटकार लगा देती हैं और उसे अपने सिन्दूर बिन्दु को ओर देखने की चुनौती देती है। यह षंकर जी के अभिनेत्र की भाँति उसे अस्म कर देगा। यषोधरा भी मानती है, सिद्धार्थ उनसे कहकर गृह त्याग करते तो उसे सुख होता, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया इसीलिए जब वे गौतम बुद्ध ही उससे मिलने आते

मानिनि मान तजो लो रही तुम्हारी बाना दानिनि आए स्वयं द्वार पर या भव तत्र भवाना।

(6) (6) वात्सल्यमयी माता रूप सीकेत में नारी के एक अन्य रूप ष्वात्सल्यमयी माताष् ष्का चित्रण भी हुआ है। कैकेयी को अपने पुत्र भरत पर राजा का सन्देह अच्छा नहीं लगा और उसने प्रतिषोध स्वरूप राम–राज्याभिशेक में विघ्न डाल दिय

भरत से सुत पर भी संदेह

बुलाया तक न उन्हें जो गेह

चित्रकूट में हुई सभा में कैकेयी का चाताप मैथिलीषरण गुप्त की मौलिक कलपना है। इसमें हृदय की जो झाँकी उपलब्ध होती है, उसने कैकेयी के पाप को पूरी वात्सल्यमयी कैकेयी के स्वच्छ तरह धो दिया। राम कहते हैं–
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई। जिस जननी च है जना भरत सा भाई द्यद्य पागल सी प्रों के साथ सभा चिल्लाई। सौ बार धन्य सिंह एक लाल की माई

गुप्त जी ने युग के अनुरूप नारी को जन–सेविका एवं राश्ट्र सेविका के रुप में भी चित्रित किया है। यषोधरा जन–सेविका है, उर्मिला अयोध्यावासियो की सेवा में तत्पर है जो सीता वनवासियों को अच्छे संस्कार दे रही है, उन्हें कातने बुनने के लिए प्रेरित करती है–

आओ हम काते–बुने गीत की लय में।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में नारी के गौरव को अक्षुण्ण रखते उनके जननी, भार्या, जन–सेविका, प्रिया रुप के आकर्शक चित्र उतारे हैं। उनकी नारी भावना उदात्त है ती वर्तमान नारी समाज के लिए प्रेरणादायक है।

मैथिलीषरण गुप्त रू व्याख्यात्मक भाग

सखिवे मुझसे कहकर जाते

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम को प्रणों के पण में,

हमीं भेज देती हैं रण में, क्षेत्र–धर्म के नाते।

सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा, जिस पर विफल गर्व अब जागा? जिसने अपनाया था त्याग, रहे स्मरण ही आते।

सखि, वे मुझमें कह कर जाते।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण राश्ट्रकवि मैथिलीषरण गुप्त जी द्वारा विरचित ष्यषोधराष् नामक खण्डकाव्य के ष्सखि, वे मुझसे कहकर जाश षीर्शक गीत से अवतरित किया गया है।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कविनगुणी ने सिद्धार्थ के संन्यास लेकर चुपचाप घर से चले पर प्रतिक्रिया स्वरूप क्षत्राणी यषोधरा के मनोभावों की मार्मिक अभिव्यंजनायें की हैं।

व्याख्या— कवि कहता है कि जब सिद्धार्थ संन्यास ग्रहण करके अपनी पत्नी यषेधरा एवं पुत्र राहुल को सोता हुआ छोड़ कर सिद्धि प्राप्त करने के लिये चुपचाप घर से वन की ओर चले जाते हैं तो यषोधरा को यह उचित प्रतीत नहीं होता है और वह अपनी मार्मिक वेदना को अपनी सखी के प्रति प्रकट करती हुई कहती है कि हे संखी। हम ही वे क्षत्रिय नारियाँ हैं, जो अपने प्रियतम को सुसज्जित करके रू युद्ध के मैदान में भेज देती हैं। प्रियतम हमें क्षणों से भी अधिक प्यारा होता है। लेकिन कर्तव्य की वेदी पर हम अपने स्वार्थी को बलिदान कर देती हैं। क्षत्रिय—धर्म का यही कर्त्तव्य है जिसका हम पालन करती हैं।

आगे वह पुनः सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे सखि ! यदि वे मुझसे कहकर जाते तो आज मुझे और भी अधिक प्रिय लगते। किन्तु मुझ अभागिनी को यह सौभाग्य प्राप्त न हो सका। इसके लिये अब उत्पन्न हुआ गर्व व्यर्थ है। मुझे इस बात का सबसे अधिक दुःख है कि जिन प्रियतम ने मुझे अपना कर अपनी अर्द्धांगिनी बनाया था, आज उन्हीं ने मुझे त्यांग दिया है। अब तो केवल वही अभिलाशा है कि वे मुझे हर समय याद आते रहें। सखि, उन्हें मुझसे कहकर जाना चाहिये था।

मनोवैज्ञानिक ढंग से नारी के मनोभावों की सह अभिव्यंजनायें की गयी हैं। यषोधरा का सच्चा अद्धागिनी रूप अभिचित्रित

जायें, सिद्धि पावें वे सुख से, दुःखी न हों इस जन के दुःख से। उपालम्भ दूँ मैं किस मुख

थे? आज अधिक वे भाते। सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

गये लौट भी वे आवेंगे, कुंद अपूर्व अनुपम लावेंगे। रोते प्राण उन्हें पावेंगे, पर क्या गाते—गाते?

सखि, वे मुझसे कहकर जति ।

व्याख्या— प्रियतम सिद्धार्थ के संन्यास लेकर चुपचाप वन चले जाने पर यषोधरा व्यथित हो उठती है और अपने मनोभावों को अपनी सखी के प्रति व्यक्ति करती है कि हे सखि! प्रियतम सिद्धार्थ मुझे सोता हुआ छोड़कर सिद्धि पाने के लिये चुपचाप वन ले गये हैं। मेरी यह षुभकामना है कि उन्हें सरलतापूर्वक सिद्धि प्राप्त होवे। वे मेरे दुःख से कभी भी दुःख न होवें। अर्थात् मेरा दुःख उनके मार्ग में बाधा न बने। मैं उन्हें किस मुख से उलाहना दूँ? क्योंकि उलाहना देना मेरा कर्तव्य नहीं है । सम्भवतः मेरे प्रति अपने प्रेम को सिद्धि मार्ग में बाधक समझने के कारण ही वे चुपचाप वन चले गये हैं। अतः मैं उन्हें उलाहना नहीं दे सकती हूँ। हाँ, यदि वे मुझसे कहकर जाते तो आज वे और भी अधिक मुझे प्रिय लगते।

आगे वह कहती है कि हे सखि ! यह निष्चित है कि वे सिद्धि प्राप्त करने के लिये वन गये हैं। और वापस लौटकर अवष्य ही आयेंगे। यह भी मुझे पूर्ण विष्वास है वे अपने साथ अलौकिक ज्ञान रूपं अनुपम उपहार लायेंगे । अर्थात् उन्हें निष्चित रूप से सिद्धि प्राप्त करने में सफलता मिलेगी। जब वे वापस आयेंगे तो मेरे रोते हुये प्राण ही उन्हें प्राप्त करेंगे, पर क्या ये प्राण उनके षुभागमन पर आनन्द के गीत गा सकेंगे। अर्थात् नहीं। हे सखि, उन्हें मुझसे कहकर जाना चाहिये था।

विषेश– (1) यषोधरा का पतिव्रत रूप अभिचित्रित है। (2) खड़ी बोली में नारी के कोमल भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। (3) भाशा एवं षैली सरल, सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। दोनो ओर प्रेम पलता है

(1) दीपक के जलने में आली, फिर भी है जीवन को लाली । किन्तु पतंग – भाग्य– लिपि काली, किसका वष चलता है ?

दोनों ओर प्रेम पलता है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत कान्यांस राश्ट्रकवि मैथिलीषरण गुप्त द्वारा रचित ष्साकेतष महाकाव्य के नवसर्ग से लिया गयाहैं तथा पाठ्य–पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित है।

प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने उर्मिला की विरहावस्था को स्पश्ट करने का प्रयास किया है। भाई श्रीराम के साथ लक्ष्मण के बन चले जाने पर विरहिणी उर्मिला की विरह–दषा का मार्मिक–चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि के षब्दों में उर्मिला कहती है कि, हे सखी! दीपक के जलने में तो फिर भी जीवन की लालिमा छिपी है अर्थात् वह तो जलकर प्रकाष फैलाता है किन्तु पतंगा उस पर आकृश्ट होकर व्यर्थ ही अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। उसके इस प्रकार जल जाने से न तो उसका स्वयं का ही कोई हित होता है और न ही वह समाज को आलेकित करता है। पर सखी वह बेचारा क्या करें, भाग्य रेखा को कौन मिटा सकता है ? विधाता के लेख पर किसका रू देष चलता है? जो कुद होना तय हो गया है वह होता ही है। फिर भी दोनों ओर प्रेम पलता है। दोनों ही प्रेम करते हैं। प्रेम करते समय आकृश्ट पतंगा अपने जल जाने की लेष मात्र भी चिन्ता नहीं करता है।

विषेश– (1) यहाँ उर्मिला की आन्तरिक स्थिति को कवि ने दीपक और पतंगे के माधयम से व्यक्त किया है। उर्मिला स्वयं को विरह विदग्धाता को पतंगे के सदृष मानती है, जिससे संसार का कोई हित नहीं हो रहा है, कोई प्रकाष नहीं फैला रहा है तथापि नियति के निध ाारिण को कौन बदल सकता

अर्थात् तब भी वह अपने प्रियतम के विरह में पतंगे की तरह विदग्धा है। (2) वियोग श्रष्ंगार रसा (3) प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है। (4) उर्मिला का विरह अन्य विरहिणियों की तरह अतिष्योक्तिपूर्ण या उन्माद की अवस्था का नहीं है। वह विरहावस्था में भी सचेत है और अपने प्रिय के षुभ की कामना करती रहती है। भरत का षोक

(1) तात! यह क्या देखता हूँ आज? जा रहे हो तुम कहाँ नरराज? देव, ठहरो, हो न अन्तध ाान, चाहिये मुझको न वे वरदान। इस अधम की बाट तो कुछ देर देखते तुम काल–कारण हेर। बन गये हैं आर्य, तुम परलोक, कौन समझे आज मेरा षोक ? स्वर्ग क्या, अपवर्ग पाओ तात, पर बता जाओं मुझे यह बात– राज्य संग तुम्हें कहाँ से हाय! दे सकूँगा आर्य को अनुपाय? सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण महाकवि मैथिलीषरण गुप्त जी द्वारा विरचित महाकाव्य ष्साकेतष के ष्भरत का षोकष प्रसंग से अवतरित किया गया है।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में महाकवि ने अयोध्या नरेष दषरथ की मष्त्यु उपरान्त राजमहल के दृष्य का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि भरत जी आर्य श्रीराम के वन गमन तथा महाराज दषरथ के देहावसान का समाचार सुनकर रो उठते हैं अंगे अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुये कहने लगते हैं कि हे पिताश्री । आज मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे महाराज दषरथा तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो? हे देव! ठहरो, जो वरदान मेरी माँ कैकेयी ने आपसे मौन थे, मुझे नहीं चाहिये। इस प्रकार मेरी ओर से मुँह मोड़कर आपको अन्तर्ध्यान नहीं होना चाहिये।

आगे वह कहते है कि हे पिताश्री! तुम्हें अपने प्राण छोड़ने के पहले कालजन्य कारणों को ध्यान में रखते हुये मुझ नीच भरत की कुछ देर तो प्रतीक्षा करनी चाहिये थी और मुझसे पूँछ कर यह जानना चाहिये था कि जो वरदान मेरी माँ कैकेयी में आपसे माँगे हैं, उन्हें मैं लेना चाहता हूँ या नहीं। लेकिन ऐसा नहीं हुआ आर्यश्री राम तो माँ कैकेयी व वरदान की षर्तों को पूरा करने के लिये तथा पिताश्री की वचनबद्धता को चरितार्थ करने के लिये बन चले गये और आप असहनीय पुत्र षोक में प्राण त्यागकर दिव्यलोक को चले गये। इस प्रकार में अना हो गया, आज मेरे इस षोक की पीड़ा को कौन समझ सकता है? अर्थात् कोई नहीं आगे भरत जो अपने षोक के कारण को स्पश्ट करते हुये कहते हैं कि हे पिताश्री । आपने अपना कर्तव्य पूरा किया। अतः आप स्वर्ग क्या? ट को देषी जाती

अधिक पाड़ा इस बात का है कि राज्य आसक्ति से मुझे आपने क्यों बाँध दिया? अब मैं अपने बड़े भाई आर्यश्री राम को अपने ह्रदय की नविनता को प्रकट करने के लिये तथा राज्य के प्रति अपने आसक्ति भाव को प्रमाणित करने के लिये प्रमाण दे सकूँगा।

विषेश– (1) भरत के ह्रदय को निश्कलुशता मार्मिक षब्दावली में अभिचित्रित हुई है। (2) खड़ी बोली का सहज, सरस एवं प्रवाहपूर्ण रूप दृश्टिगोचर होता है। (3) षैली भावानुकूल सरल एवं सरस है।

राजगष्ह की बाह्म बाहर जोड़ कर उठे द्विज होम – आहुति छोड़ ।

कुल– पुराहित और कुल आचार्य, भारत युत करने लगे सब कार्य । षव बना था षिव–समाधि ा, था षिवालय–तुल्य षिविका–यान। और जिनसे वहन सम्बन्धा थे भरत के भव्य–भद्र–स्कन्ध

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण महाकवि मैथिलीषरण गुप्त जी द्वारा विरचित महाकाव्य ष्साकेतष के ष्भरत का षोकष प्रसंग से अवतरित किया गया है।

प्रसंग प्रस्तुतः अवतरण में महाकाल ने अयोध्या नरेष दषरथ की मष्त्यु उपरान्त राजमहल के दृष्य का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या– कविवर गुप्त जी कहते हैं कि अयोध्या नरेष महाराज दषरथ की मष्त्यु का समाचार द्विजों ने यज्ञादि कार्य करना बन्द कर दिया था। कुल पुरोहित और कुल आचार्य वषिश्ठ आदि तथा भरत षत्रुघ्न आदि राजपरिवार के लोग राजमहल के बाहर अग्नि सुलगा कर अग्नि–संस्कार की सुनकर तैयारियाँ करने लगे थे।

मष्त्यु के बाद राजा दषरथ के षव (मष्त षरीर) को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने भगवान षिव की तरह समाधि ले ली है और उनका षिविकास– यान (षव को ष्मषान घाट

तक ले जाने की षव्या) षिवालय की तरह प्रतीत हो रहा था, अर्थात् उनके मष्त षरीर पर भी तेज विद्यमान था और उनकी षिविका (षव – पालकी या षव–षय्या) को षिवालय की तरह सजाया गया था। आज इस षिविका को भारत के सुन्दर कन्धों के द्वारा षमषान घाट तक ले जाया जाना था। इस प्रकार भरत पूर्ण निश्ठा एवं कर्त्तव्यपरायणता के साथ पिताश्री दषरथ के अग्नि–संस्कार की तैयारी में लगे हुये थे।

विषेश– (1) भरत की कर्तव्य निश्ठा को रेखांकित किया गया है। (2) अयोध्या नरेष दषरथ को मष्त्यु–उपरान्त षिव समाधिस्थ निरुपित कर बनके मोक्ष–भाव की ओर संकेत किया गया है। (3) भाशा षैली सरल, सहज तथा भावानुकूल हैं।

कैकेयी का द्वन्द्व–

(1) 'गई दासी, पर उसकी नात, दे गई मानो कुछ आघात ! भरत–से सुत पर भी संदेह, बुलाया तक न उन्हें जो गेह! पवन भी मानों उसी प्रकार षून्य में करने लगा पुकार– भरत–से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उन्हें जो गेह! गूँजते थे रानी के काम तीर–सी लगती थी वह तान– भरत–से सुत पर भी संदेह, बुलाया तक न उन्हें जो गेह! मूर्ति–सी बनी हुई उस ठौरें, खड़ी रह सकी न अब वह और। गई षयनालय में तत्काल, गंभीरा सरिता–सी थी चाला न सहकर मानो तनु का भार लेटकर करने लगी विचाराष सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांष राश्ट्रकवि मैथिलीषरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य ष्साकेतष के ष्द्वितीय सर्ग से अवतरित है तथा इस निर्धारित पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्य में संकलित किया गया है।

प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियों में राम के राजतिलक के अवसर पर मन्थरा दासी के मुँह से राजा का भरत जैसे पुत्र पर सन्देह की बात सुनकर कैकेयी किंकर्तव्यविमूढ़ सी हो जाती है। वह बार–बार यही विचार करती है कि मला भरत जैसे पुत्र पर भी राजा ने सन्देह किया।

व्याख्या – कवि कहता है कि रानी कैकेयी की दासी मन्नेरा उनसे यह कहकर कि भरत जैसे पुत्र पर भी सन्देह किया गया है, इसलिये उन्हें राम के राज्याभिशेक के समय बुलाया तक नहीं गया है, चली गई। कैकेयी, दासी के उक्त कथन से अत्यन्त विचलित हो गई, उसे दासी के कथन से आघात – सा लगा। एसा लगन लगा जस–माना चारा आरस यही राय है। रानी के ह्रदय में यह बात तीर को तरह चुभ गई। सोचती – विचारती – सी वह और खड़ी न रह सकी और तत्काल अपने षयन कक्ष में चला गई। षयन कक्ष में जाते समय उसकी चाल ऐसी थी मानो कोई नदी अत्यन्त गांभीर्य धारण किये हुये मन्द मन्थर गति से बह रही हो। उसे प्रतीत हुआ कि अब उनसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा, अतः वह लेटकर विचार करने लगी।

विषेश– (1) कवि ने कैकेयी के मानसिक द्वन्द्व को बड़े मनौवैज्ञानिक ढंग से निरूपित किया है। वह दासी के वचन सुनकर हत्प्रभ रह जाती है, क्योंकि उसे ष्वास ही नहीं हो रहा कि भला भरत पर भी कोई सन्देह कर सकता है। (2) उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकर का सहज प्रयोग किया गया है। (3) भाशा, सहज, सरल एवं प्रभावमयी है। (4) षब्द– चयन एवं पद– मैत्री अनुकरणीय है।

(2) सन्दर्भ– पूर्वानुसार।

मनोमन्दिर की मेरी षान्ति, बनो जाती है क्यों उत्क्रान्ति? लगा दी किसने आकर आग, कहाँ था तू संषय के नाग? नाथ कैकेयी के वर–वित, चीरकर देखा उसको चित्ता स्वार्थ का वहाँ नहीं है लेष, बसे हो एक तुम्ही प्राणेष

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण में महाकवि ने बड़े मनौवैज्ञानिक ढंग से कैकेयी की अषान्त मनोदषा का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि के षब्दों में दासी मन्थरा रानी कैकेयी से यह कहती हैं कि भरत जैसे पुत्र पर भी सन्देह होने के कारण उसे आज राम के राज्याभिशेक के अवसर पर बुलाया तक नहीं गया है। यह सुनकर रानी कैकेयी का मन अषान्त हो जाता है। वह बड़ी व्याकुलता के साथ अपनी परिवर्तित होती हुयीमनोदषा के विशय में सोचने लगती है कि मेरे मन रू पी मन्दिर में तो हमेषा षान्ति छायीरहती थी। आज अचानक क्यों मेरे मन की षान्ति उत्क्रान्ति का रूप धारण करती जा रहीहै अर्थात् मेरे मन में ज्वलनषील भाव क्यों उत्पन्न हो रहे हैं? यह आग किसने लगा दी है?हे संषय रूपी नाग! तू अभी तक मेरे मन में कहाँ छिपा हुआ था? आषय यह है कि कैकेयीएक पतिव्रता आदर्ष चरित्र वाली रानीथी। अतः

उसके मन में कभी भी अपने स्वामी के प्रति संषय उत्पन्न नहीं हुआ था। आज अचानक अपने मन की परिवर्तित मनोदषा पर वह स्वयं आष्चर्यचकित थी।

आगे रानी कैकेयी अपने मन की पवित्रता को प्रकट करती हुयी कहती है कि हे स्वामी। आप मेरे चित्त कोचीर कर देख लो, उसमें किंचित मात्र भी स्वार्थ का भाव नहीं है। कैकेयी के लिये तो तुम्ही सर्वश्रेश्ठ धन हो, इसीलिये हे प्राणेषा मेरे चित में केवल तुम्हारा ही निवास है । इस प्रकार कैकेयी बड़ी भावकुतापूर्वक अपने मन की मनोदषा का वर्णन करके अपने मन पवित्रता प्रकट करती है।

विषेश (1) कैकेयी की मनोदषा का मनोज्ञानिक चित्रण बड़ा सहज और मार्मिक है। (2) कैकेयी के उदात्त चरित्र की परित्रता एवं पतिव्रत–भागों को अभिव्यंजित किया है। (3) भाशा सरल, सहज एवं भावानुकूल है। (4) षैली प्रवाहमयी एवं प्रभावी है।

(1) मातष्भूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पद पर सुन्दर है, सूर्य–चन्द्र युर्ग मुकुट, मेखला रत्नाकर है। नदियाँ प्रेम–प्रवाह, फूल तारे मण्डल बन्दीजन खन्द षेशफन–सिंहासन है। करते अभिशेक पयोद हैं, बलिहारी इस द्वेश की। हे मातृ–भूमि! तु सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेष की।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण राश्ट्रकवि मैथिलीषरण गुप्त जी द्वारा विरचित ष्मातृ–भूमिष षीर्शक गीतसे अवतरित किया गया है।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने प्रकृति के विविधा उपादानों से मातष्भूमि के सौन्दर्य का चित्रण करते हुये उसे भगवान् सर्वेष की सगुण मूर्ति के रूप में अभिचित्रित किया है।

व्याख्या– कवि को अपनी मातष्–भूमि से बेहद प्यार है। वह उसके सौन्दर्य का चित्रण प्रकृ ति के विविध उपादानों से करता हुआ कहता है कि हमारी मातष्भूमि का हरित धरातल हरे

रंग के वस्त्र की तरह षोभायमान है और उसके ऊपर फैला हुआ नीला आकाष नीलाम्बर अर्थात् नीले रंग की चादर की भाँति है, जिसे धारण किये हुये वह कितनी भव्य लग रही है। सूर्य और चन्द्र हमारी मातष्भूमि के दो मुकुट हैं और रत्नों से भरा हुआ समुद्र मेखला के समान है। उसकी बहती हुयी नदियों प्रेम का प्रवाह हैं और आकाष–मण्डल मं देदीप्यमान तारे पुश्पों की भाँति उसका यषोगान कर रहे हैं और षेशनाग का फन ही सिंहासन है, जिस पर हमारी मातष्भूमि विराजमान है।

आगे वह कहता है कि वर्शा करते हुये बादल मातष्भूमि का अभिशेक (सुगन्धित स्नान) कर रहे हैं। उसके इस अनुपम वेष की बलिहारी है। हे मातष्भूमि! तू सत्य ही भगवान् सर्वेष की सगुण मूर्ति है।

विषेश– (1) प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। (2) अवतरण छप्पय–छन्द में निबद्ध है। (3) अवतरण में सांगरूपक अलंकार की छटा विद्यमान है। (4) भाशा सरल, सहज, सरस है और उसमें चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है। (5) षैली भावानुगामिनी एवं सहज है । (6) कवि का मातृ–भूमि के प्रति अगाधा प्यार एवं श्रद्धा का भाव अभिव्यंजित हुआ है।

इकाई – 12 जयशंकर प्रसाद समीक्षात्मक भाग

छायावाद के प्रवर्तक कवि श्प्रसादश

छायावाद के अग्रदूत, महाकविवर जयषंकर प्रसाद जी मूलरूप से कवि हैं, उनका कवि व्यक्तित्व विराट है। वे हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक कलाकार के रूप में प्रतिश्ठित हैं। वे हिन्दी साहित्य के संधिकाल में उस स्थान पर खड़े हैं जहाँ से एक युग के द्वार बन्द होते हैं और दूसरे युग में छायावाद और रहस्यवाद अपने प्रथम चरण रखते हैं। वास्तव में छायावादी तथा रहस्यवादी काव्यधारा को जन्म देने का श्रेय प्रसाद जी को ही है। वे छायावाद के प्रमुख उन्नायकों और आधार स्तम्भों में से एक थे।

छायावाद का स्वरूप– विवेचन करते हुये विधिन विद्वानों ने अनेक परिभाशायें दी हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं––

1. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, श्छायावाद एक विषेश भावपद्धति है, स्थूलके प्रति सूक्ष्म का विद्राह है। श 2. डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, श्छायावाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाषन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना षान्त और निष्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहिती है। श 3. कविवर जयषंकर प्रसाद के अनुसार, श्मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है, वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। अतः सौन्दर्य के इसी सूक्ष्म रूप को अपनाते हुये पौराणिक कथाओं एवं नारी के बाह्य–सौन्दर्य के वर्णन से भिन्न–भिन्न कविताओं में वेदना के आधार पर जो स्वअनुभूतिमयी अभिव्यक्ति हुयी, वही छायावाद है।

उपर्युक्त सभी परिभाशाओं के आधार पर कलापक्ष एवं भावपक्ष से पुश्ट छायावादी काव्य की निम्नलिखित विषेशतायें स्वीकार की जा सकती हैं, जिनके आधार पर प्रसाद जी की काव्यगत विषेशतायें दृश्टव्य हैं–

भावपक्षीय विषेशतायें–

प्रसाद जी की ष्कामायनीष छायावाद की प्रतिनिधि एवं महत्वपूर्ण रचना है, अतः छायावाद के सभी तत्व इसमें समाहित हैं। इसमें मानव हृदय के भावों चिन्ता, आषा, काम व श्रद्धा आदि का पात्रों के रूप में सुन्दर चित्रण हुआ है। इनके इस भाव चित्रण में छायावाद की निम्नांकित भावपक्षीय विषेशतायें परिलक्षित होती हैं–––

. (1) प्रेम और सौन्दर्य का निरूपण – प्रसाद ही मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं । प्रसाद जी का प्रेम लौकिक पष्ठभूमि से प्रारम्भ होकर अलौकिकता की सीमा पर पहुँच जाता है। उन्होंने प्रेम के स्थलू व सूक्ष्म रूपों, आन्तरिक और बाह्य तथा काल्पनिक और यथार्थ स्वरूपों का चित्रण अत्यन्त कोमल–कान्त पदावली में किया है। महाकाव्य कामायनी, खण्डकाव्य ष्झरनाष, ष्लहरष और ष्आसूँ ष प्रसाद जी के प्रमुखतः प्रेम–काव्य हैं, इनमें कवि ने प्रेम के विभिन्न रूपों को रूपापित किया है। एक उदाहरण देखिये–

ष्यह लीला जिसकी विकासमयी, वह मूल षक्ति की प्रेम कला ।

उसका सन्देष सुनाने को, संसषति में आयी यह अमला।

सौन्दर्य चित्रण में प्रसाद जी अत्यन्त पटु हैं। उनका सौन्दर्य–चित्रण रीतिकालीन कवियों की तरह ऐन्द्रियता के भार से बोझिल नहीं हो पाया है। उनका सौन्दर्य–चित्रण मानवीय और प्राकृतिक दोनों के समन्वय से है। प्रसाद जी ने अपनी काव्य–कृति ष्आँसष में नायिका के मोहक सौन्दर्य का चित्रण

– अत्यन्त प्रभावषाली रूप में किया गया है–

ष्घनं में सुन्दर बिजली–सी, बिजली में चपल चमक सी।

आँखों में काली पुतली, पुतली में स्याम झलक–सी eष

(2) रहस्यवाद – प्रसाद जी का भावपक्ष रहस्यवादी चिन्तन से प्रभावित है। प्रसाद जी ने सर्वत्र रहस्यवादी सत्ता का अनुभव किया है, किन्तु उनका यह रहस्य खुल नहीं पाता है, अपितु मात्र रहस्य ही बन कर रह जाता है। इसके प्रति प्रसाद जी की जिसे प्रवषत्ति कार्य करती है। वे अनन्त सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुये कहते हैं –

ष्हे अनन्त रमणीय! कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता है? क्या हो? कैसे हो? इसका तो भाव विचार न सह सकता।ष

(3) वेदना और निराषा का स्वर प्रसाद से के छायावादी काव्य में वंदना और निराषा के स्वर सुनाई देते हैं। ष्आसूँ ष उनके सफल प्रेम की गाथा है, उसमें विरह वेदना के कारुणिक चित्र अंकित हैं। उसका प्रत्येक छन्द वेदना की गहरी अनुभूति से भरा हुआ। ऐसा लगता है कि मानो कवि का जीवन पीड़ा का साकार रूप बन गया है। अन्त में कवि व्यथित होकर निराषा–पूर्वक कहता

षविकल वेदना फिर आई, मेरे चौदह, भुवन में।

सुख कभी न दिया विखाइ, विश्राम कहाँ जीवन में द्यद्य

(4) कल्पना की प्रधानता भावों की तीव्रता, अनुभूतियों की अधिकता और विचारों को गतिषीलता की त्रिवेणी को प्रवाहित करने वाली कल्पना की पैठ प्रसाद जी के काव्य की

सर्वप्रधान विषेशता है। प्रसाद जी का भावमय संसार किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार ने वाला नहीं है। संसार और जीवन की वास्तविकता को ठोकर मारकर प्रसाद जी के कल्पना का स्वागत किया था–

ष्आह कल्पना का सुन्दर वह, जगत–मधुर कितना होता है।ष

(5) रसमयता – प्रसाद जी की भावमयता रसमयता से परिपूर्ण है उनका काव्य रसमय है। उनकी कविता का आरम्भ श्रृंगार रस से होता है और अन्त षान्त या करूण रस में होता है और अन्त षान्त या करुण रस में होता है। प्रसाद जी काव्य में श्रृंगार, षान्त, करूण, वात्सलय आदि रसों का पूर्ण परिपाक दृश्टिगोचर होता है। श्रृंगार रस का एक उदाहरण देखिय– षषि मुख पर घूघट डाले, आंचल में दीप छिपायेजीवन की गोधूलि में, कौतूहल में तुम आये।

(6) व्यक्तिवाद – वैयक्तिकता छायावादी काव्य की प्रमुख विषेशता है। प्रसाद जी ने मनु के माध्यम से वैयक्तिक चेतना को प्रस्तुत किया है। कामायनी में बाह्य–संघर्शो की अपेक्षा आन्तरिक संघर्शो को अधिक प्रस्तुत किया गया है। वैयक्तिक खीझ, जलन और कसमसाहट को चिन्हित करने वाला निम्नलिखित उदाहरण दृश्टव्य है–

षापित–सा मैं जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूँ.

उसी खोलखेपन में जैसे कुछ खोजता भटकता हूँ।

(7) भावमयता भाव तो प्रसादजी के काव्य का प्राण है। उनकी कविताओं में कोमल भावनाओं का ऐसा भण्डार हैं, जो कभी रिक्त नहीं हो सकता है। कामायनी, आँसू, झरना आदि के गीतों में भावो का सागर लहरा रहा है। करूणा, हर्श, विशाद, आषा–निराषा आदि अमूर्त भावों के बड़े ही ष्मर्मस्पर्षी षब्द–चित्र उतारना प्रसाद जी की कोव्य–प्रतिभा की सबसे बड़ी विषेशता है। षचिन्ताष का यह मूर्त रूप देखिये–

ष्है अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल रेखा । हरी–भरी सी दौड़–धूप हो, जलमाया की चल–रेखा ।।

(8) मानवतावाद – प्रसाद जी मनावता के हिमायती हैं। वे षजिओ और जीने दोष के सिद्धान्त के पक्षपाती हैं उन्हें विष्व – मानव के कल्याण की चिन्ता है। इसीलिये वे विष्वव्यापी मानवता का चित्रण करते हुये लिखते हैं कि–

ष्चेतना का सुन्दर इतिहास, अखिल मानव भावों का सत्या

विष्व ह्रदय–पटल पर दिव्य, अक्षरों से अंकित हो नित्य ।।

(9) देष–प्रेम की भावना – प्रसाद जी के साहित्य में देष–प्रेम का अंगाधा–सागर हिलोरे ले रहा है। उनके नाटकों के गीत देष–प्रेम से ओत–प्रात हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वे छायावादी कवि होते हुये भी अपने युग की परिस्थितियों के प्रति उदास

नहीं रहे है। ष्अरुण यह मधुधुमय देष हमाराष राश्ट्र–प्रेम की मधुर–धारा प्रवाहित करता है–

ष्अरुण यह मधुमय देष हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

(10) नारी का महत्व प्रतिपादन – छायावादी कवियों ने भक्तिकालीन कवियों के विपरीत नारी की महत्ता एवं उसकी स्वतन्त्र सत्ता का गुणगान किया है। रीतिकाल में आकर जो नारी मात्र विलास एवं वासना की सामग्री रह गई थी, छायावादी कविता में आकर वह गरिमा से मण्डिल हो गयी। प्रसाद जी ने कामायनी में नारी को दया, ममता, बलिदान, सेवा आदि गुणों से युक्त कहा है–

ष्नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विष्वास रजत नभ पर्ग तल में।

पीयूश श्रोत–सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।

(11) प्रकृति–चित्रण – प्रसाद जी अन्य हयावादी कवियों की भाँति प्रकृति के परम प्रेमी हैं। उन्होंने प्रकृति के नाना रूपों और प्रक्रियाओं का भाव पूर्ण चित्रण किया है। प्रसाद जी अपनी रंगमयी कल्पना के माध्यम से प्रकृति के सुन्दरतम चित्र उपस्थित कर देते हैं। प्रातःकालीन बेला के आगमन का एक सुन्दर चित्र दृश्टव्य है– कलापक्षीय विषेशतायेंसंज
विभावरी जाग से।
अम्बर पनघट डुबो रही। तारायट ऊशा नागरी।

भाव पक्ष की तरह प्रसाद जी का कला–पक्ष भी सषक्त है। उनके काव्य में जहाँ एक ओर छायावाद की भावपक्षीय विषेशतायें विद्यमान हैं, वहीं दूसरी और कलापक्षीय विषेशतायें भी दृश्टिगोचर होती है। कलापक्ष के अन्तर्गत भाशा, षैली, अलंकार एवं छन्द आदि उपकरण आते हैं। प्रसाद जी का इन उपकरणों पर असाधारण अधिकार है। इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

(1) भाशा वैषिश्ट्य प्रसाद जी का भाशा पर पूर्ण अधिकार है। चित्रमयता, गुण, सम्पन्नता, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता, भावानुसार, षब्द चयन एवं प्रतीकात्मकता आदि प्रसाद जी की भाशा की प्रमुख विषेशतायें हैं। प्रसाद जी की प्रारम्भिक भात ब्रज भाशा प्रध ाान है, जबकि उनकी परवर्ती रचनायें विषुद्ध खड़ी बोली से परिपूर्ण हैं। उनकी भाशा सांकृ त–षब्द– बहुल होने पर भी क्लिश्ट अथवा दुरूह नहीं है। वह भावानुकूल सरल अथवा गम्भीर है। इस प्रकार भाव सम्प्रेशण में वह पूर्णरूपेण सक्षम है। उन्होंने अपने भावों को सीध े–सादे ढंग की अपेक्षा लाक्षणिकता के साथ व्यक्त किया है। यथा– मानस–सागर के तट पर, क्यों लोल–लहर की घातेंकहती हैं कल–कल ध्वनि से कुछ विस्तष्त बीती बातें

(2) षैली – वैषिश्ट्य – प्रसाद जी ने छायावादी काव्य–सिद्धान्त के आधार पर चित्रात्मक षैली का प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में विशय–वस्तु को प्रतीकों के माध्यम

से प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा कवि ने अन्तःकरण की गहनता, विदग्धता, भावुकता और मार्मिकता को सार्थक और सफल रूप में अभिचित्रित किया है। निम्नलिखित उदाहरण श्टव्य है–

ष्झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद माला।

पाकर इस षून्य हृदय को, सबने आकार डेरा डाला।।

(3) अलंकार – योजना – प्रसाद जी की कविता में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उनका प्रयोग इतना सहज है कि वे सर्वत्र काव्य के सौन्दर्य को पुश्ट करते हैं और उसकी श्रीवषृद्धि करते हैं। कविता– कामिनी पर बोझ नहीं बनते हैं। छायावादी कवि होने के कारण उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, ष्लेश आदि भारतीय काव्यषास्त्र में विहित अलंकार के साथ–साथ, मानवीकरण, विषेशण– विपर्यय और ध्वन्यार्थ –व्यंजना आदि पाष्चात्य अलंकारों को भी मूल हृदय से अपनाया है और उनका सषक्त व सुन्दर प्रयोग किया है। उदाहरण के लिये ष्कामायनीष की निम्नलिखित पंक्तियों में रूपक और मानवीकरण अलंकारों का अत्यन्त स्वाभाविक एवं सुन्दर प्रयोग दृश्टव्य है––

षसिन्धु– सेज पर धरा–वधू, अब तनिक संकुचित बैठी–सी ।

प्रलय– निषा की हलचल स्मषति में, गान किये–सी, ऐंठी–सी।।ष

(4) छन्द योजना – प्रसाद जी ने अपनी रचनाओं में तुकान्त, अतुकान्त भिन्न तुकान्त आदि विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। ष्सानेट प्यार (बंगला– छन्द) आदि के अतिरिक्त आपने रूपमाला, ताटक, सार, पदपादाकुलक, रोला आदि छन्दों को प्रयोग किया है। नवीन छन्दों का प्रयोग करके प्रसाद जी ने अपनी मौलिकता और प्रयोगषीलता की एक नई पहचान प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिये ष्आँसूष काव्य जिस नवीन छन्द को ष्आँसू छन्दष नाम दिया गया है। आपके छन्दों की सर्वप्रधान विषेशता यह है कि उनमें लय, संगीत और नाद – सौन्दर्य के गुण विद्यमान है। ताटक छन्द का एक उदाहरण दृश्टव्य कृकृ षनिकल रही थी मर्म वेदना, करूणा विकल कहानी –सी।

साहित्य में स्थान– दकविवर प्रसाद जी छायावादी काव्य– चेतना के ही सर्वश्रेश्ठ कवि नहीं हैं, अपितु वे आधुनिक हिन्दी काव्य के विकासमय प्रवाह की सबलम तरंग हैं। प्रसाद जी छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। आपके काव्य में छायावादी काव्य की समस्त विषेशतायें मिलती हैं। भाव और षिल्प की दृश्टि से प्रसाद की रचनायें अप्रतिम हैं। प्रसाद जी छायावाद के प्रथम स्तम्भ कवि हैं। आपके काव्य में भाव पक्ष एवं कला –पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। वे युगप्रवर्तक के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। उनकी साहित्यिक उपलब्धि ायों के लिये हिन्दी का यह आधुनिक जगत् सदैव ऋणी रहेगा।

प्रसाद का प्रकृति चित्रण

मानव के मन में अनादि काल से प्रकृति के प्रति अतीव आकर्शण रहा है। यही कारण है कि वह अपने सुख और दुःखों को प्रकृति के सुख और दुःखी के साथ संयोजित करके चलता है। उसके सुख है जो मढनि गै और मोद मनाती प्रतीत होती है लेकिन दुःख की स्थिति में रोली और बिलखती हुयी प्रतीत होती है।

प्रसाद जी को प्रकृति के मोहक ने सूब लुभाया है। यही कारण है कि प्रकृति के विविध चित्र प्रसाद के काव्य में देखे जा सकते है। प्रसाद जी का प्रकृति चित्रण निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है।

(1) आलम्बन रूप में

(2) उद्दीपन रूप में

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण का एक उदाहरण कामायनी से देखिये – ष्उसी तपस्वी से लंबे थे, देवदास दो–चार खड़े।

हुये हिम– धवल जैसे पत्थर, बनकर ठिठुरे रहे अड़े।ष

प्रकृति संयोग में दुख और वियोग में दुःख प्रदान करती है। संयोग की अवस्था

में प्रकृति मनु को कितना आनन्द प्रदान कर रही है–

षनिष्चित आह ! वह था कितना, उल्लास काकली स्वर मं

`आनन्द प्रतिध्वनि गूंज रही, जीवन दिगन्त के अम्बर में।

(3) वातावरण के रूप में – वातावरण को प्रकाषित करने वाली भावभूमि के रूप में भी प्रसाद जी ने प्रकृति का सजीव चित्रण किया है। ऊशा–सुन्दरी के चिकने और सुनहले बालों से आहत अन्धकार की सिसकियाँ देखिये–

ष्उबा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सो उदित हुई।

उधर पराजित कालरात्रि भी, जल में अन्तर्निहित हुई।

(4) मानवीकरण के रूप में – छायावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रसाद जी ने भी प्रकृति के सभी उपादानों का मानवीकरण किया है। रात्रि के मानवीकरण का एक उदाहरण देखिये–

बीती विभावरी जागरी।

अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा घट उशा नागरी ।

प्रसाद जी ने रात्रि के यौवनकालीन समय को भी अनूठी कल्पना द्वारा वर्णित किया है–

ष्पगली हाँ संभाल ले, कैसे छूट पड़ा तेरा आंचला

देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचला

(5) आलंकारिक रूप में प्रसाद ज ने आलुकारिक रूप में प्रकृति का सुन्दर चित्रण कया है। श्रद्धा के अधखुले अंगों को देखकर, प्रसाद जी की कल्पना की उड़ान देखने योग्य हैं–

ष्नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंगा खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

प्रसाद जी की उपमायें भी अनूठी हैं। उपमा वैभव का एक उदाहरण देखिये–

ष्दूर–दूर तक विस्तृत हिम था, स्तब्ध उसी के हृदय समाना नीरवता सौ षिला चरण के टकराता फिरता पवमाना

(6) संवेदनषील सहचरी के रूप प्रस्तुत किया सुधाकर पाण्डेय का कथन है– ष्कवि ने प्रकृ ति के सहयोग से सौन्दर्य की ऐसी चित्रण किया है। डॉ. जो अन्यत्र दुर्लभ है।

(7) ईष्वरीय सत्ता के रूप में प्रकृति का ईष्वरीय सत्ता के रूप में चित्रण करना छायावादी कवियों की अपनी विषेशता रही है। कोई अव्यक्त संत्ता प्रकृति में अखण्ड रूप से समाई हुई है। यही कारण है कि आकाष में प्रकाषित होने वाले तारागणों को देखकर कवि कह उठता है–

महानील उस परम व्योग में, उत्तरक्षि में ज्योर्तिमान।

ग्रह नक्षत्र और तिंण, किसका करते हैं सन्धान।

कामायनी और सम्पूर्ण प्रसाद काव्य में प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र आपको देखने को मिलेंगे। इनमें प्रकृति के चित्र ही अंकित नहीं होते अपितु एक सीप और सुन्दर रूप भी प्रस्तुत हो जाता है, जिसमें कम्पन, गति और स्पन्दन होता है। प्रसाद के प्रकृति वर्णन में हम प्रकृ ति का केवल बाह्य–सौन्दर्य ही नहीं देखते बल्कि उनकी आत्मा भी झलकती हुयी दिखाई देते है।

प्रसाद जी के प्रकृति चित्रण के सम्बन्धा में आचार्य षुक्ल जी का कथन है– ष्कामायनी में स्थान–स्थान पर प्रकृति की मधुर, भव्य और आकर्शक विभूतियों की योजना का तो कहना ही क्यों? प्रकृति के ध्वंसकारी भीशण रूप वेग का अत्यन्त व्यापक परिधि के बीच में चित्रण हुआ है।

प्रसाद का जीवन दर्षन

प्रसाद की छायावादी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। जिन्होंने अपने महाकाव्य ष्कामायनीष में अभिव्यक्त जीवन दर्षन के माध्यम से आधुनिक मानव को अपना जीवन सुखी बनाने हेतु कुद दिषा निर्देष दिए हैं। प्रसाद के दार्षनिक विचारों पर सर्वाधिक प्रभाव ष्सेव दर्षनष के अन्तर्गत आने वाले ष्प्रत्यभिज्ञा दर्षनष का पड़ा है। कामायनी में प्रयुक्त अनेक पारिभाशिक षब्द प्रतयभिज्ञा दर्षन के षब्द हैं। प्रसाद जी की निपुणता यह रही है कि उन्होंने दर्षन के नीरस एवं षुक विचारों को भाव एवं कल्पना के योग से सरस एवं सर्वजन सुलभ बना दिया है, परिणामतः कथा को बोझिल नहीं हुई है। कामायनी के दार्षनिक विचार व्यावहारिक हैं, जिन्हें अपनाकर मानव अपने जीन को आनन्दमय बना सकता है। प्रसाद के दार्षनिक विचारों की अभिव्यक्ति निम्न षीर्शकों में की जा सकती है

’ रु (1) नियतिवाद – षैव दर्षन के 36 तत्वों में 11वां तत्व नियति है। नियति एक प्रबल षक्ति है, जो सम्पूर्ण संसार का नियमन करती है। नियति के अखण्ड षासन में ही संसार के समस्त क्रियाकलाप संचालित होते हैं

शनियति चलाती कर्म चक्र यह

, यह एक ऐसी अदृश्ट षक्ति है जो कर्मानुसार मानव जीवन का संचालन करते हुए उसके कल्याण का विधान करती है। यह संसार के दम्मी, अहंकारी और अत्याचारी व्यक्तियों को अपनी प्रकृतिक षक्तियों द्वारा उचित दण्ड देकर उनका नियमन करती हैं। अहंकारी, विलासी, दम्भी, अकर्मण्य देवजाति का प्रलय द्वारा विनाष इस नियति नटी ने ही किया। षैवागमों में नियति का नियन्त्रण ष्जीवात्माष तक ही माना गया है। षिवत्व की ओर अग्रसर जीव इसके बन्धन से मुक्त हो जाता है । कैलास षिखर पर पहुंचे मनु कहते है

निराधार हैं किन्तु ठहरना हम दोनों को आज यहीं है। नियति खेल देखूं न और अब इसका अन्य उपाय नहीं है।

नियति परमात्मा की वह नियामिका षक्ति है जो समस्त विष्व का षासन एवं नियन्त्रण करती है। विष्व का समस्त उत्थान–पतन इसी के हाथ में है और यही जीवात्मा को अहंकार का भीशण परिणाम दिखाकर षिवत्व की ओर प्रेरित करती है। कामायनी में निरूपित प्रसाद की दार्षनिक विचारधारा षनियतिवादष से पूर्णतः प्रभावित है।

(2) समरसतावाद – प्रत्यभिज्ञा दर्षन में ष्समरसताष को षिवत्व की स्थिति बताया गया है। यहां पहुंचने पर समस्त द्वन्द समाप्त हो जाते हैं, सुख–दुख दोनों आनन्द रूप हो जाते हैं तथा षविशमताष समाप्त हो जाती है । ष्तंत्रालोकष में कहा गया है

आनन्द षक्ति विश्रान्ते योगी समरसों भवेत षक्ति लेने पर सेना का यह सांति अर्थात आनन्द तप्ततित विशमता के सागर में ही समरसताकी लहर उत्पन्न होती है।

प्रसाद जी की कामायनी में श्रद्धा मनु को यह रहस्य समझाते हुए कहती है

नित्य समरसता का अधिकार

उमड़ता कारण जलधि संजना

व्यथा से नीली लहरों बीच

बिखरते सुख मणि गण द्युतिमाना

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसाद जी. विशमता और उससे उत्पन्न दुख को उस परमषक्ति ष्भूमाष का वरदान मानते हैं, अभिषाप नहीं।

विशमता की पीड़ा से व्यस्त ।

हो रहा स्पंदित विष्व महान।।

यही सुख–दुख विकास का सत्य,

यही भूमा का मधुमय दान ।।

प्रसाद जी का मत है कि जीवन में आनन्द प्राप्त करने के लिये मानव को सभी क्षेत्रों में समरसता स्थापित करनी चाहिए। सुख और दुख की समरसता, हृदय और बुद्धि की

समरसता तथा इच्छा, ज्ञान एंव क्रिया की समरसता करने पर ही जीवन में आनन्द की उपलब्धि होती है।

प्रसाद जी की धारणा है कि जीवन में दुःख का भी महत्व है। दुख चिरस्थायी नहीं होता, अपितु क्षणिक होता है। जैसे रात के बाद दिन आता है उसी प्रकार दुख के बाद सुख आता हैरू दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात

यह दुख अभिषाप नहीं है, अपितु परमात्मा के द्वारा दिया गया रहस्यपूर्ण वरदान है

जिसे तुम समझे हो अभिषाप

जंगत को ज्वालाओं का मूला

ईष का वह स्य वरदान

कभी मत इसको जाओ भूल।।

कामायनी के तीनों प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा एवं इड़ा क्रमषः मन, हृदय और बुद्धि के प्रतीक हैं।

मनु श्रद्धा (हृदय) और इड़ा (बुद्धि) दोनों करें सहयोग पाकर ही आनन्द षिखर पर पहुंचे हैं। यह तथ्य इस ओर इंगित करता है कि जीवन में आनन्द सभी प्राप्त हो सकता है जब हृदय और बुद्धि का सन्तुलित समन्वय किया जाए।

प्रसाद जी ने कामायनी में यह भी निरूपित किया है कि मानव को अपने जीवन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय करना चाहिए। विडम्बना यह है कि इन तीनों में समन्वय नहीं हो पाता और जीवन दुखी रहता है

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हैं

इच्छा क्यों पूरी हो मन की।

एक दूसरे से मिल सके

ंत ेंदिज है जीवन की।

इच्छा, ज्ञान और क्रिया की समरसता ही जीवन में आनन्द का विधान करती है।

(3) आनन्दवाद – आनन्दवाद की विचारधारा का मूल श्रोत उपनिशद् है। तैत्तरीयोपनिशद् में बताया गया है कि श्आनन्द की ब्रह्म है। आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द में ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रस्थान करते हुए अन्त में आनन्द में ही प्रविश्ट हो जाते. हैं।श

जीवन में आनन्द प्राप्त करने के लिए कौन से मार्ग को ग्रहण करना चाहिए इसका उत्तर देते हुए प्रसाद जी कहते हैं कि व्यक्ति को सर्वप्रथम कर्मषील बनना चाहिए क्योंकि अन्ततः व्यक्ति अपने कर्मो का ही भोग करता है

कर्म का भोग, भोग का कर्म,

यहीं जड़ का चेतन अनुदा

वे यह भी मानते हैं कि आनन्दवाद के लिए षुद्ध सात्विक प्रेम आवष्यक हैं, वासनात्मक प्रेम नहीं। मनु जब तक श्रद्धा के षरीर पर मुग्ध रहे तब तक आनन्द से वंचित रहे। कोरा बुद्धिवाद या कोरी भावुकता आनन्द पथ से बाधक है। ह्रदय और बुद्धि का सन्तुलित समन्वय ही आनन्द का मूल है। भौतिक सुखों की अधिकता हमें अकर्मण्य बनाती है जो विनाष का मार्ग हैं। कामायनी में चित्रित जल प्रलय में देवजाति का विनाष इसी ओर संकेत करता है।

प्रसाद जी ने कामायनी में उस ष्आनन्द भूमिष् का भी उल्लेख किया है जहां सुख और दुख दोनों ष्समरसष् होकर ष्आनन्दष् बन जाते हैं। मनु जब उस आनन्द षिखर पर पहुंच तब उन्हें इसकी अनुभूति

समरस थे जड़ या चेतन

सुन्दर साकार बना था।

चेतनता एक विलसती

आनन्द अखण्ड घना था।

(4) संसार की सत्यता—प्रसाद जी ने कामायनी में संसार को षचितिष् का स्वरूप बताया है। षचितिष् सत्य है अतः उससे अद्भुत यह जगत भी सत्य और सुन्दर है। वे कहते हैं रू

चित का स्वरूप श्संह नित्य जगत

यह रूप बदलता है षत—षता

प्रसाद के अनुसार वह ष्महाचितिष् अपनी ही इच्छा से अपने ही अन्तर्गत विष्व का उन्मेश करती है। षैव दर्षन में बताया गया है किरू

चितिः स्वतन्त्रा विष्वसिद्धि हेतुः

स्वेच्छया स्वभित्तौ विष्वमुन्मीलयति ।

वह ष्महाचितिष् बिना ष्उपादानष् के बिना ष्उपकरणष् के केवल ष्संकल्पष् मात्र से संसार का उन्मीलन कर देती है। वह इस संसार में निरन्तर पांच प्रकार की लीलाएं करती है। उसकी लीलाओं के नाम हैं—सृश्टि, स्थिति, संहार, विलय और अनुग्रह। ष्कामायनीष् के ष्श्रद्धाष् सर्ग में प्रसाद जी ने यह सम्पूर्ण दार्षनिक विवेचन किया है। श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती हैरू कर रही लीलामत्र आनन्द

महाचिति सजग हुई सी व्यक्ता

विष्व का उन्मीलन अभिराम

इसी से सब होते अनुरक्त।।

वेदान्त दर्षन में जहां संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया गया है वहीं प्रसाद जी ने षैव दर्षन की मान्यताओं को ग्रहण करते हुए संसार की सत्यता का प्रतिपादन किया। जब

संसार सत्य है तो इससे पलायन करने की आवष्यकता नहीं है, अपितु इसमें प्रवृत्त होना चाहिए, यही प्रसाद का सन्देष है

काम मंगल से मंडित श्रेयसर्ग इच्छा का है परिणामातिरस्कृत कर उसको तुम भूलबनाते हं असफल. भवधाम श्रद्धा मनु को संसार में प्रवष्त होने के लिए प्रेरित करती हुई कही है कि मंगलमय ष्कामष्क्ति की उपेक्षा करके तुम अपने जीवन को असफल बना रहे हो। तुम्हें इस ष्कामष् कातिरस्कार नहीं करना चाहिए और संसार में प्रवष्त होना चाहिए। स्पश्ट ही प्रसाद यहांनिवषत्तिमार्ग का खण्डन करते हैं। अतः यह कहना समीचीन होगा कि उन्होंने पलायनवादकी विरोधा किया है और वे प्रवषत्तिमार्ग के समर्थक हैं। यह प्रव षत्तिमार्ग युगीन आवष्यकताथी क्योंकि स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए नवयुवकों को ष्प्रवषत्तिष मार्ग का सन्देषदेना था तथा निवषत्तिमार्गी भावना को दूर हटाना था।

(5) अभेदवाद या सर्वात्मवाद– प्रसाद जी की मान्यता है कि संसार के प्रत्येक पदार्थ में षिवष की ही सत्ता विद्यमान है। विष्व में जो नाना रूपात्मक पदार्थ दृश्टिगोचर होते हैं वे सभी प्रकाष रूप षिव ही हैं, उनसे अलग कोई सत्ता नहीं है। वह चितिरूप एक आत्मा ही देषकाल आदि के भेद से भिन्न–भिन्न रूपों में दिखाई देता है। प्रत्यभिज्ञा दर्षन की इसी अभेदवादी विचारधारा को प्रसाद जी ने अभिव्यक्त किया है। वे कहते है

एक तत्व की ही प्रधानता

कहो उसे जड़ या चेतना

जड़–चेतन सभी पदार्थों में उस एक तत्व (परमात्मा) की व्याप्ति है। यह जगत उसी का स्वरूप है और निरन्तर अपना रूप बदलता रहता है।

प्रसाद जी की धारणा है कि संसार सत्य और सुन्दर है अतः इसमें प्रत्येक व्यक्ति को प्रवष्त होना चाहिए। जीवन की समस्याओं से घबराकर पलायनवादी वषत्ति धारण करना कायरता है। साहस के साथ समस्याओं को जूझते हुए जीवन और जगत में प्रवष्त होने से ही सफलता मिलती है। यही कामायनी का सन्देष है। कामायनी का जीवन दर्षन व्यावहारिक एवं सर्वजन सुलभ है। आधुनिक भौतिकवादी युग में प्रसाद की षिक्षाएं पूर्णतः प्रासंगिक हैं। देवताओं के विनाष की गाथा यह बताती है कि अत्यधिक समषद्धि विलास की ओर प्रेरित करती है जिससे जीवन में अहंकार एवं अकर्मण्यता आती है जो अन्ततः हमें विनाष की ओर ले जाती है। निष्चय ही बुद्धिवाद से प्रभावित आधुनिक युग को प्रसाद जी का सबसे बड़ा अवदान कामायनी है, अपने काव्य सौधैर्य के कारण भी और अपनी आनन्दवादी विचारधारा के कारण भी । कामायनी में प्रसाद जी का जीवन दर्षन इतना व्यावहारिक है हकि उसे अपनाकर मानव अपने लक्ष्य को अवष्य ही प्राप्त कर सकता है। यह उल्लेखनीय है कि

कामायनी का पहला सर्ग है षचिन्ताष और अन्तिम सर्ग है ष्आनन्दष। चिन्ता से लेकर आनन्द

तक की यह यात्रा मनु अर्थात् ष्मनष् ने की है। चिन्ताग्रस्त मन किस प्रकार आनन्द प्राप्त कर सकता है। यही कामायनी का प्रतिपाद्य है, अतः हम कह सकते है कि कामायनी में निरूपित प्रसाद को जीवन दर्षन पूर्णतरू व्यावहारिक है।

(1) प्रसाद रू व्याख्यात्मक भाग आँसू

बस गयी एक बस्ती है, स्मषतियों के इसी हृदय में,

नक्षत्र लोक फैला है, जैसे इस नील निलय में।

ये सब स्फुलिंग हैं, मेरी इस स्वालामयी जलन के,

कुछ षेश चिह्न हैं, केवल मेरे उस महामिलन के।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण महाकवि जयषंकर प्रसाद जी द्वारा छायावादी षैली में विरचित विरह काव्य ष्आँसूष् से अवतरित किया गया है।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अपने अलौकि प्रियतम की स्मषतियों से हृदय को व्याप्त निरुपित करके उन्हें महामिलन के षेश चिह्नों के रूप में प्रतिपादित किया है।

व्याख्या –कवि कहता है कि मेरे इस विरही हृदय पटल पर अलौकिक प्रियतम की स्मषतियाँ एक बस्ती के रूप में बस गयी हैं, और इनवा प्रभाव हमारे हृदय में इसी प्रकार व्याप्त हो गयाहै, जिस प्रकार नीले गगन में नक्षत्रों का प्रकाष व्याप्त रहता है। अर्थात् ये स्मषतियाँ सदैव हमें सजग बनाये रहती हैं। मैं एक क्षण के लिये भी प्रियतम को भुला नहीं पाता हूँ और उनकी विरह ज्वाला में जलता रहता हूँ। ऐसा लगता है कि जैसे ये सब स्मषतियाँ मेरी इस ज्वालामयी विरह रूपी जलन की चिनगारियाँ हैं जो मेरे हृदय –पटल को निरन्तर सुलगाती रहते हैं। अथवा ये स्मषतियाँ मेरे और अलौकिक प्रियतम के महामिलन के कतिपय षेश चिह्न है, जो मेरे हृदय में अंकित हो गये हैं।

कवि का आषय यह है कि मेरी जीवात्मा और परमात्मा के महामिलन अर्थात् मेरे जीवात्मतत्त्व की मोक्षावस्था के समय के कतिपय षेश– चिह्न ही इन स्मृतियों के रूप में मेरे हृदय में अंकित हैं, जो मुझे उस महामिलन की याद दिलाते रहते हैं और मैं प्रियतम के विरह में छटपटाता रहता

विषेश– (1) रूपक, उपमा, अनुप्रास अलंकारों का सहज सौन्दर्य दृश्टिगोचर है। (2) भावों में दार्षनिकता की झलक मिलती है। (3) भाशा में सरसता, मार्मिकता, सहजता एवं चित्रात्मकता विद्यमान है। (4) षैली भावानुकूल, लाक्षणिक एवं सरल है।

षीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग–जल का।

यह व्यर्थ साँस चल–चलकर, करती है काम अनिल का वाडव ज्वाला सोती थी, इस प्रणयसिंधु के तल में।

प्यासी मछली–सी आँखें थीं विकल रूप से जल में।.

सन्दर्भ– पूर्वव।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने प्रिय की विरह वेदना से व्यथित होते हुये अपने मनोभावों को मार्मिकतापूर्वक अभिव्यंजित किया है।

व्याख्या –कवि कहता है कि प्रेमी के वियोग की यह पीड़ा मुझे षीतल ज्वाला की तरह सदैव जलाती रहती है। ज्वाला को षीतल कहने से कवि का अभिप्राय यह है कि यह विरह ज्वाला एक ओर तो प्रेमी की याद दिलाती है तो दूसरी ओर उसे पाने के लिए वेचौनी उत्पन्न करती है। इस ज्वाला को प्रज्जवलित करने में मेरे अश्रु–बिन्दु ईंधन का कार्य करते हैं और प्रिय की वियोगावस्था में चलने वाली व्यर्थ जीवन को साँसें वायु का कार्य करती हैं। अर्थात् प्रिय के वियोग में मेरे नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित बनी रहती हैं और लम्बे–लम्बे निष्वास निकलते रहते हैं जिससे विरहवेदना हमेषा तीव्रतर बनी रहती है।

आगे कवि विरहग्नि की तुलना समुद्र की बड़वाग्नि से करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार समुद्र में बड़वाग्नि के उत्पन्न होने पर समुद्र की जल–राषि खौलने लगती है और समुद्र में रहने वाली –मछरियाँ जल में रहकर भी प्यास के कारण छटपटाने लगती है उसी प्रकार आज प्रेमी के वियोग काल कृमें मेरा प्रणय–व्यापार विरहाग्नि से जल रहा है, जिससे प्रेमी के रूप–दर्षन की प्यासी मेरी आँखें प्रेमी के सौन्दर्य की यादें समाये हुये मछली की तरह छटपटा रही हैं।

आषय यह है कि कवि प्रेमी की विरह वेदना से व्याकुल है और उसकी आँखें प्रेमी के दर्षन पाने के लिए आतुर हो रही हैं।

विषेश – (1) उपमा, रूपक एवं अनुप्रास अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है। (2) भाशा सरल, सरस एवं सहज है। (3) वियोग श्रंषार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। (4) षैली भावानुकूल प्रभावोत्पादक एवं सहज हैं। (5) प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

(1) दुःख की पिछली रजनी बीच,

विकसतों सुख का नवल प्रभात।

एक परदा यह झीना नीली

छिपाए हैं जिसमें सुख गात।।

जिसे तुम समझे हो अभिषाप,

जगत के ज्वालाओं का मूला

कभी मत इसको जाओ भूलe

ईष का वह रहस्य वरदान,

प्रसंग ––श्रद्धा निराष मनु को समझाती हुई कहती है कि जीवन में दुःख के उपरान्त सुख का आगमन अवष्य होता है। दुःख तो परमात्मा का वरदान है अतः उससे घबराना नहीं चाहिए।

व्याख्या – हे मनु! दुख रूपी रात्रि की अन्तिम घड़ियां बीतने के बाद सुख का नया सबेरा जीवन में आता है । चसतुतः सुख ने दुख का महीन और नीला वस्त्र पहन रखा है, जैसे ही यह वस्त्र हटता है वैसे ही सुख की उपलब्धि होती है। भाव यह है कि व्यक्ति को दुख से घबराना नहीं चाहिए। जीवन में सुख–दुख का चक्र उसी प्रकार चलता रहता है जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात। तुमने जिस दुख को अपने जीवन में चिरस्थायी समझ लिया है, वह तो क्षणिक है। यह दुख अवष्य समाप्त होगा और तुम्हें सुख की उपलब्धि होगी।

जीवन में सुख तभी अच्छा लगता है जब व्यक्ति ने दुख भोग लिया हो। धूप की तपन के बाद ही पेड़ की छाया षीतल लगती है। नंगा सुख कभी अच्छा नहीं लगता, वह तभी अच्छा लगता है जब उसने दुख रूपी वस्त्र पहन रखे हों।

हे मनु ! जिस दुख को तुम जीवन का अभिषाप समझ बैठे हो और संसार के सभी कश्टों का मूल कारण मानते हो वह ऐसा नहीं है, वह तो परमात्मा के द्वारा दिया गया एक रहस्यपूर्ण वरदान है, तुम्हें इस तथ्य को कभी नहीं भूलना चाहिए। भाव यह है कि इस लेख को तुम अभिषाप न मानकर परमात्मा का वरदान समझो तभी तुम्हें षान्ति मिल सकेगी। दुख के बाद तुम्हारे जीवन में सुख का संचार भी अवष्य होगा। विषेश– 1. जीवन में सुख–दुख का चक्र अनवरत खरं से चलता रहता है कहा गया

चक्र इव परिवर्तन्ते सुखाने दुखानि च ।

2. जीवन में दुख की अनिवार्यता है, इस तथ्य को श्रद्धा ने स्पश्ट किया है किन्तु वह दुख

को अभिषाप न मानकर वरदान मानती है, क्योंकि दुख में अपने–पराए की पहचान हो जाती है तथा हम अपने धैर्य की परीक्षा भी दुख में ही करते हैं।

3. रूपक अलंकार है, दुख पर रात्रि का एवं सुख पर प्रभात का आरोप किया गया है।

लाक्षणिक पदावली, चित्रोपम् भाशा, साहित्यिक खड़ी बोली, प्रसाद, गुण, उपदेषात्मक षैली, आषावादी एवं प्रवृत्तिमार्गी जीवन दर्षन है।

प्रकृति के यौवन का श्रषंगार

करेंगे कभी न वासी फूल।

मिलेंगे वे जाकर अति षीघ्र,

आह उत्सुक है उनकी धूल

पुरातनता का यह निर्मीक,

सहन करती न प्रकृति पल एका

नित्य नूतनता का आनन्द,

किए हैं परिवर्तन में टेक ।

प्रसंग परिवर्तन प्रकृति का षाष्वत नियम है। परिवर्तन से नवीनता आती है और नवीनता से आनन्द का विधान होता है। श्रद्धा मनु को इसी बारे में समझाती हुई कहती है कि ललय भी परिवर्तन का एक सामान्य नियम है। उससे इतना अधिक निराष होने की आवष्यकता नहीं है। उसे सहज रूप में ग्रहण करना चाहिए।

व्याख्या – हे मनु ! परिवर्तन तो प्रकृति का षाष्वत नियम है। यह प्रकृति सुन्दरी नित्य नवीन खिले हुए पुश्पों से अपना श्रृंगार करती है। जो पुश्पी मुरझा गए हैं, बासी पड़ गए हैं वे तो डाल से झरकर ध ल से मिल जायेंगे, जो बड़ी अधीरता से उनकी प्रतीक्षा कर रही है।

प्रलय भी इसी प्रकार की परिवर्तन की प्रक्रिया है जो नवीन सषश्टि के विकास का हेतु बनेगी। इसलिए इस प्रलय को तुम्हें सहज रूप में ग्रहण करना चाहिए। इससे इतना अध्िाक हताष एवं निराष होने की आवष्यकता नहीं है।

हे मनु। यह प्रकृति प्राचीनता की केंचुली को एक पल के लिए भी सहन नहीं करती और उसे उतारकर फेंक देती है। परिवर्तन से नवीनता आती है और नवीनता से आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार आनन्द पाने के लिए नवीनता की परम आवष्यकता है। यह नवीनता तभी आ सकती है जब परिवर्तन हो।

भाव यह है कि प्रलय को परिवर्तन की एक सहज सामान्य प्रक्रिया के रूप में तुम्हें ग्रहण करना चाहिए और इससे इतना अधिक हताष नहीं होना चाहिए।

विषेश–

1. प्रकृति के मानवीकरण की प्रवषत्ति यहां परिलक्षित हो रही है।

2. भाशा में लाक्षणिकता का समावेष है।

3. छायावादी भाव एवं षिल्प का पूर्ण परिपाक इन पंक्तियों में हुआ है।

4. श्रद्धा का व्यक्तित्व मनु की तुलना में अधिक प्रबल एवं प्रभावी हैं

5. षान्त रस, प्रसाद गुण, चित्रोपमा

6. षुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली की प्रयोग है।

7. रूपक अलंकार एवं मानवीकरण अलंकार है।

कहा आगन्तुक ने सस्नेह–

अरे, तुम इतने हुए अधीर !

हार बैठे जीवन का दांव,

जीतते मर कर जिसको वीर

तप नहीं केवल जीवन सत्य,

करूण यह क्षणिक दीन अवसाद,

तरल आकांक्षा से है भरा,

सो रहा आषा का आह्लाद।।

प्रसंग – निराष मनु को आषावादी सन्देष देती हुई श्रद्धा उनकी निवष्त्तिमार्गी भावना का खण्डन करती है और उन्हें संसार में प्रवष्त करती हुई कहती है–

व्याख्या मनु की निराषा भरी बातों को सुनकर उन्हें आष का सन्देष देती हुई श्रद्धा प्रेम पूर्ण स्वर में कहने लगी– अरे तुम इतने अधिक अधीर क्यों हो रहे हो! मुझे पूरा विष्वास है कि तुम्हारे जीवन मेंभी सुख का संचार होगा। मुझे लगता है कि निराषा की अधिकता के कारण तुम जीवन की उस बाजी को हार बैठे हो जिसे वीर पुरूश कभी नही हारता और जीवन की इस बाजी को जीतने के लिए वह अपने प्राणों की बाजी भी लगा देता है।भाव यह है कि श्रद्धा मनु को निराषा त्यागकर एक वीर पुरुश की भांति जीवन की बाजीको जीतने की प्रेरणा दे रही है।विषेश– 1. श्रद्धा मनु की निवष्त्तिमार्गी भावना का खण्डन करती हुई उन्हें संसार में प्रवष्तकर रही है नारी पुरुश की प्रेरक षक्ति है। वह निरंगा के क्षणों में आषा का संचार करती है।2.संवाद षैली का प्रयोग इन पंक्तियों में किया गय ा है।3. लाक्षणिक पदावली का प्रयोग है।4. प्रसाद गुण, षान्ति रस तथा श्रृंगार नामक 16 मात्राओं वाला छन्द है।जंत विभावरी जाग री !अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा–घट ऊशा नागरी ।खग–कुल–कुल– कुल सा बोल रहा, किसलय का अचल डोल रहा।लो यह लतिका भी भर लाई मधु–मुकुल नवल रस गागरी ।अधरों में राग अमन्द पिये, अलकों में मलयज बन्द किये। तू अब तक सोई आली, आँखोंमें भरे विहाग री।सन्दर्भ– प्रस्तुत कविता प्रमुख छायावादी कवि श्री जयषंकर प्रसाद द्वारा रचित है तथा इसेष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष् में संकलित किया गया है।पाठ्य–पुस्तकप्रसंग प्रस्तुत कविता में प्रसाद जी ने प्रातःकालीन बेला के आगमन की अत्यन्त सुन्दरव्याख्या की है। व्याख्या प्रस्तुत कविता कवि की अनेक स्फुट रचनाओं में से एक है, जिसमेंएक सखी अपनी सखी को सबेरा होने पर जगा रही है। वह कहती है कि, हे सरी रात्रिव्यतीत हो चुकी है अब तूं जाग जा। यह सोने का समय नहीं है। देख उधर आकाष–रूपी

पनघट पर तारे–रूपी मटकों को ऊशा (प्रातरूकालीन बेला) रूपी चतुर स्त्री डुबो रही है। (प्रातः होने पर तारे स्वयः छुप जाते हैं।)

पक्षियों का समूह अनेक प्रकार की ध्वनियों से वातावरण को गुंजायमान कर रहा है। प्रातःकाल वायु से पेड़ों की पत्तियाँ भी हिल रही हैं। लताओं का मिलना–डुलना ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो यह भी मधुर–मधुर नवीन रस का पात्र भर लाई हैं। ऐसे सरन्य वातावरण में है सखी, तुम अपने अधरों में अमन्द राग लिये तथा अपनी अलकों में मलयज वायु को बन्द किये हुये सो रही हो। तुम्हारी आँखों में मानो विहाग राग का उनींदापन भरा हुआ है।

विषेश– 1, कवि ने सबेरे का अत्यन्त मनोरम चित्र खींचा है। ऐसा लगता है कि मानो वास्तव में लतिका

मटका कमर से टिकाये चली आ रही हो.

2. प्रकृति का मानवीकरण अत्यन्त मर्मस्पर्षी

3. मानवीकरण, वष्त्यानुप्रास, रूपक आदि अकारों की छटा दर्षनयी है।

4. भाशा तत्समय एवं संस्कृतनिश्ठ षब्दावली से युक्त है।

5. छायावादी काव्य की छाया का स्पश्ट प्रभाव दृश्टिगोचर होता है।

यह सव अषोक की चिना

का षासन रे मानव मन का।

गिरि भार बना सा तिनका यह घटाटोप दो दिन का।

फिर रवि–षषि किरणों का प्रसंग

यह महादम्भ का दानव, पीकर अनंग का आसवा

कर चुका महाभीशण रव, सुख दे प्राणी को मानव,

तज विजय पराजय का कुढंग ।।

सन्दर्भ–प्रस्तुत अवतरण हमारी पाय–पुस्तक की ष्अषोक की चिन्ताष् षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविर जयषंकर प्रसाद जी हैं।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने सम्राट अषोक के माध्यम से षासन–सुख की क्षणभंगुरता प्रतिपादित करते हुये मानवीय बर्बरता की तीखी निन्दा की है और उसे त्यागने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या कवि कहता है कि विक्षुब्ध सम्राट अषोक मन में विचार करते हुये कहते हैं कि यह षासन करने का कैसा सुख हैं? यह षासन का सुख है या मनुश्य के मन का कल्पित सुख है। अर्थात् मनुश्य के मन का ही यह भ्रम है कि वह दूसरों का पराजित करके उन्हें अपना गुलाम बनाकर सुखानुभूति करना चाहता है। कल जिस गिर प्रदेष कलिंग को जीतना भारस्वरूप था, आज वही पराजित होकर तिनके के समान तुच्छ हो गया है। यह जय और पराजय वर्शाकालीन घटाटोप की तरह है, जो क्षणिक है। जिस प्रकार बादल क्षण–भर के

लिये सूर्य और चन्द्रमा को भी एंग लेते हैं, लेकिन थोड़ी ही देर में पुनः सूर्य या चन्द्रमा की किरणें बादलों के समूह को चीर कर दैदीप्यमान होने लगती हैं। उसी प्रकार विजय के घमण्ड से थोड़े समय के लिये चाहे भले ही सुखानुभूति मिल जावे, लेकिन यह अनुभूति स्थायी नहीं हो सकती है।

आगे कवि कहता है कि विजय का यह घमण्ड एक दानव की तरह है, जो कामदेव के भोगेच्छा–रूप आसव (मद्य) को पीकर अत्यन्त भयंकर आवाजें कर चुका है। अर्थात् भोग इच्छा को पूरा करने के लिये मनुश्य के द्वारा अनेकानेक अत्याचार और हिंसक आक्रमण किये जाते रहे हैं, जिससे सम्पूर्ण मानवता त्रस्त रही हैं।

अन्त में कवि सन्देष देता हुआ कहता है कि आततायी मानव! विजय और पराजय के कुचक्रों का त्याग कर मुझे प्राणिमात्र के सुख के लिए कार्य करने चाहिये। इसी में सभी का कल्याण निहित है।

(2) वेदना विकल यह चेतन, जड़ का पीड़ा से नर्तना

लय सीमा में यह कम्पन, अभिनयमय है परिवर्तन।

सन्दर्भ–प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक की ष्अषोक की चिन्ताष षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कटिंबर जयषंकरजा हैं।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में ने जड़ और चेतन को वेदना से विकल निरूपित करते हुये सम्पूर्ण संसार को दुखमय प्रतिकिया है।

ख्या कवि कहता है कि कलिंग के रक्तपात से सम्राट अषोक का मन इतना विक्षुब्ध और व्यायत हो यगा है कि उन्हें सम्पूर्ण सषश्टि में अपनी व्यथा की प्रतीत होने लगी। वे कहते हैं कि इस सषश्टि के चेतन प्राणी सांसारिक वेदना से व्याकुल हैं और जड़ पदार्थों में होने वाले परिवर्तनों को देखकर ऐसा लगता है कि ये जड़ पदार्थ भी सांसारिक पीडिओं से व्यथित होकर नष्त्य–सा कर रहे हैं अर्थात् व्याकुल हो रहे हैं।

सषश्टि की सीमा में होने वाली तय होने की क्रियाओं से कम्पन हो रहा है। इस प्रकार इस सषश्टि में अभिनयात्मक ढंग से परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन सषश्टि की सतत् प्रक्रिया के अंग हैं। यही कारण हैं कि न जाने कब से परिवर्तन की यह सत् प्रक्रिया गतिषील है।

विषेश– 1. सषश्टि में सतत् रूप से होने वाले परिवर्तनों की ओर संकेत किया गया है।

भाशा षैली, संत एवं प्रवाहमयी है।

भुनती वसुधा, तपते नग, दुखिया

कंटक मिलते हैं प्रति पग, जलती सिलतो का यह मगा

वह जा बन करुणा की तरंग, जलता है यह जीवन पतंग

सन्दर्भ – पूर्वानुसार

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने सम्राट अषोक के माध्यम से नाना रूपात्मक जगत् को ामय निरूपित करते हुये मानव को करुणा की तरंग बनने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या – कवि कहता है कि विक्षुब्ध सम्राट अषोक को सम्पूर्ण सषश्टिं दुःखों से ग्रस्त प्रतीत होती है। वे कहते हैं कि यह संसार दुःखों का घर है। यहाँ के जड़ और चेतन सभी दुःखों से घिरे हुये हैं। सम्पत्तियों को धारण करनेवाली विषाल पष्थ्वी सूर्य के प्रचण्ड ताम से भुनती रहती है, विषाल और ऊँच पर्वत भी तपते रहते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जड़ और चेतन जंगत नाना प्रकार के दुःखों से दुःखी है। यहाँ कदम–कदम पर विपत्ति और बाधा–रूपी काँटे मिलते हैं, जो पैरो में चुभकर गहरी पीड़ा पहुँचाते हैं। यहाँ के मार्ग रेतीले हैं, जो सूर्य के ताप से तप्त होकर जलने लगते हैं। इन पर चलना बड़ा कठिन होता है। अर्थात् सांसारिक जीवन नाना प्रकार के कश्टों व्यथाओं और पीड़ाओं से भरा हुआ है। इसलिये हे मानव तुझे करुणा की तरंग बनकर गतिषील होना चाहिये अर्थात् तुम्हें सभी के साथ करुणा पूर्ण व्यवहार करना चाहिये और उन्हें सुख षान्ति प्रदान करना चाहिये। अन्यथा यह जीवन रूपी पतंगा एक न एक दिन अवष्य ही नश्ट हो जायेगा। इसी सार्थकता करुणा पूर्ण जीवन जीने में ही निहित है।

(1) विषेश–

1. अनुप्रास व रूपक अलंकार ला सहज प्रयोग दृश्टव्य है।

भाशा षैली, सरल, सहज एवं प्रभावी है।

ये कुछ दिन कितने सुन्दर थे–

प्राण पपीहा के स्वर वाली, बरस रही थी जब हरियाली। रस जलकन मालती मुकुल से जो मदमाते गन्ध विधुर थे । चित्र खींचती थी जब चपला, नील मेट पर वह बिरला । मेरी जीवन–स्मषति के जिसमें, जिखल उठते, वे रूप मधुर थे।

सन्दर्भ–प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक के ष्वे कुछ दिन कितने सुन्दर थेष षीर्शक गीत से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर जयषंकर प्रसाद जी हैं।

व्याख्या कवि अपन प्रेम–भरे जीवन का सुखद स्मषतियों को याद करता हुआ कहता है कि वे प्रेम–भरे कुछ दिन कितने सुन्दर थे, जब मेघ बरस रहे थे, चारों ओर हरियाली लहरा रही थी और प्राण प्यारे पपीहा के मधुर स्वर चारों ओर गूँज रहे थे। रस जलकणों से भरे हुये मालती के फूलों की भीनी–भीनी गन्ध चारों ओर फैलकर सभी को मदमस्त बना रही है।

कवि का आषय यह है कि प्रेम भरे दिन वर्शाकाल के दिनों की भाँति उमंग, अत्साह, आषा, प्रेम और मस्ती से भरे हुये । सम्पूर्ण वातावरण बड़ा ही सुखद प्रतीत हो रहा था। इस वर्शाकाल में जब बिजली बादलों के बीच में रह–रह कर सकती थी तो ऐसा लगता था कि जैसे वह नीले बादल – रूपी चित्र–पट पर चित्र खींच रही है। इस बिजली की में मेरे प्रेम–भरे जीवन की यादें ताजी हो उठती थीं और इनके रूप अत्यन्त मधुर तथा आकर्शक प्रतीत हो रहे और इस प्रकार कवि को अपने प्रेम भरे जीवन के दिनों की यादें आत्म–विभोर बना देती है।

विषेश– 1. अनुप्रास, रूपक एवं उपमा अलंकारों का सहज सौन्दर्य विद्यमान है।

2. प्रेम और सौन्दर्य का मधुर चित्रण किया गया है।

3. भाशा माधुर्य और प्रसाद गुणमयी है।

4. संगीतात्मक का माधुर्य मनोहारी है।

इकाई – 13 महादेवी वर्मा आलोत्मक चेतनासनीक्षात्मक भाग

अवाचीन हिन्दी

छायावाद की श्रेश्ठतसे कवयित्री का काव्य सौश्ठव

महादेवी जी छायावादी युग की सर्वाधिक आस्थावान कवयित्री रही हैं। छायावाद की चार महान् विभूतियों में प्रसाद जी का भावात्मक लगाव तो छायावादी विचारधारा के साथ अवष्य ही जीवन पर्यन्त बना रहा, पर महाप्राण निराला और कविवर पन्त अपने उत्तरवर्ती काव्य में छायावादी भावबोध से विरत हो गये किन्तु महादेवी जी इसका अपवाद हैं। उनकी काव्य–यात्रा. दाचावादी रहस्यवादी दौर से प्रारम्भ होकर जीवन–यात्रा के समानान्तर जीवन पर्यन्त चलती रही। महादेवी जी भवुक हृदय के साथ–साथ विदुशी भी हैं। इसीलिये उनके काव्य का भावपक्ष छायावादी और रहस्यवादी विषेशताओं से समष्द्धषाली

महादेवी वर्मा और छायावाद

सुश्री महादेवी वर्मा का छायावादी कवियों में विषिश्ट स्थान है। छायावादी काव्य में प्रसाद

ने यदि मादकता का समावेष किया, निराला ने उसे मुक्त छन्द दिया, पन्त ने षब्दों को खराद पर चढ़ाकर उसे सुडोल और सरल बनाया तो महादेवी ने उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया है।

सामान्य रूप से छायावाद की प्रमुख विषेशतायें हैं– वैयक्तिकता प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप, कल्पनाओं की समषद्धि सौन्दर्य भावना, श्रृंगारिकता, करुणा एवं दार्षनिकता । स्वानुभूति की अभिव्यक्ति को छायावादी षैली की विषेशतायें माना है। इन सभी विषेशताओं के दर्षन महादेवी के काव्य में सफ रूप में होते हैं।

1. वैयक्तिकता

काव्य में कवि का व्यक्तित्व अप्रत्यक्ष या प्रतयक्ष किसी न किसी रूप में निहित होता है। महादेवी के काव्य में तो यह त्व और भी अधिक मुखरित हुआ है। इसी तत्व को देखकर यह कहा जाता है कि महादेवी के गीतों के पल में एक क्षीण–सी कथा––धरा प्रवाहित होती है। वस्तुतरू महादेवी की समस्त रचनायें इनके जीवन–काले में आने वाले विविध पड़ावों के समान हैं। यथा– ष्नीहारष और ष्रष्मिष में अधिकांष रूप में कवयित्र के मन की कोमल, स्निग्ध ा और उल्लासमयी भावनायें व्यक्त हुई हैं। इसके विपरीत, ष्नरीजाष में कवयित्र का विवाद साकर हो उठा है और ष्दीपषिखाष में कवयित्री ने अकम्प विष्वास को प्राप्त कर लिया है। जैसे– दूसरी होगी कहानी

षून्य में जिसके मिटे स्वर धूलि में खोई निषानी!श

2. अतीन्द्रिय प्रेम–छायावादी कार्य में प्रेम की अलौकिकता का आवरण सर्वत्र पड़ा हुआ हैं जिसे अतीन्द्रियता कहा जाता है। छायावादी काव्य में व्यक्त प्रेम की यह अतीन्द्रियता रीतिकालीन काव्य में व्यक्त लौकिक प्रेम की प्रतिक्रिया मानी जाती है। महादेवी के काव्य में भी इस प्रकार का चित्रण व्यापक रूप में हुआ है। इन्होंने प्रायः सहज मानवीय आकर्शण के स्थूल संकेत नहीं दिये हैं, वन् सदैव प्रतीकों के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त किया हैं। यथा– श्यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दोश,लेकिन कहीं कहीं स्थूल संकेतों के भी उदाहरण मिलते हैं
श्इन ललचाई आँखों पर पहरा जब था ब्रीड़ा का, साम्राज्य मुझे दे डाला उस वितवन ने पीड़ा का महादेवी के प्रेम–चित्रण की एक प्रमुख विषेशता यह है कि इन्होंने सर्वत्र अपनी प्रणव–भावनाका उन्नयन तथा परिश्कार किया है। इन्होंने अपने प्रेम का आलम्बन वह बताया है जिसकास्वरूप विराट एवं विषल है और जो अलौकिक है–

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हैं।

नींद था मरा अझ निस्पद कण–कण में

3. प्रकृति पर चेतन का आरोप– छायावादी कवियों ने प्रकृति पर सर्वत्र चेतना का आरोप करके उसके साथ विविध मधुर सम्बन्धों को कल्पनायें की हैं। महादेवी के काव्य में भी यह विषेशता पायी जाती है। रजनी का मानवीकरण करती हुई वे कहती हैं–

भाभी षिलषिल नारों को जाली।

उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियालीश।

महादेवी के काव्य में प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उसके विविध रूपों का चित्रण हुआ है।

4. विशाद – भावना – महादेवी का काव्य विशाद – भावना से ओत–प्रोत है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि सुख की अपेक्षा दुख ही कवयित्री को अधिक प्रिय रहा है। अपनी सी मानसिक सीिति का उद्घाटन करते हुये उन्होंने लिखा है– ष्सुख और दुख के धूप–छाँह के डोरों से बने हुये जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनना क्या इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आष्चर्य का विशय है। संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ प्राप्त हुआ है परन्तु उस पर दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी हैं यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि महादेवी का विशद वह भाव नहीं नहीं जो कर्मषक्ति को कुंठित कर देती है वरन वह भाव है जिसमें संयम और त्याग तथा दूसरों का हित करने की प्रबल आकांक्षा है। बदली से अपनी समता करती हुई कवयित्री कहती है–

1 मैं नीर भीर दुख की बदली, विस्तष्त नभ का कोई कोना ।

मेरा न कभी अपना होना, परिचय इतना इतिहास यही।

उमड़ी थी कल मिट आज चली।श

विशाद – भावना कवयित्री को इतनी प्रिय है कि से बनाये रखने के लिये वे अमरों के लोक को भी नगण्य समझती हैं––

श्ऐसा तेरा लोक वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,

जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वादा

5. रहस्य – भावना – रहस्य–भावना छायावादी काव्य की एक प्रमुख विषेशता है। छायावादी काव्य में रहस्य – भावना की इतनी अधिक अभिव्यक्ति हुई है कि रहस्यवाद और छायावाद का अटूट सम्बन्धा परिलक्षित होता है। महादेवी की कविताओं में रहस्य – भावना भी प्रचुरता से मिलती हैं। यथा– श्शून्य नी में उमड़ जब दुख भार सी

नैष तम में सघन छा जाती घटा ।

6. सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान एवं लाक्षणिक– मूर्तिमत्ता – सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान

सुक्ष्म अप्रस्तुत विधान एवं लाक्षणिक मूर्तिमत्ता छायावादी काव्य का बहिरंग तत्व है। महादेवी के काव्य में ये तत्व भी सहज ही देखे जा सकते हैं। इस दृश्टि से इनका काव्य भव्य एवं उदात्त समझा जा सकता है भावों का साकार चित्रण करने में वे सिद्धहस्त हैं। थोड़ी–सी रेखायें और थोड़े से उभरते हुये चित्रों के समान ही उनकी कविता में भी अल्प षब्दों से अंकित अनेक सुन्दर चित्र विद्यमान है। इनका अप्रस्तुत विधान भी इनकी कला को उत्कृश्टता प्रदान करने में सदैव सहायक है। यथा–

श्फूलों की मीठी चितवन नम की ये दीपावलियाँ,

पीले मुख पर संध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ ।

इस प्रकार हम देखते है कि महादेवी की कविताओं में छायावादी काव्य का सम्पूर्ण वैभव उपलब्ध होता है। न केवल विचार क्षेत्र में वन् काव्य–क्षेत्र में भी महादेवी जी ने एक और छायावादी तत्वों का भरपूर प्रयोग किया है तो दूसरी ओर उनको अपनी मौलितका भरी प्रतिभा और चिन्तन ने कला–कौषल से सबल और समर्थ बनाया है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के विचारों को दृश्टिगत रखकर यह कहा जा सकता है कि– श्महादेवी जी के काव्य में छायावादी नूतनं काव्य धारा का संगीत है। उनमें छायावाद अपने उत्कृश्ट रूप में प्रतिश्ठित है और उसे छायावाद ने ही नई अभिव्यंजना, नई अनुभूति एवं नई भाव–भंगिमा प्रदान की है। माहदवी जी छायावाद की अन्यतम कवियित्री हैं और उन्होंने छायायाची युग–बोध, छायावादी अति तवा नानी पद्धात आदि को पूर्णतया आत्मसात करके ही अपने सुमधुर गीतों की रचना की है। अतः आपके काव्य में दायावाद का उज्जल स्वर मुखरित हो रहा है।

कलापक्षीय वैषिश्ट्य

1. भाशा—भाशा के क्षेत्र में महादेवी षुरू से अन्त तक एकनिश्ठ रही हैं श्न तो उन्होंने निराला के समान भाशा के विविध आयाम देखे और न पत्त के समान प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के क्षेत्र में प्रवेष किया।श दूसरी ओर वे तो एकदम षुद्ध साहित्यिक हिन्दी (खड़ी बोली) को प्रतीक परकता तथा प्रायः षुद्धता आदि इनकी प्रमुख भाशागत विषेशतायें हैं।

2. अलंकार — महोदवी के प्रिय अलंकार एकदम छायावादी कविता वाले हैं अर्थात् मानवीकरण समासोक्ति, रूपक और उसके भेद, विरोधाभास, विषेशण विपर्यय, उपमादि। कुछ सषक्त प्रयोग देखिये—

मानवीकरण श्धीरे—धीरे उत्तर क्षितिज से,

आ बसन्त रजनीये!"

समासोक्ति श्चुभते ही तेरा अरूण बान—

इन कनक— रष्मिंत्रों में अथाह

उपमा श्मोम सा मन धुल चुकल अब, दीप सा तन जल चुका है।

3. छन्द — जहाँ तक छन्द—योजना का प्रष्न है, महोदवी अधिकांषतः मात्रिक छन्दों की प्रयोक्ता हैं, कही—कहीं लोक छन्द भी व्यवहत मिलते हैं। यूँ रोला से दो मात्रायें मिलाकर नवछन्द का निर्माण भी इन्होंने किया है तो मालिनी, माधव मालती जैसे प्राचीन छन्दों को भी नये—पुराने दोनों रूपों में प्रयोग किया है।

4. गीतात्मकता — महादेवी का एकमात्र प्रियतम काव्य रूप है— गीत, जिसके स्वरूप को स्पश्ट करते हुये स्वयं कवयित्री ने कहा है कि श्गी व्यक्तिगत सीमा में सुख—दुःखात्मक अनुभूति का वह षब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मक में गये हो सके।

ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता से सने हुये गीत पर्याप्त मात्र में उनकी कृतियों में प्राप्त हैं और कही—कहीं मात्रओं को घटा—बढ़ाकर भी लय अक्षुण्य रखी गई है लेकिन ऐसे प्रसंगों में कवयित्री सजग होकर भावों को काँट—छाँट करती हैं तथा वहाँ भी अनुभूति की तीव्रता अपने आप अनुकूल संगीत व लय से मुखरित हो उठती है, जैसे—

पंथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला

इस प्रकार महादेवी ने गीत के तीन आवष्यक तत्व माने हैं—

1. रागात्मक व्यक्तिगत निवेदन, 2. संक्षिप्तता, 3. गेयता या संगीत

निःसन्देह उनके सभी गीतों में इनकी अक्षरषः पालन ही नहीं, उच्चकोटि का निर्वाह भी हुआ है। गध्यकालीन भक्त कवियों के गीतों से प्रभावित और छायावादी युग की श्रेश्ठ गीत रचना से गहराई तक परिचित महादेवी जी के गीतों का हर तरह से उत्तम होना स्वाभाविक ही है।

निश्कर्श उपर्युक्त विवेचन से स्पश्ट है कि महादेवी जी की रचनायें कल्पना, बिम्ब, गूढार्थ व्यंजना आदि से परिपूर्ण है। ये उक्तियाँ कपुत्री की आन्तरिक अनुभूतियों और उनकी मूल संवेदनाओं से सम्पन्न हैं। इनकी सषश्टि बौद्धिक बारीकी द्वारा नहीं अपितु आत्मिक सौन्दर्य

की अनुभूति द्वारा हुई है। महादेवी जी ने रागात्मक चेतना, अपनी रस– चर्वणा और अपनी सर्जना षक्ति के सहारे इन्हें प्रतिबिम्बित किया है। उनके चित्रों में कल्पना की रेखायें और अनुभूति के रंग हैं। वे भले हो दैनिक जीवन के तथ्यात्मक यथार्थ से एवं अनुभूतियों का चयन करने के लिये सहमत नहीं, फिर भी वे जीवन के षाष्वत रू तत्वों और सार्वकालिक सार्वभौम अनुभूतियों के प्रति ग्रहणषील रही हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि महादेवी वर्मा का भावपक्ष छायावादी और रहस्यवादी भाव – सम्पदा से सुसमष्द्ध होकर उनकी सषक्त कला के माध्यम से उनकी रचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है। अतः निश्कर्शतः यह कहा जा सकता है कि भाव व कला की दृश्टि से उनका काव्य उत्कृश्ट है और हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

महादेवी का वेदना पक्ष

महादेवी वर्मा छायावाद के आधार पर स्तम्भों में से एक हैं। अज्ञात प्रियतम के प्रति वेदना भाव अभिव्यक्ति उनके काव्य में प्रमुखता से हुई है। वेदना और करूणा की प्रधानता के कारण ही महादेवी जी को आधुनिक मीरा कहा जाता है। अज्ञात प्रियतम के प्रति विरह वेदना की भावना के कारण ही उनके काव्य में रहस्यवाद की प्रमुखता है। उनकी कृतियां– नीहार, रष्मि, नीरजा, सांध्यगीत एवं दीपषिखा में सर्वत्र वेदना व्याप्त है।

विरह प्रेम का उदात्त स्वयप है तथा प्रेम की कसौटी है। कबीर की विरहिणी आत्मा इसी का सम्बल लिए हु प्रियतम से मिलन को अधीर है तो यही विरह मीरा का सर्वस्व बनकर उसे कृशण के प्रेम में दीवाना बना रहा है। घनानन्द के काव्य में यही प्रेम सुजान के प्रति विरह भाव के रूप में दिखाई देता है तो यही विरह ष्आसष बनकर प्रसाद की आँखों से बरस रहा है। इसी विरह वेदना ने महादेवी जी को व्यग्र बनाकर उन्हें अपनी तुलना ष्नीर भरी बदलीष से करने को विवष कर दिया है

श्मैं नीर भरी दुःख की बदलीपरिचय इतना इतिहास यहीउमड़ी कल थी मिट आज

चली।।

महादेवी वर्मा की विरहानुभूति अत्यन्त उन्नत एवं उत्कृश्ट है, जिसमें प्रेम का आवेग है, वेदना की तीव्रता है और व्यथित चित्त की मनोदषाओं का निरूपण है। महादेवी जी की मान्यता है– श्दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बांधकर रखने की क्षमता रखता है कृकृकृकृ मनुश्य सुख को अकेले भोगना चाहता है, किन्तु दुःख सबकों बांट कर विष्व जीवन में अपने जीवन को, विष्व वेदना में अपनी बेदना की इस प्रकार मिला देना चाहता है, जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है।

महादेवी वर्मा की विरहानुभूति का निरूपण निभ षीर्शकों में किया जा सकता है

1. प्रेम वेदना की गहनता – महादेवी वर्मा के काव्य में प्रेम वेदना की गहनता सर्वत्र विद्यमान है द्य वेदना उन्हें इतनी प्रिय है कि वे उसका साथ नहीं छोड़ना चाहती हैं, क्योंकि इसी वेदना के माधयम से उन्होंने सर्वषक्तिमान चेतनामय ईष्वर का दर्षन किया है। यथा

श्मेरे बिखरे प्राणों में सारी करुणा हुलका दो,

मेरी छोटी सीमा में अपना अस्तित्व मिटा दो। पर षेश नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें ढूंढूंगी थोड़ा ।।

2. करुणा की प्रधानता – विरह की तीव्रानुभूति कारण महादेवी वर्मा जी के हृदय में अपार करुणा दिखाई पड़ती है। महादेवी जी के समय का निराषावाद भी इस करुणा को उत्पन्न कले में सहायक सिद्ध हुआ। करुणा का भाव कवयित्री के अनुसार अत्यन्त पवित्र है, उसकी स्पर्ष छाया से दुःख भी निखर उठता है। यथाषून्य मन्दिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी। अर्चना हो षूल भोर्ले, क्षार दूग जल अर्घ्य हो लें. आज करुणा स्नात उजसा दुःख ही मेरा पुजारी

3. नारी सुलभ सात्विकता महादेवी जी के हृदरों में वेदना की कोमल भावनाओं के साथ–साथ नारी हृदय की स्वाभाविक सात्विकता भी समाहित है। उनके गीतों की प्रेम वेदना में न द्वेश है, न घष्णा है, न कटुता है, न प्रतिकारा यदि है तो केवल वेदना, जिसमें उनका अपना नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति का असीम षोक समाया हुआ है। उनकी करुण पुकार में ना हृदय की वेदना का स्पश्ट अंकन दीख पड़ता है। यथाः जो तुम आ जाते एक बार !कितनी करूणा कितने सन्देष पथमं बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार–तार अनुराग भरा उन्माद राग, आंसू लेते वे पद पखार!

4. महादेवी की आध्यात्मिकता – महादेवी वर्मा की विरहानुभूति अध्यात्म प्रधान है किन्तु वह परम्परागत धार्मिक भावनाओं से न जुड़कर मनुश्य के जीवन से अधिक जुड़ी है। अलौकिक के साथ उनकी लौकिक प्रणयानुभूति का सामंजस्य की भावना की सफल अभिव्यक्ति करता है। अपनी इसी आध्यात्मिक अनुभूति के कारण वे अपने अज्ञात प्रियतम को लौकिक वस्तुओं में खोजती हैं। यथा

ष्कुमुद – दल से वेदना के दाग को पोंछती जब आंसुओं से रष्मिया, चौंक उठती अनिल के निष्वास छू, तारिकाएं चकित–सी अनजान सी, तब बुला जातः मुझे उस पर जो, दूर के संगीत – सा वह कौन हैं?

5. भक्ति की तन्मयता – महादेवी जी के काव्य में आध्यात्मिकता के साथ–साथ भक्ति भाव भी मुखरित होता है। भक्तिभाव से पूजा–अर्चा करने के लिए देव की प्रतिमा के श्रृंगार की सारी सामग्री सजा कर वे पूजा–अर्चना में लीज हो जाती है। हां सामग्री का रूप सामान्य भक्त की सामग्री से भिन्न है, किन्तु पाजा का भाव वही है । यथाः क्या पूजा क्या अर्चन रे?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवर रे।

मेरी ष्वासे करनी रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।।

इस पूजा–अर्चना में पार्थिवता नहीं है, किन्तु तन्मयता वही है जो एक भक्त में होती हैं इसलिए यह कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य में उपलब्धा वेदना भक्ति की तन्मयता से परिपूर्ण है।

6. विरह वेदना की निरन्तरता – महादेवी के काव्य में विरह भावना का अविरल प्रवाह है, उसमें नदी की तीव्र धारा के समान अजन्स खोत है। उनका हृदय सिन्धु वेदना भाव से

निरन्तर उद्वेलित होता रहता है। इसीलिए उसमें से भावानुभूतियों का अविरल, षाष्वत एवं अजन्स प्रवाह होता रहता है। महादेवी को विरह वेदना कृत्रिम न होकर स्वभाविक है। इसीलिए वे अपने जीवन दीप के साथ स्वयं भी प्रज्वलित रहने की कामना करती हैं। वे इस जीवन द्वीप से प्रियतम के पथ को आलोकित करना चाहती है

मधुर–मधुर मेरे दीपक जल

युग–युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,

प्रियतम का पक्ष आलोकित कर ।

वे मिलन नहीं चाहतीं औरचिर विरह की साधना करना चाहती है। उनके व्याकुल प्राणों का संगी तो केवल अँधेरा ही है

षून्य मेरा जन्म था अवसान है मुझको सबेरा ।

प्राण आकुल के लिए संगी मिला केवल अँधेरा

मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूं।।

सारांष यह है कि महादेवी की विरहानुभूति में गहन प्रेम वेदना का ततव व्याप्त है। वे करुणा से ओतप्रोत विरह की ऐसी कवयित्र हैं जो अज्ञात प्रियतम की खोज में लीन हैं। उनके विरह में आध्यात्मिकता, पावनता, सात्विकता एवं उदात्तता है।

यह विरह वेदना, मौन, नौरव तथा एकाकी है इसीलिए वह असीम, अजन्स एवं अविरल है। उनका क्रन्दन भी मूक है। पन्त जी ने उनकी विरह वेदना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– श्वह तो वेदना के साम्राज्य की एकछत्र साम्राज्ञी हैं और कोई सुख उन्हें आत्म विस्मृत या आत्म तन्मयहोने को नहीं चाहिए। सुख तो क्षणजीवी है, वेदनां ही चिरस्थायी, चिरव्यापी एवं चिरस्पृहणीय है।श निष्चय ही महादेवी के काव्य में वेदना का सागर लहरा रहा है जो अनेक रत्नों से भरा हुआ है। वे वेदना की साम्राज्ञी कही जा सकती है।

महादेवी की रहस्य भावना

महादेवी का रहस्यवाद–छायावादी कवियों का रहस्यवाद मध्ययुगीन कवियों के रहस्यवाद से भिन्न है। दायावादी कवियों के रहस्यवाद की मुख विषेशतायें हैं– वैदिक रहस्य – भावना वेदान्त की अद्वैत भावना, प्रेम की तीव्रता और निर्गुण सन्त कवियों की रहस्य भावना महादेवी के काव्य में ये सभी प्रवषत्तियाँ सहजरूप से प्राप्त हो जाती है।

1. वैदिक रहस्य भावना – वेद भारतीय संस्कृति के आदि ग्रन्थ हैं जिनका सार उपनिशदों में बताया गया है। उपनिशदों के अनुसार इस सषशिरू रचना का कारण यह है कि जब ब्रह्मा अपने एकाकी जीवन से ऊब गये तो उन्होंने ष्एकोहं बहुस्यामष भावना को लेकर इस सषश्टि की रचना की। महादेवी ने भी इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है–

निर्माण ?

2. जिज्ञासा – भाव

हुआ यों सूनेपन का भान, प्रथम किसके उर में अम्लान।

और किस षिल्पी ने अनजान, विष्व–प्रतिमा कर दी

ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा– भाई की अधिकता भी उपनिशदों का एक प्रमुख प्रतिपाद्य विशय रहा है। ब्रह्म क्या है? ब्रह्म और सषश्टि का रूप क्या है? आदि अनेक प्रष्न उपनिशदोंमें उठाये गये हैं और इनके समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। महादेवी के काव्य में भी जिज्ञासा–भव का आधि क्य है। वे जिज्ञासा तथा कौतूहल से भरकर कह उठती है–

ष्कौन तुम मेरे हृदय में?

कौन मेरी कसक में नित भरता भरता अलक्षित, ष्कौन प्यासे लोचनों में धाकड़ घिर आता अपरिचित स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में? कौन तुम मेरे हृदय में? रू

3. दाम्पत्य – रति का भाव रहस्यवादी भावनाओं की अनुभूतियों को महादेवी जी ने दाम्पत्य–रति का ही रूप दिया है। विष्व में व्याप्त वह अलख, अव्यक्त ब्रह्म कवयित्री का प्रियतम है। कवयित्री की जीवात्मा उसकी प्रेयसी हैं प्रियतम के विरह में उसका जीवन दीपक की तरह जल रहा है और उसके मधुर मिलन की प्रतीक्षा कर रहा है––

ष्सरल–सरल मेरे दीपक जल

तू जन–जल जितना होता क्षय । वह समीप आता छलनामय । मधुर मिलन में मिट जाता तू– उसकी उज्जवल स्मित में घल–घल।

4. वेदान्त को अद्वैत– भावना – वेदान्त ने यह प्रतिपादित किया है कि आत्मा और परमात्मा का परस्पर अंष–अंषी सम्बन्ध है, अर्थात् आत्मा–परमात्मा का ही एक अंष है, पर षरीर का आवरण बीच में आने से वे दोनों भिन्न–भिन्न भासित होते हैं। जब यह आवरण हट जाता है तो अंष – अंषी में मिलकर तदाकार हो जाता है। आत्मा और परमात्मा के इसी प्रकार के सम्बन्ध को अद्वैत– (द्वैतभाव से रहित) सम्बन्ध कहते हैं। महादेवी के काव्य में इस भावना का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यथा–

षचित्रित तु मैं हूँ रेखा क्राप, मधुर राग तु मैं स्वर – संगम।

असीम में सीमा का भ्र, काया छाया में रहस्यमयाष

इन पंक्तियों में कवयित्री ने बताया है कि मेरा और परमात्मा का वही सम्बन्ध है जो रेखा और चित्र का, स्वर और राग का होता है। आत्मा भी परमात्मा की भाँति असीम ही है किन्तु भ्रम के कारण– षरीर का आवरण बीच में आने के कारण उसे सीम मान लिया गया है।

निम्नलिखित पंक्तियों में भी आत्मा और परमात्मा की आंत स्थिति का चित्रण है–

बीन भी हूँ तुम्हारी रागिन भी हूँ।

मैं अनन्त विकास का क्रम भी,

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,

तार भी आघात भी, झंकार की गति भी

पात्र भी मधु भी मधुप में मधुर विस्मषति भी

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

5. प्रेम की तीव्रता – कुछ आलोचकों की यह धारणा है कि महादेवी की वेदना काल्पनिक है, अतः इसमें सहज स्पन्दनों का अभाव हैं। पर यह मंतव्य भी उचित नहीं। महादेवी के प्रेम में और तज्जन्य वेदना में जो प्रगाढ़ता एवं तीव्रता व्यक्त हुई है, उसे अस्कार नहीं किया जा सकता है। दीप–जैसी अकम्पित रूप से जलने वाली साधिका यदि प्रिय पहचानी भी न बन सके तो उनके मानस में जो टीस होगी, वही टीस महादेवी की वेदना में भी निहित है–

मैंन तो चिर जीवन यास बुझा लेती उस छोटे क्षण अपने में।

इन पंक्तियों में विराहिणी की वेदना का अथाह सागर हिलोरे ले रहा है। कितनी विरहाकुलता भरी हुई है उसके षब्दों में। ऐसी विरहाकुलता केवल उसी हृदय से निकल सकती है जिसमें स्वाभाविक विरह–वेदना कूट–कूट कर भरी हुई हो और जिसमें निहित प्रेम की तीव्रता का आवेग षक्ति की सँभाल से बाहर हो गया हो। ये पंक्तियाँ दृश्टिव्य हैं –

ष्उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन ?

उनमें अनन्त कण है इसमें असीम सूनापन ।

6. भावाभिव्यक्ति की प्रतीकात्मक षैली – कबीर आदि रहस्यवादी कवियों की भाँति महादेवी वर्मा ने अपने रहस्यवादी गीतों में भी प्रतीकात्मक षैली में अपनी रहस्यपरक अनुभूतियों का प्रकाषन किया है। उन्होंने रहस्यात्मक अनुभूतियों को प्रकट करने के लिये प्राकृतिक पदार्थों को प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया हैं। उनकी कविता गीले फूल आँसू भरी आँखें हैं, दीपक आत्मा है। सरिता करुणा और प्रेम की वाटिका है, ऊशा राग का प्रतीक है। इन्द्रधनुश मधुर मिलन की स्मृतियाँ हैं। सन्या मिलन के मार्ग की बाधक षत–षत विपत्तियाँ हैं। यामिनी उस नारी की प्रतीक है, जो अपने प्रिय की याद में रो रही है। कवयित्री ने वेदना मेंछटपटाती दुःखी जीवात्मा की दषा के अभिचित्रण के लिये ष्नीर भरी बदलीष को प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। ये पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

मैं नीर भरी दुःख की बदली, स्पन्द में चिर निस्यन्द बसा, क्रन्दन में आहत विष्व हँसा, नयनों में दीपक से जलते पलकों में निर्झरिणी मचली

7. संत कवियों की रहस्य – भावना – सन्त कवियों की भाँति महादेवी के काव्य में विरह का भी मार्मिक चित्रण मिलता है। विरह में नित जलते जलते उनको विरह से इतना प्रेम हो. यगा है कि वे प्रियतम से मिलना नहीं चाहतीं, वरन् चिर– विरहिणी ही बनी रहना चाहिती हैं। विरह–निषा कितनी बीत गई और कितनी षेश है, इस बात को भी वे नहीं जानना चाहती–मैं क्यों पूछें यह विर– निषा कितनी बीती क्या षेश रही।

वे तो अपने प्रियतम से केवल यह वरदान चाहती हैं कि वे उसके विरह में बादल की तरह घुमड़–घुमड़ कर नित्य झरती रहें–

नित सिर्फ झर–झर मिटू प्रिय, घन बनूँ वर दो प्रिया

जब आत्मा किसी अदृष्य अज्ञात एवं विराट सत्ता के प्रति कौतूहल तथा जिज्ञासा के भावों से आवेश्ठित रहती है तो यह रहस्यवाद का प्रथम सोपान कहलाता है। महादेवी की नीहार कृति उनकी इसी अवस्था की परिचायक है। इस सम्बन्ध में कवयित्री ने स्वयं कहा है– नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूत्तियों में वैसी ही कौतूहल– मिश्रित वेदना उठी थी. जैसी बालक के मन में दरोगा सुनहला ऊशा और स्पर्ष से दूर सजल मेघ के प्रथम वर्णन से उत्पन्न हो जाती है। इससे स्पश्ट है कि कवयित्री की आत्मा को ब्रह्म का आभास तो हो चुका , पर वह उसके समूचे रूप को भली प्रकार नहीं जान पाई थी। उसके मन में ब्रह्म की सत्ता का ज्ञान विज्ञासा से भरा हुआ था–

ष्ढुलकते आँसू–सा सुकुमार बिखरते सपनों–सा अज्ञात, चुराकर अरुणा का सिन्दूर मुस्कराया जब मेरा गात, छिपाकर लाली में चुपचाप सुनहला प्याला लाया कौन?

प्रथम सोपान को पार करके जब आत्मा दूसरे सोपान में प्रवेष करती है तो उस समूची प्रकृ ति में परमात्मा की सत्ता परिलक्षित होने लगती हैं। इस सोपान को ष्सर्ववाद की स्थितिष भी कहा जा सकता है क्योंकि इस स्थिति में आकर आत्मा प्रकृति के प्रत्येक कण में परमात्मा की सत्ता की अनुभूति करने लगती है। रवि, षषि, चपला, तारे आदि सभी में उसे परम सत्ता दिखाई देने लगती है। महादेवी की निम्नलिखित पंक्तियों में आत्मा की इसी स्थिति का वर्णन है–

ष्रवि षषि तेरे अबतस लोल, सीमंत जदित तारक अमोला चपला विभ्रमः स्मित इन्द्रधनुश, हिम–कण वन झरते स्वेद–निकर दूसरे सोपान परागला का प्रयत्न करती है। वह उस परम सत्ता से नित नये सम्बन्ध जोड़ने लगती है। देवी ने उसेप्रियतम के रूप में ग्रहण किय ा है जिसके कारण वे स्वयं को ष्अमर सुहाग भरी श्रीमती है। सखि! मैं हूँ अमर सुहाग भरी, प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।

तीन सोपानों को पार करने के पष्चात् आत्मा मित्रतम या परम सत्ता के इतने निकट आ जाती है कि वह स्वयं को उसका मूल्याकंन करने में असर्थ समझाने लगती है। महादेवी अपने प्रिय की अपार सुन्दरता का वर्णन इन षब्दों में करती हैं–

ष्तेरी आभा का कण नको, देता अगणित दीपक दान!

दिन को कनक–रष्मि पहाता, विधु को चाँदी का परिधान।

कवयित्री अपने प्रियतम के सम्पूर्ण रूप से परिचित हो चुकी हैं। उसकी धारणा है कि समूची प्रकृति में बिखरा हुआ अपार सौन्दर्य उसके प्रियतम की आभा का ही प्रतिबिम्ब है। उस असीम सौन्दर्यागार के समक्ष आत्मा का सौन्दर्य अमित छवि की तुलना में एक लघु तारे के समान है–

तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार,

तेरी रेखा–रूप–हीनता है जिसमें साकार

पंचम सोपान में पहुँचकर आत्मा परम सत्ता के प्रतिविरहानुभूति करने लगती है और उसके विरह में निरन्तर व्यथित रहती है। इसी दषा में आने से आत्मा और परमात्मा के समस्त व्यवध ाान समाप्त हो जाते हैं तथा वे दोनों एकाकार हो जाते हैं। महादेवी अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है–

इन ललचाई आँखों पर पहरा जब था ब्रीड़ा का साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का, उस सोने के सपने को देखें कितने युगबीते, आँखों के कोश हुये हैं मोतो बरसाकर रीते।

निश्कर्श उपयुक्त विवेचन से स्पश्ट है कि रहस्थवाद की इन सभी विषेशताओं से युक्त होने

के कारण महादेवी जी का रहस्यवादी काव्य बहुत ऊँची गावभूमि पर स्थित है। आधुनिक हिन्दी काव्य धारा को कोई भी कवि उनकी तुलना में नहीं ठहर सकता है।

यह एक निर्विवाद सतय. हे कि मगत पचास वर्शों में अकेली महादेवी ही मूलतः और पूर्णतः रहस्यवादी कवियित्री हैं। वर्ण्य और षिल्प, भाव और भावना, अनुभूति और विचार सभी रूपों, सभी पक्ष में महादेवी और केवल महादेवी रहस्य– भावना की कवयित्री हैं, रहस्यवाद की आद्योपान्त समर्थक हैं और उनका काव्य विभिनन रहस्यवादी तत्वों से ओत–प्रोत है। परिणामतः हिन्दी की रहस्यवादी काव्य–परम्परा और विषेशतः छायावादी युगीन रहस्यवादी कवियों में महादेवी का नाम और स्थान अत्यन्त महतवपूर्ण, है।

महादेवी के रहस्यवाद का विष्लेशण करते हुये आचार्य रामचंद्र षुक्ल ने लिखा है– ष्छापा कहे जाने वाले कवियों में महादेवी ही रहस्यवाद के भीतर रहीं हैं।ष आचार्य षुक्ल का यह कथन निर्भ्रान्त है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

महादेवी वर्मा रू व्याख्या भाग मैं नीर भरी दुःख की बदली

गीत परिचय – ष्मैं नीर भरी दुःख की बदलीष षीर्शक गीत महादेवी जी का प्रसिद्ध कारुणिक गीत है। यह उनके प्रसिद्ध गीत–संग्रह ष्सान्ध्य गीतष से दिया गया है। महादेवी जीने जिन गीतों के आध पर पर उन्हें वेदना एवं करुणा की कवयित्री, आधुनिक युग की मीरा एवं मार्मिक गायिका कहा जाता है, उनमें इस गीत का प्रमुख स्थान है। इस गीत में महादेवी वर्मा को अपने विशादमय जीवन की प्रतिच्छवि दिखायी पड़ती है। यह महादेवी जी का बहु–प्रतिश्ठित एवं मार्मिक भावों से ओत–प्रोत गीत है। सर्जनषीलता में निरन्तर रत रहने वाले कवि कलाकार की कभी–कभी प्रकृति के उपादानों के विविध क्रिया–कलापों में अपने अन्तरतम के भावों का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। प्रकृति को वह सजीव आचरण करते हुए देखता है। प्रकृति में अनुभूति और सौन्दर्य चेतनों के आभास का अनुभव करना छायावाद की विषेशता है, किन्तु महादेवी जी प्रायः उल्लास के स्थान पर प्रकृति में वेदना की अनुभूतिकरती हैं। प्रस्तुत गीत में वेदना की गहन अनुभूति दिखायी पड़ती है।

(1) मैं नीर भरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,

क्रन्दन में आहत विष्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते !

पलकों में निर्झरणी मचली!

षब्दार्थ– नीर भरी – आँसू रूपी जल से भरी हुई। स्पन्दन = स्पन्दन कम्पना चिर निस्पन्द – जड़ता। क्रन्दन = रूदना निर्झरिणी = नदी ।

सन्दर्भ–प्रस्तुत पंक्तियाँ आधुनिक काल की मीरा कही जाने वाली छायावादी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा रचित प्रसिद्ध गीत ष्नीर भरी दुःख की बदलीष की हैं जो मूलतः ष्सांध्यगीतष संकलन में संकलित हैं। इस गीत को हमारी पाठ्य–पुस्तक ष्आधुनिक हिन्दी काव्यष में भी संकलित किया गया है। प्रसंग इस काव्यावतरण में महादेवी जी ने अपनी तुलना जल से भरी हुई बदली से की है जो बरसने के लिए व्याकुल है।

व्याख्या – महादेवी वर्मा जी कहती हैं कि अपनी तुलना जल से भरी हुई बदली से कर सकती हूँ जो बरसने के लिए व्याकुल है। मे हृदय में भी पीड़ा भरी हुई है और आँसू भरे हुए हैं। मेरे प्राण भी विरह से मुक्त होकर निरन्तर स्पन्दित रहते हैं, एक क्षण के लिए भी मुझे षान्ति नहीं मिलती। लगता है दुःख और वेदना का यह कम्पन मेरे जीवन में स्थायी रूप से बस गया है। जब बादल गजरता है तो संसार वर्शा को आषा में प्रसन्न हो जाता है, इसी प्रकार जब मेरे हृदय में वेदना एवं व्यथा गरजती है तो संसार हँसता है अर्थात्– मेरे रुदन से संसार को प्रसन्नता मिलती है। मेरे नेत्र भी विरह व्यथित होकर दीपक के समान जलते रहते हैं। और पलकों में आँसुओं की नदी मचलती जान पड़ती है। भाव यह है कि विरह व्यथित आँखें निरन्तर अनुपात करने को मचलती रहती हैं। मेरी पीड़ा का कहीं ओर–छोर नहीं हैं।

विषेश– 1. प्रस्तुत गीत में महादेवी के वेद का सागर हिलोरें ले रहा है। यहाँ वेदना अपने चरमोत्कर्श पर दिखायी पड़ती है।

2. महादेवी वर्मा की विरह वेदना में लौकिकता के साथ–साथ कहीं–कहीं अलौकिकता का

भी समावेष है। ऐसे सभी स्थलों पर रहस्यवादी प्रवषत्ति मानी जायेगी।

3. रूपक, उपमा एवं मानवीकरण अलंकार है ।

4. वियोग श्रषंगार का पूर्ण परिपाक हुआ है।

5. भाशा में लाक्षणिकता एंव प्रतीकात्मकता विद्यमान हैं।

6. षुद्ध परिलक्षित खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है।

ंत नत नत संगीत प्रारा,

ष्वासों से स्वप्न पराग झरा,

नभ के नवरंग बुनते दुकूल

छाया में मलय बयार पनी !

षब्दार्थ– संगीत भरा – माधुर्वे से युक्त (लक्षणा से)। नभ = आकाष । नव = नया। दुकूल दुपट्टा (वस्त्र) द्य मलय बयार चन्दनी हवा

प्रंसग – महादेवी जी वेदना एवं पीढ़ी की कवियित्री मानी गई हैं। इन पक्तियों में वे अपने पीड़ा भरे व्यथित जीवन की तुलना जल से भरी उस बदली से कर रही हैं, जो बरसने को व्याकुल है।

व्याख्या– मेरा प्रत्येक कदम संगीत माधुर्य से भरा हुआ है। भाव यह है कि मेरा जीवन प्रिय के संगीत से युक्त होकर मधुरता से भर गया है। मेरी साँसों से स्वप्निल पराग झरता रहता है। अर्थात् मेरी आँखों में उसी प्रियतम की सुगन्ध बस गई है। आकाष में दिखाई देने वाली रंग–बिरंगी आभा मेरे ही दुपट्टे की रंगीत आभा है तथा मैं चन्दनी गन्ध में पली–बढ़ी हूँ। अर्थात् बदली को सुगन्धित वायु उड़ाकर बहाकर अपने साथ ले जाती है उसी प्रकार प्रियतम की मधुर स्मषति मलयगिरि से आने वाली सुगन्धि त चंदनी हवा के सदृष मेरे तन–मन को महका देती है।

विषेश– 1. महादेवी जी ने अपनी विरह व्यथित जीवन की तुलना बदली से की है।

2 भाशा में प्रतीकात्मक एवं लाक्षणिकता विद्यमान है ।

3. वियोग श्रषंगारो जल–कणउल्लास!

4. अनुप्रास, पुनरुक्तिप्राकष अलंकार है ।

मैं क्षितिज भष्कुटि पर घिर धूमिल, चिन्ता का भार बनी अविरल,

रज कण पर जल–कण हो बरसी, नवजीवन अंकुर बन निकली !

पथ कोन मलिन करता आनाय

पदचित्र न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की जग में

सुख की सिहरन हो अन्त खिली ! विस्तष्त नभ का कोई कोना, मेरा क कभी अपना होना, परिचय इतना इतिहास यही 1. उमड़ी कल थी मिट आज चली।

षब्दार्थ– रज–कण – बालू के कण, यहाँ पर इसका आषय षुश्क और नीरस जीवन से है। यहाँ इसका आषय जीवन की सरसता और आर्द्रता से है। नवजीवन = जीवन का नवीन

सन्दर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ ष्मैं नीर भीर दुःख की बदलीष नामक गीत से अवतरित हुई है। इनका संकलन पाठ्य–पुस्तक ष्आधुनिक हिन्दी काव्यष के अन्तर्गत हुआ है।

प्रसंग प्रस्तुत गीत में कवियित्री ने बदलों के मध्यम से अपने दुःखमय जीवन का सजीव चित्रकन किया है।

व्याख्या – जिस प्रकार दाते –ही–देखते सुदूर क्षितिज पर बादल उठते हैं तथा क्षणभर में पानी से भरकर धरती के अत्यन्त समीप झुक जाते हैं, उसी प्रकार भौहों पर चिन्ता की रेखाएँ प्रकट होते ही वह दुःख के बोझ तले दब जाती हैं। बादल से झरते जलकणों से भींगर षुश्क और नीरस बालू के कण भी सरस और आर्द्र हो जते हैं, ठीक उसी प्रकार आँसुओं से भागकर जीवन की षुश्कता सरसता में परिवर्तित हो जाती है और हृदय में नवीन उल्लास और जीने की नवीन आकांक्षा जग उठती है। जिस प्रकार धरती के अन्तस्तल में सोये पढ़े बीच भावस की फुहारों को पाकर अंकुरित हो उठते हैं, उसी प्रकार मन में छिपी अनेक मुरादें आँसुओं से भीगकर पुनः जाग ं हो जाती है।

उनके आने–जाने का क्रम निरन्तर बना हुआ है, किन्तु दूसरों को उनका कभी पता नहीं चलता। उनके आगे से न मार्ग में कोई मलिनता उत्पन्न होती है और न जाते समय मार्ग पर उनके पदचिह्न कहीं दिखायी पड़ते हैं। संसार में उनके आगमन की स्मषति षेश रह जाती है, जो हृदय में क्षणिक आनन्द उत्पन्न करती है।

वह अनन्त आकाष में निरन्तर भ्रमण करती है, किन्तु उसके छोटे अंष पर भी उसका अधि ा कार नहीं है। उसका जीवन क्षणिक औरनष्वर है। जिस प्रकार बदल में उमड़ने और मिटने के बीचे कोई विषेश अन्तर नहीं होता, ठीक उसी प्रकार उसके मन्म लेने और मष्त्यु को प्राप्त होने के मध्य कोई दीर्घ अन्तराल नहीं है। बार–बार जन्म लेना और मरना ही उसके जीवन का चिर सत्य है।

विषेश – 1. जिन गीतों के आधार पर महादेवी को वेदना और करुणा की कवयित्री कहा जाता है, उनमे से एक प्रमुख गीत यह भी है।

2. जीवन को नीरभरी बदली कहने के कारण सम्पूर्ण गीत में सांगरूपक अलंकार हैं लाक्षणिक भाशा और वक्रतापूर्ण षैली के कारण जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति में अधिक सौन्दर्य आ गया है, वही अर्थ में अस्पश्टता भी झलकती हैं। ऐसी ही अभिव्यक्तियों को देखकर छायावादी गीतों पर अस्पश्टता का आरोप लगाया गया है।

3. महादेवी जी की ही भाँति त्रिलोचन भी दुःख और वेदना को छोड़ना नहीं चाहते–

दर्द जो आया तो दिल में उसे जगह दे दी। आके जो बैठ गया मुझसे उठाया न गया।।

(गुलाब और बुलबुल)

4. मानवीकरण, उपमा, रूपक, अनुप्रास अलंकार है।

5. प्रतीकात्मक षैली एवं लाक्षणिक भाशा का प्रयोग है।

6. षुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है।

7. वियोग श्रषंगार तथा माधुर्य एवं प्रसाद गुण है।

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ

गीत परिचय – यह गीत महादेवी जी के प्रसिद्ध गीत–संग्रह ष्नीरजाष् से उद्धृत है। डॉ. रमाषंकर त्रिपाठी प्रस्तुत गीत के आलोक में महादेवी जी के गीतों को भाव–भूमि की ओर इंगित करते हुए कहते हैं कि श्महादेवी जी मर्म पीड़ित रहस्यवादी कवयित्री हैं। उनकी कविता में उनका यही रहस्यवादी रूप प्रकाषमान है। इसकी आन्तरिक भाव–भूमि काफी कुछ पूर्व उद्धत गीत– तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्याष् से मिलती–जुलती है। षीता के कला–सौशठव और भावों के मार्दव का मनोहारी मिश्रण महादेवी जी के संगीत विधान में मिलता है। विनियों के लयात्मक संगठन से उद्भूत संगीत महादेवी जी के गीतों की निजी विषेशता है। ध्वनियों का ऐसा संगठन अन्यत्र दुर्लभ है।

(1) नींद मेरी अचल निस्पन्द कण–कण में, प्रथम जागषति थी जगत् के प्रथम स्पन्दन में, प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में षाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में, गुल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

षब्दार्थ– बीन = एक बाघ (वीणा)। रागिनी • वाद्य यन्त्रों से निकलने वाली स्वर लहरी । अचल जड़ा निस्पंद = स्पंदनषील द्य जागृति– जागरणा स्पन्दन किनारों से रहित । प्रवाहिनी – नदी (धारा)′ धड़कन । कूल = किनारा कूल हीन सन्दर्भ प्रस्तुत पंक्तियाँ वेदना की कवयित्री महादेवी वर्मा द्वारा रचित गीत ष्बीन भी हूँ मैंतुम्हारी रागिनी भी हूँष् से ली गई हैं। मूल रूप में यह कविता उनके काव्य–संकलन ष्नीरजाष्में संकलित है। प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री नेहस त प्रियतम के पति अपना आत्मनिवेदन. व्यक्त करते हुए उससे अपने सम्बन्ध को व्यक्त किया है।

व्याख्या– हे प्रियतम मैं तुम्हारी वीणा भी हूँ और उसमें से निकलने वाली रागिनी भी मैं ही हूँ। भाव यह है कि जिस प्रकार वीणा बजाने वाला उसमें से मधुर रागिनी के स्वर निकालने में समर्थ होता है। उसी प्रकार मैं अपने प्रियतम की वीणा भी हूँ और मुझमें से फूअने वाली रागिनी भी प्रियतम को देन है। जो माधुर्य मुझमें दिखाई दे रहा है वह अज्ञात प्रियतम के कारण ही है।

सषश्टि के प्रत्येक कण–कण में मेरी ही नींद व्याप्त थी पर तुमने ही मुझे पहली बार जगाकर जगत को धड़कन से मेरा परिचय कराया। भाई यह है कि उस अज्ञात प्रियतम ने मुळे नव चेतना एवं स्फूर्ति प्रदान की मेरी जड़ता को भंग कर मुझे मेरे अस्तित्व का बोधा कराया और मैं जागकर संसार को पहचान सकी। प्रलय में जब सब कुछ नश्ट हो जाता है तब मैं तुममें समाज जाती हूँ और सषश्टि में तुम मुप्रे नया जीवन प्रदान कर मेरे पदचिह्न पष्थ्वी पर बनाने में सहायक होते हो। भले ही मेरा जीवन तुमसे अलग होने के कारण अभिषप्त हो, किन्तु जीवन का यह बन्धन मुझे वरदान सदृष प्रतीत होता है क्योंकि मैं इसमें तुम्हारी यादों में खोई रहती हूँ और निरन्तर तुम्हारा ध्यान करती रहती हूँ।

सच तो यह है कि मैं ही इस जीवन रूपी नदी का किराना हूँ और मैं ही निरन्तर प्रवाहित होने वाली नदी की धारा हूँ। तटबन्धों के अभाव में नदी का अस्तित्व नहीं है और धारा के अभाव में तटबन्धसों का अस्तित्व नहीं है। इसलिये धारा और धारा के तटबन्धों के रूप में मुझे अपना हो अस्तित्व बोध होता है।

विषेश 1. महादेवी जी रहस्यवादी कवयित्री हैं। उनके गीतों में अज्ञात प्रियतम के साथ भावात्मक सम्बन्ध जोड़ते हुए इस प्रवषत्ति का परिचय दिया गया है।

2. अनुप्रास एवं विरोधाभास अलंकारा

3. अद्वैत स्थिति को बोधा

परिश्कृत परिमार्जित खड़ी बोली का प्रयोगा

नयन में जिसके जलद, वह तषशित चातक हूँ,

षलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ, फूल को उस में छिपाये विकल बुलबुल एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हैं, दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

षब्दार्थ– जलद – बादला तृशित – प्यासा चातक = पपीहा। षलभ – पंतगा। निठुर निश्ठुरा उस = हृदय द्य बुलबुल – एक चिड़िया । छाँह – छाया। तन षरीर सुहागिन – सौभाग्यवती। प्रसंग–कवयित्री महादेवी वर्मा ने इस छन्द में उस अज्ञात प्रियतम से अपना नित्य सम्बन्ध जोड़ा है तथा प्रेम के प्रचलित प्रतीकों से अपनी भावना को व्यक्त किया है।

व्याख्या – महादेवी जी उस अज्ञात प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे प्रिय मेरी सिति उस प्यासे चातक के समान है जिसकी और निरन्तर बादलों की ओर टकटकी लगाये रहती हैं– इन आषा में कि कब पानी बरसे और मेरी प्यास बुझे। मैं भी तुम्हारे प्रेम की प्यासी हूँ और निरन्तर तुम्हारी प्रतीक्षा मुझे चाक की भाँति रहती है।

मैं स्वयं को उस निश्ठुर दीपक की भाँति समझती हूँ जिसके प्राण अपने चारों और मँडराने वाले पतंगों में लगे रहते हैं। निरन्तर जलता हुआ दीपक प्रेमी पतंगों की बाट जोहता रहता है। ठीक उसी प्रकार मैं भी आपकी प्रतीक्षा करती रहती हूँ। मेरा और तुम्हारा प्रेम दीपक–पतंगे जैसा है।

जैसे बुलबुला अपने हृदय में व्याकुलता लिये हुए खिले फूलों की प्रतीक्षा करता है, वही व्याकुलता समान है। षरीर से उसकी छाया अलग नहीं की जा सकती किन्तु फिर भी वे अलग–अलग ही रहती हैं। मैं अज्ञात प्रियतम से अद्वैत का अनुभव करते हुए भी उससे अलगाव का अनुीव कर रही हूँ। भले ही तुमसे दूर हूँ फिर भी अखण्ड सौभाग्यवती हु का अनुभव मुझे होता रहता हैं। विषेश– 1. प्रेम के लौकिक प्रतीकों के माध्यम से महादेवी जी ने उस अज्ञात प्रियतम से अपने सम्बन्ध को व्यक्त किया है।2. उपमा अलंकार।

3. प्रिय के प्रति मिलन की आतुरता, विहर की स्थिति एवं अद्वैत भाव व्यक्त किया गया है।

4. रहस्यवादी भावना इस गीत में है।

5. छायावादी भाशा—षैली को देखा जा सकता है।

6. भाशा में लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता का समावेष है।

7. परिश्कृत, परिमार्जित खड़ी बोली का प्रयोग

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिम—ज के,

षून्य हूँ जिसको बिछे है प बड़े पल के, पुलक हूँ वह जो पंला है कठिन प्रस्तर में, हूँ वही प्रतिविम्ब जो आधार के उस में, नील घन भी हूँ सुनहली दमिनी भी हूँ।

षब्दार्थ ढुलकते = गिर रहे है। बिन्दु बूँदें। हिमजल बर्फीला पानी। पाँवड़े पैर रखने के लिए विछावना पुलक रोमांच । प्रस्तर — पत्थरा घन बादल। दामिनी — बिजली ।

प्रसंग — प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री ने उस आज्ञत प्रियतम् के प्रति अपना षाष्वत सम्बन्ध व्यक्त करते हुए अपनी विरोधाभासी प्रवृत्ति का उललेख किया है।

व्याख्या — महादेवी जी कहती हैं कि मैं एक ऐसी आग है जिससे बर्फ जैसे षितल जल बिन्दु टपकते रहते हैं। भाव यह है कि हृदय में प्रिय विरह की आग जलती रहती है और आँखों से आँसू टपकते रहते हैं। मैं स्वयं को ऐसा षून्य मानती हूँ जिसके सवगतार्थ समूह ने पलक पांवड़े बिछाये हैं। मेरी यह स्थिति उस प्रियतम के प्रेम के कारण ही तो सम्भव हो सकती है। मैं कठोर पत्थर के हृदय में उत्पन्न होने वाली रोमांचभरी सिहरन हूँ। भाव यह है कि तुम्हारे स्वरूप की दीया होने से तुम्हारे ही समान सर्वव्यापी हूँ तथा जड़—चेतन में व्याप्त मैं तुम्हारा ही प्रतिरूप हूँ, तुमसे भिन्न नहीं हूँ। आकाष भी मैं ही हूँ और उसमें चमकने वाली बिजलीभी मैं ही हूँ। इस प्रकार मेरा अस्तित्व प्रिय से अलग नहीं है। मैं प्रिय में समाई हुई हूँ और प्रिय मुझमें व्याप्त है।

विषेश — 1. महादेवी जी ने इसमें प्रिय के साथ अपनी अद्वैत स्थिति को बोध कराया है।

2. सम्पूर्ण पद्य में विरोधाभास का चमत्कार है।

3. छायावादी रहस्य भावना इस ध में देखी जा सकती है।

4. षुद्ध परिमार्जित खड़ी बोली का प्रयोग है।

निर्गुण परमात्मा को भावना का विशय बनाने पर रहस्यवाद की सषश्टि होती है।

नाष भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,

तार भी आघात भी झंकार की गति भी,

पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मषति भी,

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदीन भी हूँ!

षब्दार्थ – अनन्त विकास रू निरन्तर होने वाली विकासा आसक्ति = लगाव । तम = अन्धकार (सत्रि) । तार – वीणा का तार आघात = तार पर की जाने वाली चोटा झंकार = तार की झंकृति । पात्र – मध पान (षराब का प्याला) । मधु – षराबा मधुर विस्मृति = नषा (मदहोषी)। अधर – होठा स्मित की चाँदनी मुस्कान रूपी चाँदनी ।

प्रसंग – कवयित्री की मान्यता है कि नाष और निर्माण में, त्याग और आसक्ति में, तार और झंकार में, मध पात्र एवं मदहोषी में तथा अधरों और उसकी हँसी में मैं ही व्याप्त हूँ। परमात्मा के प्रति अपने प्रणय निवेदन को इन पंक्तियों में कवयित्री ने रहस्यवादी पश्टि से व्यक्त किया है।

व्याख्या – महोदवी जी कहती हैं कि हे प्रिय अब मैं यह समझ सकी हूँ कि नाष और निर्माण अलग–अलग नहीं है। नाष में भी मैं वयाप्त हूँ और अनन्त विकास में भी मैं ही व्याप्त हैं। मैं उस परमात्मा से एकाकार होकर उसी का अंष बन गई हूँ इसलिए जीवन की हर गतिविधि में अपने को ही देख रहीं हूँ। त्याग रूपी दिन प्रकाष की उज्जवलता और आसक्ति रूपी अन्धकार की कालिमा में मुझे ही व्यापत ष्समझो। अत् त्याग और आसक्ति दोनों ही उस परमात्मा के स्वयप हैं। मैं ही वीणा, उसके तारों पर किया गया आघात और उस आघात से उत्पन्न होन वाली झंकार हूँ। मैं ही मधुपात्र हूँ, मैं ही उसमें भरी मदिरा – हूँ और मैं ही उस मदिरा की मदहोषी हूँ। मैं अधर भी हूँ और अधरों पर व्याप्त हरने वाली चाँदनी जैसी

हँसी भी हूँ।

2. कवयित्री ने इसमें रहस्यवादी भावना व्यक्त करते हुए आत्मा को सर्वव्यापी बताया है। वीणा, वीणा के तारों पर आघात, उससे उत्पन्न होने वाली झंकृति तीनों स्थूल रूप में अलग होते हुए भी सूक्ष्म रूप में उस परमात्मा के ही अलग–अलग रूप हैं। संसार में भी यही स्थिति है। जो अलग–अलग दिखाई देते हैं वे उस परमात्मा के ही विभिनन रूपाकार हैं।

3. स्मित की चाँदन में रूपक अलंकार है।

4. समग्र छन्द में रहस्यवादी भावना है।

5. छायावादी भाशा – षिल्प का प्रयोग है।

6. आत्मा उसी परमात्मा का अंष है जो सर्वव्यापी है। उसके अद्वैतवाद की अभिव्यक्ति इस छन्द में की गई है।

7. श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय महादेवी जी के गीतो के बारे में कहते हैं कि श्भावना ऐक्य, तीव्र–अनुभूति, भाव गाम्भीर्य, संगीतात्मक प्रवाह, मनोज्ञता और मनोरमता आदि सभी गुण महादेवी जी के गीतों में घनीभूत हो उठे हैं।

समग्रतः श्संसार में षक्ति और सौन्दर्य का विधान उसी की परमं चेतन षक्ति और आभा का प्रतिदान है। उसकी महिमा कण–कण में व्याप्त है। देवता अपना अमर लोक उसके चरणों पर निछावर कर देते हैं, उसके दिव्य चरणों पर अलिख– सुशमा के साज लोट रहे हैं करुणा

के कोमल कपोलों पर मंदिर – लालिमा उसी की देन है। उसका सहास मुख ही अरूणोदय है। विष्व का सारा सौन्दर्य उसी से प्रतिभासित है। इस परम तथा चिर सुन्दर के प्रति प्रणय निवेदन महादेवी जी की काव्य सृश्टि का केन्द्र बिन्दु है।

(1) टूट गया वह दर्पण निर्मम अपने दो आकार बनाने, दोनों का अभिसार दिखाने ।
भूलों का संसार बसाने, जो झिलमिलझिलमिल सा तुमने।

हँस–हँस दे डाला था निरूपम ! टूट या वह दर्पण निर्ममा

सन्दर्भ – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्यपुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित ष्टूट गया वह दर्पण निर्मम षीर्शक गीत से अवतरित किया गया है। इसकी रचयिता कवयित्री महादेवी जी हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण में कवयित्री ने सांसारिक माया–मोह को दर्पण के रूप में अभिचित्रित करते हुये उसके टूटने का वर्णन किया है।

व्याख्या – कवयित्री जी परमात्मा रूपी पिव्रतम से कहती हैं कि हे प्रियतम! आपने जो मुझे सांसारिक माया–मोहरूपी अनुपम चमचमाता हुआ कठोर दर्पण (काँच या षीषा) हँसते हुये प्रदान किया था, वह आज साधना के मार्ग पर चलते–चलते टूट गया है अर्थात् अब मुझे जीवन की वास्तविकता का बोध हो गया है और सांसारिक माया–मोह के प्रति आसक्ति का भाव स्वयं ही समाप्त हो गया है।

कवयित्री के अनुसार सांसारिक माया मोह एक चमचमाता हुआ अनुपम दर्पण है, जिसमें मनुश्य अपने भौतिक और आध्यात्मिक रूपों एवं आकारों की छावायें देखने का प्रयास करता है और वह उनमें समन्वय स्थापित करके एक–दूसरे से मेल कराना चाहता है। षायद इस संसार की रचना के पीछे ईष्वर का भी यही उद्देष्य है, क्योंकि मनुश्य का भौतिक जीवन ही आध्यात्मिक जीवन की सफलता का एक सोपान माया गया है। संयमित लौकिक जीवन ही मनुश्य को आध्यात्मिकता के मार्ग पर अगसर करता है, लेकिन संयम के षव में मनुश्य अनेक भूलें करता है, जिससे वह पथभ्रश्ट होकर जीवन के वरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता है और पुनः जन्म–मृत्यु के बन्धन में बँध जाता है। इसीलिये कवयित्री जी कहती हैं कि हे प्रियतमा जो तुमने झिलमिलाता हुआ अनुपम दर्पण अपने दो आकार बनाने, उन दोनों का मिलन दिखाने और भूलों का संसार बसाने के लिए हँसते हुये दिया था। आज वह टूट गया है। अर्थात् सांसारिक माया–मोह के प्रति आसक्ति का भाव समाप्त हो गया है और मैं तुम्हारे विरह में वेदना को सहन करती हुयी साधना के मार्ग पर अग्रसर हूँ।

विषेश– 1. संसार की रचना के उद्देष्य एवं महत्व की प्रतिपादित किया गया है।

2. कवयित्री ने पअनी आध्यात्मिक–साधना का स्थिति का निरूपण किया है।

3. भाशा–षैली सरल, सहज एवं भावानुगामिनी है।

धीरे–धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि, कर में हो स्मषतियों की अंजलि ।
मलयानिल का चल दुकूलअलि!

घिर छाया–सी ष्याम विष्व को ।

आ अभिसार बनी। सकुचाती आ वसन्त रजनी !

सन्दर्भ – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्यपुस्तक अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित धीरे–धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनीष षीर्शक गीत से अरित किया गया है। इसकी रचयिताकवयित्री महोदेवी वर्मा जी हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण में कवयित्री ने बसन्त ति की रात्रि की कल्पना एक सुन्दर रमणी (सुन्दरी) के रूप में करते हुये उसका बड़ा सुन्दर और अलंकृत चित्रण किया है।

व्याख्या – कवयित्री महादेवी वर्मा जी बसन्त रजनी के रूप में एक सुन्दर नायिका की कल्पना करती हुयी कहती हैं कि हे बसन्त रजनी ! रात्रि के समय संसार में रहने वाले लोग रोमांचित होते हुये स्वप्नों में खोये रहते हैं उनके स्वप्नों की रोमावली से तू युक्त हो जा और अपने हाथों में सुखद यादो को सजा ले ! अर्थात् संसार के लोगों के स्वप्नों में समाकर उन्हें अपनी सुन्दर सुन्दर यादोंमें तबा तो. जिससे वे गहरी नींद में सो जाये।

कहता है सखी! मलयाचल की ओर से आने वाली सुगन्धित वायु का तू चंचल रेषमी वस्त्र बना ले। इस प्रकार से पूर्ण श्रषंगार करके तू नवविवाहिता बधू के समान सकुचाती हुयी प्रिय से मिलने के लिये काले अंधेरे की छाया के समान घिरती हुयी आ जा।

इस प्रकार कवयित्री ने यहाँ बसन्त की रात्रि का चित्रण प्रिय–मिलन के लिये जाने वाली अभिसारिका के रूप में किया है।

विषेश– 1. नवविवाहिता के रूप में बसन्तः जनी का चित्रण अलंकृत, सहज और प्रीवी है।

भाशा में माधुर्य है ती कोमलान्त पदावली का प्रयोग हुआ हैं।

3. उपमा, रूपक, मानवीकरण अलंकारों का सुन्दर निरूपण हुआ है।

4. श्रषंगार एवं प्रेम का हृदयस्पर्षी चित्रण हुआ है।

इकाई – 14 माखनलाल चतुर्वेदी समीक्षात्मक खण्ड

राश्ट्रीय कवियों में श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी का प्रमुख स्थान है। भारत जब पराधीनता को जंजीरों में जकड़ा हुआ था, तब कवि अपनी काव्य–साधना के स्वरों से सुप्त देषवासियों को जगा रहे थे। माखनलाल जी ने जब काव्य–क्षेत्र में पदार्पण किया तब बंग–भंग के परिणामस्वरूप देष में अंजों के खिलाफ क्रान्ति की उग्र भावना फैल रही थी। कवि ने अंग्रेजों के अत्याचारों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उन्होंने सुप्त जन–जीवन से उत्साव

की लहर उत्पन्न की और देषवासियों को पराधीनता की जंजीरें तोड़ने के लिये उत्साहित किया। देष को स्वाधीन कराने के लिये जिसने भी संघर्श किया, उसे प्रति माखनलाल चतुर्वेदी जी की पूर्ण सहानुभूति थी। उन्होंने खुलकर अंग्रेजी सरकार का विरोध किया है, क्योंकि वे जानते थे कि जब तक अंग्रेजों का कुषासन देष में व्याप्त है, तब तक हम प्रगति नहीं कर सकते हैं। उनका सम्पूर्ण काव्य जनता की आह, कराह और वेबसी से भरा हुआ है। राश्ट्रपिता को सम्बोध न करते हुये वे कहते हैं–

मार डालना किन्तु क्षेत्र में, जरा खड़ा रह लेने दो।अपनी बीता श्री चरणों में, कुछ तो

कह लेने दो ।

चतुर्वेदी जी की राश्ट्रीय – भावना विभिन्न रूपों में दृश्टिगोचर होती है, इसकी विवेचना निम्नलिखित षीर्श–बिन्दुओं के अन्तर्गत दृश्टव्य है–

(1) आत्मोत्सर्ग की भावना चतुर्वेदी जी हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारी कवि के रूप में विख्यात हैं। उनमें हमें निःष्वार्थ आत्मोत्सर्ग औ––त्याग की भावना दृश्टिगोचर होती हैं ष्पुश्प की अभिलाशाष में वे पुश्प के माध्यम से मानी अपने मन की बात व्यक्त करते हैं। पुश्प कोई उच्च स्थान न चाहकर, उस मार्ग पर पड़े रहने की कामना करता है, जिस मार्ग से मातृभूति पर षीष चढ़ाने के लिये अनेक वीर जान हथेली पर रखकर निकलेंगे। देखिये कवि के षब्दों में–

ष्चाह, नहीं सुन– बाला के, गहनों में गूथा जाऊँ।

चाह नहीं प्रेमी माला में, बिंध प्यारी को ललचाऊँ ।

(2) बलिदान की भावना को की यह मान्यता रही है कि बलिदान की भावना से ही कोई राश्ट्र सबल और षक्ति सम्पन्न होता है। निर्बलों की चीख और पुकार तो व्यर्थ ही चली जाती है, लेकिन बलिदान की षक्ति के सामने सभी अंत हो जाते हैं। चतुर्वेदी जी अपनी कविता ष्बलि–पंथी से ष में बलिदान की पीड़ा को फूल की तरह सहन करने को प्रेरणा देते हुये कहते हैं कि–

ष्मतव्यर्थ पुकारे षूल–षु, कह फूल–फूल, सह फूल–फूल,

हरि को हीतल में बन्द ये, केहरि के कह– नख हुल हुलाष

(3) षक्ति की उपासना – चतुदी जी क्रान्ति और षक्ति की उपासना करने वाले सच्चे साहित्यकार हैं। वे अहिंसा के प्रति आस्थावान हैं किन्तु उनकी मान्यता है कि षक्तिषाली की अहिंसा अर्गाचीन हिन्दी काव्य

मान्यता देता है। अतः वे षक्ति में विष्वास रखने वाले साहित्यकार हैं। सैनिक की पत्नी सैनिक से कहती है–

किन्तु आज तो इस मुरली को, या कर लो पानी वाली तलवार,

मेरी का डंका कर ली।दार! मार लो भर लो ।।

(4) विष्व – मंगल की कामना – कवि की राश्ट्रीय चेतना विद्रोह की हुंकार से परिपूर्ण है। उनकी क्रान्ति – भावना संकुचित न होकर उदात्त है। वे मानव मात्र के हित साधक हैं। इसीलिये वे विष्व – मंगल की कामना करते हुये कहते हैं–तू भुजा उठा दे है जपी! जग चक्कर खाने लगे। दुःखियों के हिय षीतल बने, जगतीत लहुलासने लगे।

(5) देष की सुव्यवथा के गति चिन्ता – कविवर चतुर्वेदी जी का राश्ट्रीय–भाव देष को स्वतंत्र कराने के लिये केवल लड़ने–मरने में ही व्यक्त नहीं हो रहा है बल्कि देष को सुव्यवस्था के प्रति भी चिन्ति हैं। स्वतंत्रता मिलने के बाद देष में जो कुछ हुआ, उसने उनके मन को झकझोर डाला। यदि वे कल्याणकारी योजनाओं कीप्रषंसा करते हैं तो स्वार्थपरता, पदलोलुपता, घूसखोरी, चोर–बाजारी आदि की खुले रूप में बुराई करते हैं–

ष्बापू को कर दूर–दूर, हर बरस बरस दिन आता है।

उनकी चित्त– भस्म को ऐते तू अपना श्रृंगार कर रहा।

जिसने देष जगाया उनको भूल उन्हीं पर बार कर रहा ।।

(6) मजदूरों एंव गरीबों की दषा का चित्र – चतुर्वेदी जी समाज में मजदूरों एवं गरीबों– की दीन–हीन दषा को देखकर अत्यन्त बेचौन हो जाते हैं। उन्होंने अपनी ष्उलाहनाष कविता में सत्ता के उच्च पदों पर आसीन राजनेताओं और षसकों को उलाहना देते हुये कहा है कि दन मजदूरों, गरीबों एवं कृशिकों के त्याग एवं बलिदान के कारण ही समाज का यह भौतिक विकास सम्भव हो सका है लेकिन अब उन्हीं के उपेक्षा की जा रही है। कवि को इस बात का क्षोभ है कि आज के राजनेता जन–कल्याण के कार्य ने करके झूठी प्रषंसा में विष्वास करने लगे हैं। काव उनसे मीरा बनकर ममता के गरीबों के घाव सहलाने, उनकी पीडन को दूर करने का आग्रह करता है–

ष्उठो कारा बनाओ इस गरीबी की रहो मत दूर अपनों के निकट आओ।

बड़े गहरे लगे हैं घाव सदियों के मसीहा इनको ममता भर के सहलाओ

(7) प्रकृति के माध्यम से राश्ट्रीय चेतना का षंखनाद – षहिम किरीटिनीष में कवि ने भारत माता की मुक्ति के लिये अखण्ड राश्ट्रीय चेतना का षंखनाद किया है। अपनी बात कहने के लिये इस कविता में वि ने प्रकृति को माध्यम बनाया है। ष्कैदी और कोकिलाष का राश्ट्रीय कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान है। सारा देष जब कारागार बना हुआ है, सब कैदी हैं, ऐसी दषा में उन्मुक्त विचरण करने वाली कोकिला ही आषा का संचार कर सकती है। कवि कोकिला को आषा की एक किरण निरूपित करता हुआ आत्म–कहानी कहता है–

ष्तुझे मिली हरियाली डाल, मुझे नसीब कोठरी काली। तेरा नभ भर में संचार, मेरा दस फुट का संसार । तेरे गीतों में उठती आह, रोना भी है मुझे गुनाह

उपर्युक्त विवेचन से स्पश्ट है कि कविवर माखनलाल चतुर्वेदी जी का सम्पूर्ण काव्य राश्ट्रीय–भावना से ओत–प्रोत है। वे अपनी कविता के माध्यम से एक ओर गुलामी की काली जंजीरों को तोड़ने के लिये क्रान्तिकारी उद्घोश करते हैं तो दूसरी ओर स्वतंत्रता की रक्षा एंव नव–निर्माण की प्रेरणा भी देते हैं। उनकी कविता में देष–प्रेम और राश्ट्रीय जागरण का स्वर ध्वनित हो रहा है। यही कारण है कि उन्हें एक भारतीय आत्माष की उपाधि से अलंकृ त किया गया है।

माखनलाल चतुर्वेदी काव्य सौश्ठव और उनका स्थान निर्धारण

ष्एक भारतीय आत्माष माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में विविध प्रवृत्तियाँ दृश्टिगोचर होती हैं। सन् 1920 तक और उसके बाद की रचनाओं के आधार पर इन प्रवृत्तियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। आरम्भिक रचनाओं में भक्ति और आध्यात्म का स्वर मुखरित है, और रूझान छायावादी हैं. सन् 1920 के बाद की रचनाओं में राश्ट्रीय चेतना के साथ विराट की भावना का भी समन्वय मिलता हा उनके काव्य में छायावादी रहस्य भावना भी परिलक्षित होती है। उनकी कविताओं में प्रकृति–चित्रण का भी विषेश महत्व है। उन्होंने राजनीतिक घटनाओं और राश्ट्रीय भावनाओं को सामने रखकर ऊर्जावान् काव्य–रचना की है। राश्ट्रीय–पतन, अपने देष की दयनीय दषा ओर बंदीखाने से जन्म–भूमि को याद करते समय कवि का स्वर विद्राही हो गया है। इस प्रकार चतुर्वेदी जी के काव्य में स्वतंत्रता, संघर्श और सांस्कृतिक चेतना का स्वर प्रमुख रूप से ध्वनित होता है। आपकी काव्यगत विषेशताओं की विवेचना निम्नलिखित षीर्श – बिन्दुओं के आधार पर दृश्टव्य हैं–

भाव– पक्षीय विषेशतायें भाव काव्य की आत्मा और कला उसका बाह्य षरीर माना जाता जिस प्राकर आत्मा और षरीर की एकरूपता में ही मानव जीवन को सार्थकता निहित रहती है, उसी प्रकार भाव और कला का समन्वय ही काव्य को उत्कर्श पर पहुँचाता है। माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में भाव और कला का उचित सामंजस्य देखा जा सकता हैं उनकी कविता की भाव–पक्षीय विषेशतायें प्रमुख रूप से निम्नलिखित है––

(1) देष–प्रेम व भक्ति–भाव – प्राखनलाल जी में देष–प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी हुयी है । कवि अपने देष को स्वतंत्र कराने के लिये आत्मबलिदान देने हेतु हर क्षण तत्पर रहता है। उनके द्वारा रचित षसिपाहीष कविता में देष भक्ति का उच्च स्वर व्यक्त हो रहा है। कवि की आत्मोत्सर्ग की भावना एक सैनिक के रूप में दृश्टव्य है–

श्ज्ञातों को मत, अज्ञात को, तूं इस बार पुकार।

बोल अरे सेनापति मेरे, सन की धुंडी खोल ।।

सच्चा राश्ट्रीय कवि वही माना जाता है, जिसे अपने देष की मिट्टी, पेड़–पौधों, लताओं, झरनों, नदियों और उसके पर्वत षिखरों से प्रेम हो। देष का यह व्यक्त रूप ही तो हमारी भारत माँ है। कवि ने ष्प्यारे भारत देषष कविता में भारत की महिमा का यषोगान करते हुये लिखा है कि–

उतर पड़ी गंमा खेतों खलिहानों तक,मानों आँसू आये बलि महिमनों तक !

सुख कर जग के क्लेष, प्यारे भारत देष।।

(2) राश्ट्रीय चेतना – माखनलाल चतुर्वेदी की प्रमुखतः राश्ट्रीय चेतना के कवि हैं। उनकी कविताओं में ज्वालामुखी की तरह अन्तर्मन कता है। ष्कैदी और कोकिलाष कविता के माध्यम से कवि ने समाज को जगाने का प्रयास किया है। कोकिला राश्ट्रीय जागरण की दूतिका है। पराधीनता के काल में स्वतंत्रता प्रेमी कोकिला की मधुर ध्वनि भी कवि को जागरण का सन्देष देती हूं उसे लगता है कि जैसे कोकिला उसे ललकार रही है और पुकार कर कह रही है कि–

ष बन्दी द्य उठ और अपना मोन तोड़ दे।

तेरी एक आवाज पर सारा राश्ट्र उठ खड़ा होगा।ष

(3) बलिदान व त्याग का स्वर त्याग और बलिदान के लिये प्रेरित करने वाले कवियों में चतुर्वेदी जी का महत्वपूर्ण स्थान है उनकी अमर राश्ट्रष, ष्पुश्प की अभिलाशाष, ष्बलि–पंथी सेष आदि कवितायें इस दृश्टि से विषेश महत्वपूर्ण हैं। ष्अमर– राश्ट्रष कविता में कवि स्वयं को बलिपथ का अंगारा निरूपति करता हुआ कहता है कि–

श्सूली का ही सीख हूँ, सुविधा सदा बचाता आया।

मैं बलि – पथ का अंगारा हूँ, जीवन ज्वाल जगाता आया।।

जीवन–ज्वाल बलि–पंथी सेष कविता में कवि ने मुलिदान व त्याग के मार्ग पर अग्रसर होने वालों को बलिदान की पीड़ाओं को फूल के समान सहज भाव से सहन करते हुये कर्त्तव्य मार्ग पर अग्रसर होने की ओजस्वी वाणी में प्रेरणा दी है। देखिये कवि के षब्दों में–

मत व्यर्थ पुकारे षूल–षूल, कह फूल–फूल, सह फूल–फूल । हरि को हीतल में बन्द किये, के हरि के कह नावे हूल – हूल।।

(4) गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी महात्मा गाँधी की विचारधारा से प्रभावित हैं। उन्होंने अपनी षनिःषास्त्र सेनानी ष कविता के माध्यम से सम्पूर्ण विष्व को अहिंसा और षान्ति का संदेष दिया है। गाँधी जी की दक्षिण अफ्रीका यात्रा के समय वहां की स्थिति का चित्रण करते हुये कवि ने लिखा है कि वहाँ एक और अंग्रेज घोर अत्याचार कर रहे थे तो दूसरी ओर महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में दक्षिण अीका की जनता अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग पर अग्रसर थी।

कि– कवि वहां की जनता को कभी भी षस्त्र न उठाने की प्रेरणा देता हुआ कहता

ैजन. उधर वे दुःखासन के बन्धु, युद्ध–भिक्षा की झोली हाथा

इधर ये धर्म–बन्धु, नय–रिन्थ, षस्त्र लो, कहते हैं – दो हाथा।।

(5) षोशितों के प्रति सहानुभूति स्वतंत्रता के बाद स्वार्थी तथा पद–लोलुपता की जो आंध चली, उसमें राश्ट्र–नेता अपने कर्तव्यों को भूलकर नये रंग में डूब गये। मजदूरों, गरीबों और कृशकों की दषा में कोई अन्तर न आया। उनकी दषा ज्यों की दयनीय बनी रही। जिन लोगों ने राश्ट्र

की सेवा में राजनेताओं के इषारे पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था, अब उनका ही षोशण होने लगा। कवि गरीबों की आह और कराह से बैचेन हो गया।उसका हृदय खिन्नता और विक्षोभ से भर गया। . ष्उलाहनाष् आदि कविताओं में उनकी यह वेदना मुखरित हो उठी है–

श्उठो, कारा वनाओं इस गरीबी, रहो मत दूर अपनों के निकट आओ। बड़े गहरे लगे हैं, घाव सदियों के मसीहा इनको ममता भर के सहलाओं ।ष् (6) प्रेम एवं सौन्दर्य का चित्रण – चतुर्वेदी जी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का भी चित्रण हुआ है। इनका प्रेम आवेग पूर्ण है और सौन्दर्य सम्पूर्ण सृश्टि में समाया हुआ है। हृदय में प्रेम का प्रबल वेग होने से उनकी प्रेम–परक कवितायें पाठको का मन मोह लेती हैं। ष्कुंज–कुटोरेष्, ष्यमुनातीरष् आदि कवितायें प्रेम भावना से सराबोर हैं इन कविताओं में अलौकिक प्रेम और मानवता की भावना की अभिव्यक्ति दर्षनीय है। निम्नलिखित पंक्तियों का भाव दृशव्य

कौन–सी मस्त घड़ियां चाह की, हृदय की पगडंडियों की राह की।

दाह की ऐसी कसक कुंदन बने, मौत को मनुहार की है आह की

(7) प्रकृति प्रेम – प्रकृति–प्रेम भी चतुर्वेदी जी या काव्य में अभिचित्रत हुआ है। कवि ने प्रायः प्रकृति–चित्रण उद्दीनपन रूप में किया है। उनका यह प्रकृति–चित्रण छयावादी काव्य जैसा नहीं है। क्योंकि चतुर्वेदी जी सक्रिय राजनीति एवं जीवन की अने समस्याओं में उलझे हुये थे। अतः उनके प्रकृति–चित्रण के रूप, सीधी–सादे रूप में ही अभिव्यक्ति पा सके हैं। ष्कैदी और कोकिलाष् कविता में कवि कोयल से अपनी समता करता हुआ कहता है कि काली तू रजनी भी काली, षासन करनी भी काली ।

काली लहर कल्पना काली, मेरी षोह श्रृंखला काली

चतुर्वेदी के भावुक हृदय में प्रकृति के प्रति प्रेम विषेश रूप से दिखायी पड़ता है। वे प्रकृ ति की कोमलता एवं सुन्दरता में मानव जीवन के विकास की झाँकी देखते हैं। उन्हें प्रकृ ति के क्रिया कलापों में मानवीय क्रियायें प्रतिबिम्बित सी जान पड़ती हैं। उनका यह प्रकृ ति प्रेम उनकी कविता ष्कैसे रख दूँ पाँवष् में स्पश्ट रूप से दृश्टिगोचर होता है, वे प्रकृति का मानवीकरण करते हुये कहते हैं–

इस हरियाली पर वनमाली, कैसे रख दूँ पाँव ?

जहाँ लड़ा करती है कोमल, बनी धूप से छाँव

(8) अध्यात्म–भाव – कवि की अतिषय भावुकता अध्यात्मवादी कविताओं में मुखरित हुयी है परन्तु इनका अध्यात्म–भाव छायावादी अथवा रहस्यवादी कवियों के अध्यात्म से मेल नहीं खाता है। – इनकी अध्यात्मिक रचनायें सूक्ष्म भाव से रहित हैं। इनकी रचनाओं में यत्र–तत्र अस्पश्टता भी परिलक्षित होती है।

कला– पक्षीय विषेशतायें – चतुर्वेदी जी सच्चे अर्थों में कवि हैं। भावना के उपासक होने के कारण कला की ओर उनका विषेश ध्यान नहीं गया है। फिं भी उनके भावों की

अभिव्यक्ति में उनकी कला पूर्ण समर्थ रूप में दृश्टिगोचर होती है। उनकी कला– पक्षीय विषेशतायें निम्नलिखित हैं–

(1) भाशा वैषिश्ट्य– पं. माखनलाल चतुर्वेदी अपनी भाशा के निर्माता और प्रयोक्ता दोनों ही रहे हैं। अपनी भाशा का निर्माण उन्होंने स्वयं किया है और उसके प्रयोग पर वे जीवनभर अटल रहे। चतुर्वेदी जी की भाशा मूलतः सषक्त खड़ी बोली है। उनकी भाशा सरल और प्रवाहपूर्ण है। वे अरबी–फारसी के ाब्दों का निःसंकोच प्रयोग, बोलचाल के षब्दों का स्वाभाविक प्रयोग और ग्रामीण व देषजषब्दों का प्रयोग बड़ी सुन्दरता के साथ करते हैं। उनकी भाषा में आज है, प्रवाह है औरसरसता भी है। उन्होंने वीर रस के अनुकूल टकार – डकार प्रधान षब्दावली का प्रयोगकिया है और छोटी–छोटी पंक्तियों में बड़े जोषीले भाव व्यक्त किये हैं। उनको उद्‌बोधन प्रधान एवं राश्ट्रीय रचनाओं में ओज की जो अदम्य ध है वह किसी भी छायावादी कवि केकाव्य में देखने को नहीं मिलती है। उनकी भाषा में छायावादी लाक्षणिकता भ है परन्तुलाक्षणिकता उनकी भाशा का सामान्य गुण नहीं है। उनकी भाशा में कितनी, मिठास एवंप्रवाह है, इसे निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है–

श्वह काली के गर्भ से, फल रूप से अरमान आया।

देख लो मीठा इराद किस तरह सिर तान आया।।

चतुर्वेदी जी की देष–प्रेम की कविताओं में ओज–गुण की सम्पन्नता भली प्रकार देखी जा सकती हैं– पहन लो नरमुण्–माला, उठ स्वमुण्ड सुमेरू कर ले।

भूमि–सा तू पहन बना आज धानी, प्राण तेरे साथ हैं, उठ री जवानी

(2) अलंकार योजना –माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी कविता में अलंकारों का प्रयोग रीतिकालीन कवियों एवं जबरदस्ती अलंकारों का प्रयोग करने वालों के समान नहीं किया है। अलंकार उनकी कविता में अपने आप प्रयोग में आये हैं। उनके लिये कवि का कोई प्रयत्न नहीं रहा है। वे अलंकारों के प्रयोग द्वारा अपना पाण्डित्य प्रदर्षन करना नहीं चाहते, वरन् भावों की तीव्रता और स्पश्टता देने के पक्ष में हैं। उनका काव्य भाव–प्रधान है, अलंकार –प्रधान नहीं हैं। उनका अप्रस्तुत विधान उनकी अनुभूति को स्पश्ट करने में सहायक ही हुआ है, बाधक नहीं। चतुर्वेदी जो के काव्य में अलंकार– प्रयोग सम्बन्धी कुछ उदाहरण इस

प्रकार हैं–ष्लेश उत्प्रेक्षा

जब ष्यामले धन आ जाते, तुझ पर जीवन ढुलकतो, तू स्वर्गगंगा करके, सुर–लोक मही पर लाता।श आषा ने जब अंगड़ाई ली, विष्वास निगोड़ा जाग उठा । मानों पा, प्रातरू पपीहे का जोड़ा, प्रिय बर्धन त्याग उठा । हे घनष्याम ! ंतमते ही तल को षीतल कर दानी।

अनुप्रास

कौन दुत गति निज पराजय की विजय पर ?

श्तो प्रणय में प्रार्थना का मोह क्यों है?

तो प्रलय में से विद्रोह क्यों है?

(3) छन्द योजना–छन्दों के प्रयोग में चतुर्वेदी जी ने छायावादी कवियों के समान स्वच्छन्दता से काम लिया है। कवि निराला जी के समान छन्द के बन्न को स्वीकार नहीं करता है। कवि की छन्द–योजना के विशय में हम कह सकते हैं कि उन्होंने 16 मात्र के छन्दों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। चतुर्वेदी जी पर उर्दू छन्द–षैली का पर्याप्त प्रभाव है । कतिपय उर्दू छन्दों का प्रयोग करते हुये भी हिन्दी के मात्रिक छन्दों का सुन्दर एवं अनुपम प्रयोग किया है। कहने का आषय यह है कि चतुर्वेदी जी छन्द प्रयोग में अधिक प्रयत्नषील नहीं रहे क्योंकि उनकी कविता में जहाँ कहीं कला –पक्ष की कमी पड़ने है, वहाँ भाव पक्ष की सफलता और उक्ति छदा ने उस कभी को पूरा कर दिया है।

(4) षैली – वैषिश्ट्य– माखनलाल चतुर्वेदी कवि हैं, कलाकार नहीं। कविता की सज्जा की ओर आपका ध्यान कभी नहीं गया। आपकी षैली अपनी है, उस पर किसी अन्य कवि की छाप नहीं है। उनका काव्य उनके सच्चे हृदय की पुकार है। अतः उसे प्रस्तुत करने में उन्होंने किसी प्रकार की कृत्रिमता का आश्रय नहीं लिया है। आपके मुक्तक षैली को अपनाया है क्योंकि आपके सभी काव्य मुक्तक हैं। आपकी षैली में स्वाभाविकता और सजीवता सर्वत्र दिखाई देती है। चतुर्वेदी जी की षैली बड़ी ही ओजपूर्ण और प्रवाहपूर्ण हैं मन की सुकुमार वृत्तियों का विष्लेशण और उनका संकेत चतुर्वेदी जो बड़े कौषल के साथ करते हैं। अपनी इस षैली में आप सौ प्रतिषत मौलिक हैं। आपकी षैली का दो विषेशतायें है भावों की मधुरता तथा उक्ति– वैचित्र्या षैली को इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर आपने लाक्षणिक चक्रता अपनायी है। (5) सूक्तिप्रियता सूक्तियों का आषय यह है कि जहाँ पर पाठक का ध्यान कथन के ढंग पर पहले जाता है, भावना पर बाद में। जहां वाक्य के विचित्र विन्यास पर दृश्टि जाकर अटक जाती है,

वहाँ कवि की सूझें आकर्शण का केन्द्र बन जाती है। पं. माखनलाल चतुर्वेदी ष्एक भारतीय आत्माष को आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने षहिन्दी में उर्दू काव्य–षैली का प्रतिनिधिष कहा है और उनके मुक्तकों का निर्माण और तैयारी टकसाली उद्रू कवियों की सी बतलाई है। उनके कहने का आष्य यह है कि उनकी सूक्तियों में उपदेषात्मकता कारण नहीं हैं, अपितु भावना का अतिरेक ही कारण है।

(6) प्रतीक योजना– प्रो. रामेष्वर षुक्ल ष्अचल ने लिखा है कि, श्द्विवेदी युग के नीतिवादी प्रतीकों के स्थान पर बलिदानवादी राश्ट्रीय वेदना अभिव्यंजक प्रतीक चतुर्वेदी जी ने प्रदान किये हैं। श माखनलाल जी के प्रतीकों के विशय में श्री रामाधार षर्मा ने लिखा है– श्सिन्ध ु आनावित और पतवार के भक्तिहीन प्रतीकों को भी उन्होंने राश्ट्रीय धुति से दीप्त कर दिया है। आवेष की स्थिति में वे कर्तव्य का झूठा राग अलापने वाले के लिये ष्कागष तथा प्रेम के नाम पर रोने वाले असमर्थ कवियों के लिये षभिनभिनाती मक्खियाँष जैसे प्रयोग भी कर देते है। मोती का प्रयोग उन्होंने पानी की बूँदों एवं आँसुओं के लिये किया है, जैसे– ष्तुझसे

प्रसाद में प्यारे ठंडे मोती लेते हैं में मोती पानी की बूँदों के लिये आया है तथा ष्आहा कैसे गिरे सीपियों से ये गरम—गरम मोतीष में मोती आँसुओं के लिये आया है। तारों के लिये वे दीप का भी प्रयोग करते हैं, जैसे— ष्नम के ये दीप बुझाने की है ठानी।ष उनके प्रेम—राज्य का ष्राजाष भी एक प्रतीक ही है। रहस्यात्मक रचनाओं में उन्होंने षमित्रष और ष्पंकजष, ष्चन्द्रष और ष्कचोरष जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है परन्तु उनका काव्य प्रतीक प्रधान नहीं है वे प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, लेकिन साहित्य में स्थान— हिन्दी के राश्ट्रीय कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी जी का प्रमुख स्थानहै। जो आग, जो पड़पन, जो जोष, जो प्रेरणा, जो आत्मोत्सर्ग की भावना चतुर्वेदी जी कीरचनाओं में मिलती है वह हिन्दी के किसी अन्य कवि में दिखाई नहीं पड़ती है। निःसन्देहचतुर्वेदी जी का राश्ट्रीय कवियों में श्रेश्ठ स्थान है। माखनलाल जी हिन्दी के तीन श्रेश्ठप्रलय गीत गायको में से एक हैं उस त्रयी में है— बालकृश्ण षर्मा ष्नवीनष, रामाधारी सिंहषदिनकरष तथा चतुर्वेदी जी हैं। राश्ट्र के अनेक बलिदानियों ने इनके गीत गाते हुये अपनेप्राणों की भेंद मातृभूमि को चढ़ाई है। देष में राश्ट्रीय चेतना फैलाने और राश्ट्र—पूजा कीभावना जगाने में आपकी कविता ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रेम, आनन्द उल्लास,नैराष्य, वीरत्व और देषभक्ति ये सब अपने चरम अत्कर्श पर पहुंचे हुये चतुर्वेदी जी की कवितामें मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनको काव्य—यात्रा विस्तृत है. वह विविध रंगोंसे रंगी हुयी है और उदात्त, प्रखर व तेज—युक्त होकर भी षिश्ट है। इसी तथ्य की पुश्टिडॉ. रामकुमार वर्मा के षब्दों में दृश्टव्य है— श्माखनलाल जी की वाणी हिन्दी के सभी अन्यकवियों के स्वर की अपेक्षा तीव्र, मर्मस्पर्षिनी तथा अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में पूर्ण है।वह ष्एक भारतीय आत्माष है और उनमें गुलाम भारती की आत्मा को तड़प है, चीख है, जोबन्धनों को टूक—टूक करने के संकल्प में बलिदान को पूजा तथा सूली को प्रियतम की सेजसे अधिक कोमल समझती है। निःषस्त्र सेनानी कविता का केन्द्रीय भाव

उत्तर— षनिःषस्त्र सेनानीष ष्कविता पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी द्वारा विरचित है। इस कविता में कवि ने ष्महात्मा गांधीष ष्को निःषस्त्र अर्थात् षस्त्र—रहित नानी की उपाधि से अलंकृत किया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने महात्मा गाँधी के दक्षिण अपीका के प्रवास काल में अंग्रेजों के अत्याचारों के विरूद्ध चलाये गये अहिंसात्मक आन्दोलन का हृदयस्पर्षी चित्रण संवाद — षैली में किया है।

कवि महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व का चित्रण करते हुये कहता है कि हे भाई। ये स्वजन से दिखने वाले कौन लोग खड़े हुये हैं? फि स्वयं ही उत्तर देता है कि इनका कोई नाम नहीं है, इनका तो बस कर्म करते रहने में ही विष्वास है। कवि पतुः प्रष्न करता है कि क्या ये भाई—बहन हैं? तो उत्तर मिलता है— हाँ। इनमें से अहिंसा बहन है और आत्मबल उसका भाई है। कवि का यहाँ तर्क है कि आत्मबल से अहिंसा को षक्ति मिलती

कवि पुनः प्रष्न करता है कि इनके पिता कौन है? तो उत्तर मिलता है कि जिन्होंने इस संसार की रचना की है— वही सषश्टि के रचयिता इनके पिता है और जिसने पष्थ्वी पर इतनी सुन्दर रचनाओं की सषश्टि की है और सुख के साधनों की रचना की है— वही प्रकृति इनकी माता है।

कवि पुनः प्रष्न करता है कि क्या ये पुत्र–पुत्री हैं? उत्तर मिलता है– हाँ, कभी न समाप्त होने वाला जोष और सब कुछ सहन करने की क्षमता, पुत्र–पुत्री जैसे ही हैं। सिद्धि क्या है? मानव से लेकर फूलों तक में स्वतन्त्र हरने की इच्छा–षक्ति का संचार करना ही सिद्धि है। हानि का इससंग्राम में कोई अर्थ नहीं है।

कवि का प्रष्न है कि प्राप्ति क्या है? इस विष्व को अमरत्व प्रदान करने की इच्छा और आत्मनिर्भर होकर जीवित रहने की षक्ति ही प्राप्ति है। कवि का पुनः प्रष्न है कि देह क्या है? कवि स्वयं ही उत्तर देता है कि देह तो सूली पर चढ़ा हुआ चमड़े का एक टुकड़ा मात्र हैं और क्रान्तिकारी इस देह की कभी परवाह नहीं करते हैं।

कवि का पुनः प्रष्न है कि इनका यह क्या है? तो उत्तर मिलता है कि सम्पूर्ण विष्वरूपी कर्म क्षेत्र ही इनका गेह है। इनके लिये षोक का अर्थ है– पीड़ित मानव की मर्मभेदी आवाज, जो अन्त तक को कैंपा देती है । कवि कहता है कि कर्मवीरों को हर्श उस समय होता है, जब वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं इस प्रकार कवि ने प्रष्नोत्तर षैली में कर्मवीर महात्मा गाँधी के चारित्रिक गुणों का वर्णन किया हैं।

अन्त के कवि ने महात्मा गाँधी के दक्षिण अपीका के संग्राम का वर्णन ओजस्वी भाशा में किया है। वह कहता है कि एक ओर दुःषासन के हसान अन्याय का पक्ष लेने वाले गोरे अंग्रेज लोग युद्ध करने के लिये तत्पर थे तो दूसरी ओर धर्म के मार्ग पर चलने वाले महात्मा गाँध ी दक्षिण अपीका के पीड़ित एवं षोशित जनमानस का नेतृत्व कर रहे थे। षत्रु सेना के सैनिकों के हाथों में लाखों तरवारें चमकती हुयी मार–काट करने के लिये तत्पर दिखाई दे रही थी, लेकिन महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक युद्ध करने की घोशणा कर दी थी, जिसे सुनकर जन–जन को हृदय पुलकित हो गया था और अनेक लोग उनके साथ कर्मभूमि में डट जाने के लिये उतावले हो रहे थे। यह देखकर सम्पूर्ण नभ– मण्डल दहल उठा और उससे मुक्ति फट पड़ने के लिये व्याकुल हो उटी अर्थात् महात्मा गाँधी ने निःषस्त्र सेनानी के रूप में अहिंसात्मक युद्ध में सपुलता प्राप्त कर ली।

(1) माखनलाल चतुर्वेदी रू व्याख्यात्मक भाग कैदी और कोकिला

क्यों हूक पत्र– वेदना बोझ वाली सी

कोकिला ! बोला तो ? क्या लूटा ?

मष्दुल वैभव की रखवाली–सी– कोकिल! बोलो तो

बन्दी सोते हैं, हैं घर–घर ष्वासों का, दिन के दुःख का रोना है विष्वासों का। अथवा स्वर है लोहे के दरवाजों का, बूदों का, या संत्री की आवाजों का ।

या गिनने वाले करते हाहाकार, सारी रातों है– एक, दो, तीन, चार।

मेरी आँसू की भरी उभय जब प्यारी, बेसुरा मधुर क्यों गाने आई आली ? सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित ष्कैदी और कोकिलाष षीर्शक गीत से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी

हैं। प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण के कवि ने स्वयं को ब्रिटिष सत्ता के कैदी के रूप में और कोकिला को पराध निता–रूपी अंधकार में ज्योति की एक किरण के रूप में निरूपित करते हुये उसे सम्बोधित कर यह बताया है कि हे कोकिला! इस गुलामी की दषा में तुम ही देषवासियों में आषा का संचार कर देती है। व्याख्या– कवि अपने देष की आजादी का दीवान है, लेकिन वह अंग्रेजों के कारागार में बन्दी है। अतः वह जब कारागार में अर्द्धरात्रि के समय कोयल की आवाज सुनता है, तो वह जब कारागार में अर्द्धरात्रि के समय कोयल की आवास सुनता है, तो वह कोयल से प्रष्न करता हुआ कहता है–

वेदना के बोझ से बोझिल है कोकिला। तुम इस अर्द्धरात्रि के समय क्यों हूक रही हो? तुम्हें कौन–सी वेदना सता रही है? भला मुझे भी तो बताओ। तुम तो अपने कोमल वैभव को संरक्षिका हो । क्या तुम्हारा वैभव लुट गया है और जिसकी वेदना तुम अपनी वाणी के माध्यम से व्यक्त कर रही हो?

. कवि कोकिला से उसके असमय में बोलने पर कहता है कि हे कोकिला। इस समय सभी बन्दी सो रहे है। प्रत्येक घर में दुःख की साँसे देखी जा सकती हैं, उनकी निष्वासों से दिन–भर का दुःख व्यक्त हो रहा है । बन्दी बन्दीखाने की दषा का वर्णन करते हुये कहता है कि हे कोकिला! यहाँ तो रातभर बन्दीखाने में लोहे के दरवाजों की, सिपाहियों के बूटों (जूतों) की और संतरी की आवाजों का हाहाकार सुनाई देता रहता है। ये संतरी सारी रात कैदियों की गिनती करते हुये आवाजें करते रहतेहैं। इस प्रकार मैं कारागार के अत्याचारों में दुःखी हो जाता हूँ। दुःख के कारण मेरी दोनोंआँखों की प्यालियों से भर जाती है, और मैं बहुत दुःखी हो जाता हूँ। अन्त में कवि कोयल, से कहता है कि हे कोकिता। ऐसी दुःखावथा में तुम बेसुरा गीत गानेके लिये क्यों आ जाती हो? आषय यह है कि दुःखावस्था में तुम बेसुरा गीत गाने के लियेक्यों आ जाती हो? आषय यह है कि दुःखावस्था में कोकिला गीत द्वारा आजादी की प्रेरणाभरकर कवि को संघर्श करने के लिये प्रोत्साहित करती है।

विषेश– 1. कवि की राश्ट्रीय – भावना को अभिव्यक्ति दर्षनीय और प्रभावी है।

अमिद्या षब्द – षक्ति द्वारा प्रभावी ढंग से गांवों की अभिव्यंजना की गयी है। भाशा सरल एवं भावानुकूल है।

(1) हिमकिरीटनी

छोड़ तू बड़भागिनी, ये उभय लालच छोड़। आज तो सिर काटने में हो रही है होड़ !

अरी व्यर्थ नहीं कि प्रियतम माँगता है दाना

ले अमर तारूण्य अपने हाथ, हो कुरबाना

मिटेंगी? मिट जायें चंचल चाह, मुँदी रह, तू हो न अरी तबाह !

हँस रही हैं और हँस ले खूब, तू मत बोल।

भोगियों के चरण की कुचलन बनाकर गोला तुच्छ से अनुराग पर वे खो रही हैं त्याग

राग पर उनके हुआ अपमान भोगी बागा मक्क ,

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित षहिम–किरीटिनीष षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर पं. भाखनलाल चतुवेदी जी हैं। प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कवि ने षहिम– किरीटिनीष भारत माता की मुक्ति के लिये प्रकृति के लिये तेरे पुत्र में षत्रुओं के सिर काटने की होड़ (प्रतिस्पध ा) लगी हुयी है। इसलिये तू दोनों ओर के लालचों को छोड़कर अपना अमर तारुण्य अपने हाथों से न्यौछावर कर दे, क्योंकि प्रियतम के द्वारा तारुण्य का दान माँगना व्यर्थ नहीं है। अर्थात् हे देवी! तुम्हें अपने यौन का अमर सौन्दर्य प्रियतम के लिये न्यौछावर कर देना चाहिये, क्योंकि तुम्हारी रक्षा का दायित्व भी सुरक्षित रखते हुये तबाही से बचाना चाहिये।

आगे कवि कहता है कि यदि तुझे देखकर वन कलियाँ हँस रही हैं तो इन्हें हँसने दो, इनसे कुछ भी नहीं कहना चाहिये, क्योंकि इन्होंने भोगियों के तुच्छ प्रेम के लिये उनके पैरों की कुचलन बनकर अपने त्याग को खो दिया है। इनके इस तुच्छ प्रेम के कारण बाग को अपमान भोगना पड़ा है। इसलिये तु अपनी चंचल इच्छाओं के लिये अपने महिभाषाली व्यक्तित्व को नश्ट नहीं करना चाहिये। इस प्रकार कवि के यहाँ स्वाभिमान के साथ जीने की प्रेरणा दी है।

विषेश– 1. वनदेवी के स्वाभिमानी स्वरूप का चित्रण किया गया है।

चंचल इच्छाओं के त्याग की प्ररेणा दी है।

राश्ट्रीय भावों की अभिव्यंजना अत्यन्त प्रभावी बन पड़ी है।

भाशा सरल, सहज एवं प्रवाहमयी है।

जब सिपाही उठें, सेनानी उठें ललकार

मातष–बनधन – मुक्ति का, जिस दिन म त्यौहार। जब किं जन–पथ लाल हो, हो किसी की तलवार । आयगा सिर काटने, उस दिवस मालीकार।

करेगा हुंकार, कलियाँ, बन्द हो तैयार ! सूजियों से छेदने में, आज उनकी धेर! यह मधुर बलि, हो विजय का मोल तुझे मानिनी, तब तक हृदय मत खोला हिमकिरीटिनी की
परम उपहार।री सजनि, वन–राजि की श्रषंगार ।
सन्दर्भ– प्रस्तुतं अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी – कायष में संकलित षहिम–किरीटिनीष षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी हैं।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने षहिम–किरीटिनीष भारत माता की मुक्ति के लिये प्रकृति के माध्यम से जीवन के मृदुल राग–विराग की अपेक्षा कठोर सत्यों को अपनाने की प्रेरणा दी है। व्याख्या– कवि वनदेवी से कहता है कि हे सखी! इन वन के वैभव ने श्रृंगार क्रूर लिया

है, लेकिन तुम अपना हृदय तब तक मत खोलों, जब तक भारत माता को गुलामी के बन्धनों से मुक्ति नहीं मिल जाती है, क्योंकि हे मानिनी! तुम्ही तो भारत माता का सच्च उपहार हो ।

आगे कवि उसे प्रलय–युद्ध के लिये तैयार रहने की प्रेरणा देता हुआ कहता है कि हे मानिनी! जब सिपाही उठ खड़े हों, सेनानी ललकार उच्च और मातष्–भूति की स्वतंत्रता का जिस दिन त्यौहार मनाया जावे, जन जन पथ बलिदानियों के बलिदानी रक्त से लाल रंग का हो गया हो, तलवारें भी लाल हो गयी हों, तब उस दिन इस वन का माली किसी की भी ललवार लेकर षत्रु के सिर को काटने के लिये आयेगा। वह हुंकार करेगा, कलियाँ बन्द हो जायेंगी, क्योंकि षत्रु को एड़ियों से छेदने की आज उन्हीं की बारी है। इस प्रकार यह मधुर बलि हो इस मुक्ति की विजय की कीमत होगी ।

विषेश– 1. भारत माता की स्वतन्त्रता की कामना की गयी है।

2. भाशा सरल, सहज तथा लाक्षणिक है।

3. कवि का कल्पना वैदग्ध्य प्रषंसनीय है।

4. अवतरण मुक्त छन्द में निबद्ध है।

निःषस्त्र सेनानी

उधर वे दुःषासन के बन्धु युद्ध – भिक्षा की झोली हाथ, इधर ये धर्म–बन्धु, नय– सिन्धु, षस्त्र लो, कहते हैं– ष्दो साथष्। लपकती हैं लाखों तलवार, मचा डालेंगी हाहाकार,

मारने मरने की मनुहार, खड़े हैं बलि–पषु सब तैयार।

किन्तु क्या कहता है आकाष ? हृदय । हुलसों सुन यह गुंजार,

ष्पलट जाये चाहे संसार न लूँगा इन हाथों हथियार।ष्

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी – कायष् में संकलित षनिःषस्त्र सेनानीष् षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कविवर चतुर्वेदी जी ने महात्मा गाँधी के चारित्रियक वैषिश्ट्य को एक निःषस्त्र (षस्त्र रहित) सेनानी (यौद्धा) के रूप में अभिचित्रित किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि दक्षिण अफ्रीका संग्राम में एक ओर दुःषासन के समान अन्याय का पक्ष लने वाले गोरे लोग युद्ध करने के लिये तत्पर थे तो दूसरी ओर धर्म के मार्ग पर चलने वाले नीति के समुद्र महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका के पीड़ित एवं षेशित जनमानस का नेतृत्व कर रहे थे। उनके पक्षधर उन्हें षस्त्र धारण करने के लिये निवेदन कर रहे थे, किन्तु उनका कहना था कि मेरे दोनों हाथ ही मरे षस्त्र हैं। षत्रु सेना के सैनिकों के हाथों में लाखों तलवारें चमकती हुई मार–काट करने के लिये तत्पर दिखाई दे रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे कि ये तलवारें क्षण–भर में हाहाकार मचा डालेंगी। दूसरी ओर मारने मरने को मन में

इच्छा लिये हुये पीड़ित षोशित लोग ऐसे खड़े हुये थे जैसे कि बलि चढ़ाने भोलि गाओं को पंक्तिबद्ध रूप में खड़ा कर दिया गया हो।

आगे कवि महात्मा गाँधी की अहिंसावादी भीश्म प्रतिज्ञा का वर्णन करते हुये कहता है कि महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक युद्ध करने की भीश्म प्रतिज्ञा करते हुये यह घोशणा कर दी थी कि चाहे संसार भले ही पलट जाये अर्थात् संसार में भले ही परिवर्तन आ जाये किन्तु मैं अपने इन हाथों में कभी भी हथियार ग्रहण न करूँगा। मेरा युद्ध तो अहिंसात्मक होगा। गाँधी जी की उक्त प्रति की ध्वनियाँ आकाष मण्डल में प्रतिध्वनित हो रही थी, जिनका सुवार को सुनकर जन–जन का हृदय पुलकित हो उठा था ।

गर्यो सदियाँ कि यह बहती रही गंगा, गनीमत हैं कि तुमने मोड़ दी धारा । बड़ी बाढ़ोमेची उद्दण्ड नदियों की बना दो पत्थरों वाली नयी कारा। सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण राश्ट्रीय काव्यधारा के हर कविवर माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा विरचित ष्उलाहनाष् षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है।

प्रसंग– कवि ने श्रेश्ठ जनों, षक्तिसम्पन्न जनों, कर्णधारों आदि से कहना चाहा है कि तुम्हारी वर्तमान स्थितियों के मूल में तुम्हारा कृतित्व मात्र ही नहीं है, अपितु बलिदानी, त्यागी वीरों की कुर्बानी भी है, श्रमिक का श्रम भी है, पर तुमने उसकी सर्वथा उपेक्षा कर दी है।

व्याख्या– कवि कहता है कि हे देष के कर्णधारो! यह सत्य है कि इस देष में परतन्त्रता अत्याचार और उत्पीड़न आदि की बाढ़ सी आ गयी थी जिस पर तुमने नियंत्रण किया है, पर यह मत भूलों कि सदियों पहले यहां परम कल्याणी बहती रही है, अमरसता की, वैभव की, जिसके पावन जल ने छोटे–बड़े भेद मिटा दिये थे। मानवता का पोशण किया था क्या आज वह स्थिति नहीं लायी जा सकती है?

यह भी सत्य है कि आज तुमने बड़े–बड़े बाँध मनाकर भौतिक नदियों को बाँध दिया है, पर आज भी समाज में गरीबी, षोशण, अत्याचार की नदियां उफ रही है। वे बादोन्मुखी हैं जिनके विकराल – विलास में जन–मानस डूबता चला जा रहा है, उसके लिये तुमने क्या किया है? क्या इनके ऊपर तुम्हारा कोई नियंत्रण नहीं है? अगर इन भीशण धाराओं को नहीं बाँधा गया और सामानय जन को यों ही इनमें डूबने दिया गया तो यह देष विकास की सीढ़ी पर खड़ा ही रह जायेगा और गतिषील नहीं हो पायेगा।

विषेश– 1. भौतिक उपलब्धियों की महत्ता तभी मानी जा सकती है जब देष में गरीबी, षोशण मुक्त समाज की रचना हो सके।,

2. कवि का दृश्टिकोण यहां मानवतावादी तो है हीसाथ ही उसमें प्रगतिषील का भी पुट है।

3. गंगा, उद्दण्ड नदियोंष् में रूपकातिष्योक्ति की भी व्यंजना है, साथ ही ष्पत्थरों वाली नदी काराष् में उपमा अलंकार का प्रयोग है।

उठो, कारा बनाओं इस गरीबी की, रहो मत दूर अपनों के निकट आओ।

बड़े गहरे लगे हैं घाव सदियों के मसीहा, इनको ममता भर के सहलाओं ।

सन्दर्भ– पूर्ववत् ।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में कवि ने राजनेताओं को उनके कर्त्तव्य का बोध कराते हुये देष में व्याप्त गरीबी को दूर करने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या– कवि राजनेताओं को उलाहना देता हुआ कहता है कि हे मसीहा । तुम्हारे अनुसार तुमने निर्माण के बड़े–बड़े कार्य तो कर लिये हैं, लेकिन खेद है कि चारों ओर फैली हुयी गरीबी पर तुम आज तक काबू न पा सके हो। आज समान में गरीबी क्षण– प्रतिक्षण सुरसा राक्षसी की तरह व्यापक होती जा रही है। वह बाढोन्मयी उद्दण्ड नदियों की तरह जन सामान्य को अपने आप में डुबोती जा रही है। फलतः सदियों से गरीब लोग अभावों, कश्टों, षोशणों तथा उत्पीड़नों से पीड़ित हैं। उनकी दषा बेहाल है। ये गरीब लोग भी तुम्हारे अपने हैं, इनसे तुम्हें दूर नहीं रहना चाहिये, बल्कि इनके पास आकर देवदूत बनकर अपने स्नेहमयी हस्तस्पर्ष से इनकी पीड़ाओं को दूर करना चाहिये। तुम्हें देष में व्याप्त गरीबी को सीमा रूपी किनारों में बाँध कर सीमित कर देना चाहिये जिससे यह स्वतः क्रमषः सीमित होती हुयी समाप्त हो जायेगी। तुम्हें ममतापूर्वक इनके हृदय तथा षीरी पर लगे खांबी और अभावों के घावों को सहला कर इन्हें सांत्वना देनी चाहिये।

सेने में यारी को मापने का आह्वान किया

2. भाशा सरल, सहज एवं प्रवाहमयी है।

3. षैली ओजमयी एवं मर्मस्पर्षी है।

4. मानवतावादी भावनायें स्पष्ह्णीय हैं।

(1) साँझ की ढोलक की थापें

हँस उठता हूँ जबकि गरीबी के झाड़ों में फल आते हैं. रस्ता चलने वाले रूकते वाह वाह की झर लाते हैं। दिन–भर काम करेंगे मालिक, संझा हुयी कि थायें देगें, साँसे दे दे कर बजार से, बाजी का अलगोजा लेंगे। ममता के मेहमानों बताओं, कैसे तीरंदाज हो गये?

मेरे मालिक, मेरे अलगोजे से क्यों नाराज हो गये?

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण कविवर माखनलाल चतुर्वेदी जी द्वारा विरचित षसाँझा और ढोलक की थापेष षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कवि ने स्वयं के माध्यम से एक गरीब व्यक्ति की व्यक्तिगत जिन्दकी का भावात्मक चित्रकन किया है।

व्याख्या– कवि स्वयं को एक गरीब व्यक्ति की संज्ञा देता हुआ कहता है कि जब हमारी गरीबी–रूपी झाड़ों में घुल आते हैं तो मैं प्रसन्न हो जाता अर्थात् जब गरीबी की जिन्दगी में यदा–कदा खुषी के अवसर प्राप्त होते है, तो रास्ता चलने वाले लोग भी व्यंग्यात्मक ढंग से प्रषंसा के छींटे कसने लगते ही उस समय वह गरीब कह उठता है कि हे मालिका जब हम दिन भर काम करेंगे तो षाम के समय ढोलक की थापें लगाते हुये मन भी बहलायेंगे। हम बाजार में कठोर परिरम के काम करते हुये अपनी साँसे देकर और प्राणों की बाजी लगाकर यह अलगोजा अर्थात् मस्ती भरी खुषी खरीदते हैं। लेकिन हे ममता के मेहमान! यह तो बताओं कि तुम हम गरीबों की प्रषंसा करने में कब से तीरंदाज अर्थात् प्रवीण बन गये हो अर्थात् तुम्हें तो हमारी खुषी का वाह–वाही अच्छी ही नहीं लगती है। तुम्हारी यह

Notes

ममता तो केवल दिखावा मात्र है है मेरे मालिक! मेरी इस मस्त भरी खुषी के प्रति व्यंग्य करते हुये आप नाराजगी क्यों प्रकट कर रहे हैं?

कवि का आषय यह है कि आज समाज का गरीब वर्ग दिन–भर कठोर परिश्रम करने के बाद षाम के समय ढोलक बजाता हुआ अपना मनोरंजन करता है, जिसे देखकर अमीर वर्ग ममता का दिखावा करते हुये व्यंग्यात्मक ढंग से झूठी प्रषंसा करता है। गरीब अमीरों को इस मनोवृत्ति की तीखी आलोचना करता हुआ उनके कुत्सित विचारों का पर्दाफाष कर देता है।

विषेश– 1. समाज के गरीब वर्ग की सामाजिक दषा का चित्रण किया गया है।

2. भाशा, सरल, सहज एवं व्यात्मक है।

3. षैली प्रभावोत्पादक एवं प्रवाहमयी है।

इकाई –15 सच्चिदानंद हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय समीक्षात्मक भाग

प्रारम्भ सहा विद्राहा तेवर लेकर हिन्दी काव्य में प्रविश्ट हुए थे। जब उन्होंने कवितारू लि खना षुरू किया, उस सयम हिन्दी में एक ओर सतरंगी कल्पनाओं के ताने–बाने बुननेवाली छायावादी कविता के गीत महादेवी, बच्चन, नरेन्द्र षर्मा, जंचल आदि गा रहे थे तोदूसरी ओर साम्यवाद से प्रभावित होकर षिवमंगल सिंह ष्सुमनष्, नागार्जुन आदि प्रगतिवादीस्वर मु खरित कर रहे थे। एक ओर यदि कविता कोहरे में लिपटी रंग–बिरंगे फूलों से लदीघाटों सरीखी लगती थी तो दूसरी ओर रोजमर्रा के मसलों को साम्यवादी तौर–तरीकों के सुलझाने वाली अगतिवादी कविता सपाट–बायी सी लगती थी। दोनों ही स्थितियों को कविता के लिए खतरनाक समोर अज्ञेय ने नयी राहों के अन्वेशण में अपनी कविता को ले जाने की ठान ली।

प्रयोगवाद के प्रवर्तक– छयावादी और प्रगतिवादी की प्रतिक्रियास्वरूप अज्ञेय ने जो काव्य–आन्दोलन सन् 1943 में ष्तार सप्तकष् नामक काव्य संकलन के प्रकाषन से चालया था, उसे प्रयोगवाद के नाम से पुकारा गया। कविवर अज्ञेय को इस बाद का प्रवर्तक तथा उन्नायक माना जाता है। सन् 1943 में इन्होंने सात प्रतिनिधि प्रयोगवादी कवियों का संकलन ष्तार सप्तकष् सम्पादित किया। उसमें सात कवियों की रचनाएँ उनके वक्तव्यों सहित उपस्थित की गई हैं। इन कवियों के नाम हैं – (1) गजानन माधव मुक्तिबोध, (2) नेमीचन्द्र जैन,(3) भारतभूशण अग्रवाल, (4) प्रभाकर माचवे, (5) गिरिजा कुमार माथुर, (6) रामविलास षर्माऔर (7) अज्ञेवा सन् 1951 ने ष्दूसरा सप्तकष् सम्पादित किया। उन्होंने ष्तीसरा सप्तकष् सन्1959 में सम्पादित करके प्रकाषित किया।

ष्दूसरा सप्तकष् में जिन सात कवियों की रचनाएँ संकलित हैं उनके नाम हैं– (1) भवानी प्रसाद त्रि, (2) षकुन्तला माथुर, (3) हरिनारायण व्यास, (4) षमषेर बहादुर सिंह, (5) नरेष मेहता, (6) रघुवीर सहाय, (7) धर्मवीर भारती ।

ष्तीसरा सप्तकष् में संकलित रचनाओं के सात कवि हैं– (1) प्रयाग नारायण त्रिपाठी, (2) कुंवर नारायण, (3) कीर्ति चौधरी, (4) केदार नाथ सिंह, (5) मदन वात्स्यायन, (6) विजय देव नारायण साही, (7) सर्वेष्वर दयाल सक्सेना ।

इस प्रकार अज्ञेय न केवल प्रयोगवादी काव्य के परिलक्षित होते हैं, वरन् वे अनके प्रेरक और संचालक भी प्रतीत होते हैं।

(1) बौद्धिकता का अतिरेक– अज्ञेय की कवि भाव की अपेक्षा बौद्धिकता की अतिषयता से बोझिल है। इसीलिए उनकी कविता सामान्य पाठकों के पल्ले तो बिल्कुल नहीं पड़ती, प्रबुद्ध पाठक भी प्रायः सिर खुजाते रह जाते हैं। बौद्धिकता के अतिरेक से दबी–फँदी कविका एकउदाहरण द्रश्टव्य है–

मिट्टी से बनी, पानी से सिंची प्राणाकाष की प्यासी

उस अन्तहीन उदीघा को

तू अन्तहीन काल के लिए फलक पर टाँक दे–

क्योंकि यह माँग मेरी, मेरी, मेरी है कि प्राणों के

एक जिस बुलबुले की ओर मैं हुआ हूँ उदग्र वह. अन्तहीन काल तक मुझे खींचता रहे–

(2) घोर व्यक्तिवाद – अज्ञेय अपनी अहंवादिता के लिए सदा चर्चित रहे। वे व्यक्ति स्वतन्त्र्य पर सर्वाधिक बल देते थे। उनकी धारणाएँ व्यक्ति सत्य में अधिक निहित थीं। डॉ. क्ष्मीसागर वार्श्णेय के षब्दों में– श्स्वातन्त्र्य के साथ–साथ उनमें अहम् की प्रमुखता हो जाना भी अनिवार्य था और उन्होंने अपने झूठे या सच्चे (?) अहम् में लिप्त होकर और स्पश्टवादिता के प्रवाह में बहकर मार्यादा और अनुषासन का नियन्त्रण हटा दिया।श

स्वयं अज्ञेय ने अपने काव्य में ष्अहम्ष् की प्रमुख भूमिका स्वीकारते हुए लिखा है– श्अन्य मानवों की भाँति अहम् मुझमें भी मुखर है, आत्माभिवरक्ति का महत्त्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं। उनके अहम् की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण देखिये–

सूनी–सी साँझ एक

दवे पाँव मेरे कमरे में आयी थी।

मुझको वहाँ देख

थोडी–सी सकुचायी थी ।

(3) नये नये प्रयोगों की प्रवषत्ति– ऊपर बताया जा चुका है कि षेश ने छापायाची और प्रगतिवादी कविताओं की प्रतिक्रिया में ही प्रयोगवादी कविताओं का चलन षुरू किया। वे नये–नये प्रयोगों की ओर इसीलिए उन्मुख हुए।

प्रयोगवादी काव्य किसी एक ष्वादष् को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार जीवन गतिषील है, इसलिए किसी भी दर्षन में उसकी ष्गतिष् को बाधना असम्भव है। प्रयोगवादी काव्य

कला–पक्ष के क्षेत्र में भी किसी परिपाटी को मानने का पक्षधर नहीं है। उसके अनुसार प्रत्येक युग में भाशा तथा अलंकार आदि का रूप परिवर्तित हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। जीवन की नवीन प्रगति प्रत्येक क्षेत्र में नवीन प्रयोग चाहती है और इस बात की कोई सजग व्यक्ति उपेक्षा नहीं कर सकता।

नये भाव, नयी भाशा और नयी तकनीक के प्रयोगों की धुन में अनेक बार अज्ञेय अटपटे और अबूझ भी हो गये हैं देखिये–

अल्ला रे अल्ला!

होता न मनुश्य में होता कमरकल्ला द्य

रूखे कर्म जीवन में उलझता न पल्ला

चाहता न नाम कुछ

करता न काम कुछ बैठता निठल्ला– अल्ला रे अल्ला!

लगता है, बस ष्अल्लाष की बेतुकी, तुकों में ष्करमकल्लाष् ष्पल्लाष् षनिठल्लाष लगाकर कविता तैयार करना ही कवि का अभिप्राय है।

(4) क्षण का महत्व– अज्ञेय से पूर्व कविता या तो सम्पूर्ण जीवन की वाणी मानी जाती थी या फिर जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों को अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकारी जाती थी। अज्ञेय वर्तमान को क्षण–क्षण रीतता देखते हैं, इसीलिए किसी एक क्षण को षब्दबद्ध करने का प्रय ास करते हैं–क्षण अमोव है, इतना मैने

पहले भी पहचाना है, में

इसलिए साँझ को

नष्वरता से नहीं बाँधता ।

(5) यौन कुण्ठाओं का प्रकाषन हिन्दी कविता परम्परा से षालीन और षिश्ट रही है। हाँ, रीतिकाल से कुछ कवियों ने अवष्य कहीं वहीं षालीनता का उल्लंघन करके यौन कुण्ठाओं से कुस्ति चित्र उभारे हैं, जिनकी सभी आलोचकों ने ना की है। अज्ञेय सावन के मेमो का अंकन करते समय अपनी अलग प्रकार की यौन कुण्ठाओं से गिरकर जो चित्र उकेरते हैं, वह भदेसपन के लिए हुए हैं–

घिर गया नभ उमड़ आये मेघ काले,

भूमि के कम्पित उरोजी पर झुका– सा विषद ष्वासाहत, चिरातुर

छा गया इन्द्र का नीला वक्ष–

वज्र–सा, यदि तड़ित से सुलण हुआ–सा ।

आह, मेरा ष्वास है उतप्त

धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार–

प्यार है अभिषप्त–

तुम कहाँ हो, नारि?

(6) नये–नये उपमानों का प्रयोग– अज्ञेय चूँकि नये–नये प्रयोगों के पक्षधर हैं अतः उनकी कविता में नये से नये उपमानों का प्रयोग हुआ है। उनका कहना अगर मैं तुमको

ललाती सांझ की नभ की अकेली तारिका अब नहीं कहता, या षरद के भेर को

नीहार न्हाइ कुई टटकी कली चम्पे की इसीलिए, कभी वे प्रेयसी के ष्चौनष को ष्पहले भोर की दो ओस–बूँदी जैसा बताते हैं, कभीउसकी देह को ष्कनन चम्पे की कलीष कहते हैं। इन नये–नये उपमानों से अलंकारों के क्षेत्रमें जो काई जमा हो गई थी, वह अवष्य ही हटी।–

(7) प्रकृति के प्रति आत्मीयता– अज्ञेय ने चाहे जितना अनोख–अटपटा रास्ता अपनाने का प्रयोग किया हो, किन्तु प्रकृति से उनकी आत्मीयता एक सहज–सरस कवि सरीखी ही बनी रही। ष्हरी घास पर क्षण भरष, ष्बाबरा अहेरीष, ष्इन्द्र धनु रौंदे हुए थेष, ष्अरी ओ करुणा प्रभामयष, ष्नदी की बाँक पर छायाष आदि उनके काव्य संग्रहों के नाम भी उनके प्रकृति प्रेम का प्रमाण देते हैं। ष्कलगी बाजरे कीष, ष्पहला दोंगराष, ष्पानी बरसाष, ष्नदी के द्वीपष आदि अनेक ऐसी कविताएँ हैं, जिनसे प्रकृति के प्रति उनकी अटूट आत्मीयता का प्रमाण मिलता है। उनकी एक प्रकृतिपरक कविता देखिये–

पीपल की सूची डाल स्निग्ध हो चली

सिरिस ने रेषम की वेणी बाँध ली

नीम के भी बौर में मिठास देख

हँस उठी कचनार की कली ।

(8) भाशा के विविध प्रयोग– भाशा के क्षेत्र में अज्ञेय ने अपने को किसी एक भाशा रूप से बाँधकर नहीं रखा है। वे संस्कृतगर्भित षब्दों के साथ उर्दू के षब्दों का प्रयोग भी करते हैं और अंग्रेजी के षब्दों के प्रयोग से भी उन्हें हिचक नहीं दीख पड़ती। उन्होंने आंचलिक और देषज षब्दों के प्रयोग से भी परहेज नहीं किया। साथ ही उन्होंने मनमाने ढंग से षब्दो को ढाला है और उन्हें नया रूप प्रदान किया है।

अज्ञेय द्वारा प्रयुक्त षब्द द्रश्टव्य है–

संस्कृत षब्द– ष्वासाहत, चिरातुर, स्पर्षातीत, धारयित्री, स्पन्दन, मात्र, अप्रसूत, प्राणाकाष, जिजीविशा आदि।

देषज षब्द– अंजुरी, कलस, तिसूल, कौंध, छौने, लुनाई, कनवतियाँ, फुदकी, गोरियाँ, तेरस, खुदबुद, कसमसाती आदि।

अंग्रेजी षब्द– पेम, पार्क, कलेण्डर आदि।

निश्कर्श– अज्ञेय के भाव, भाशा, अलंकार आदि के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग भी किये और अटपटे भी। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उनके प्रयास से हिन्दी कविता का बासीपन कुछ तो हटा ही और वह नयी–नयी राहों पर चल पड़ी। उन्होंने परम्परागत विशयों से अलग हटकर साधारण विशयों को अपनी कविता के लिए चुना, इससे भी कविता में विशय विविध ाता आई। नैतिकता और षालीनता की सीमा को लाँघने के साहस या दुस्साहस ने भी आध ुनिक कविता को जहाँ भदेसपन की ओर ढकेला, वहीं कुछेक स्थलों पर नये सिरे से सोचने को भी विवष किया। कवि होने के साथ–साथ वे प्रयोगधर्मा कवियों के प्रेरक और पथ–प्रदर्षक भी बन गये, जिससे एक नव्य काव्य आन्दोलन चल पड़ा। अंज्ञेय अनवरत काव्य–आन्दोलनों से जुड़े रहे और आन्दोलित कविता करने में सुख पाते रहे। इससे कई बार वे कविता को अटपटी–अँध री राहों में ले गये, जिससे कविता का अधिक हित–साध ान न हो सका, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नयी राहों के अन्वेशण से हिन्दी कविता को कुछ नया भी मिला।

ष्अज्ञेयष का काव्य सौश्ठव रू अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष

प्रयोगवाद के प्रवर्तक अथवा जनक ष्अज्ञेयष जी का काव्य सत्यान्वेशण का काव्य है। जो लोग अज्ञेय को मात्र षिल्पी मानते हैं, वे भ्रम में हैं। वास्तव में उन्होंने षब्दात्मा में छिपे अर्थ को पहचान कर ही सत्यान्वेशण किया हैं उनके काव्य में परम्परा से हटकर कुछ नयी विषेशतायें, दृश्टिगोचर होती हैं। इन विषेशताओं को निम्नलिखित दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) अनुभूति या भाव पक्ष (ख) कला या अभिव्यक्ति पक्ष

अनुभूति – पक्ष (भाव पक्ष) सम्बन्धी विषेशतायें– अज्ञेय का काव्य अनुभूति पक्ष की दृश्टि से पर्याप्त समष्द्ध हैं उनके काव्य में मानव मन की गहन और सूक्ष्म अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। इस दृश्टि से उन पर मनोविष्लेशणवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है।

संक्षेप में, अज्ञेय के काव्य की अनुभूति (भाव), पक्षीय विषेशतायें निम्नलिखित हैं–

1. प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण– अज्ञेय रोमानी भावुकता को त्याग प्रेम की अभिव्यक्ति गहरे मनोवैज्ञानिक – धरातल पर करते हैं। वे प्रेम का चित्रण कृत्रिमता को व्याग पर नैसर्गिक रीति से करते हैं। इसीलिये वे वन–पर्वतों के जोड़े को देखकर कह उठते हैं–

ष्हाय तुम्हारी नैसर्गिकता, मानव नियम निराला है।

वह तो अपने से ही अपना प्रणय छिपाने वाला है।ष

अज्ञेय का विचार है कि सौन्दर्य–वर्णय की स्वीकृत भाशा प्रयोग – बहुलता से घिरकर पथरा गयी है। उसके उपमान मटमैलेपड़ गये हैं। और अब उनमें प्रेयसी की मादक छवि को प्रतिबिम्बित करने की ज्तमम षेश नहीं है। फलतः कवि नये प्रतीक उपमानों की खोज करता है–

या कि मर प्यार मैला है,बल्कि केवल यही

ये उपमान मैले हो गये हैं।

देवता इन प्रतीकों से कर गये हैं, कूच है–

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है

1असित्वबोध– व्यक्ति में जीवन के प्रति अनास्था आ जाने के कारण उसके मन में निजता के से की काल्पनिक आषंका भी घर कर यी है। नियति की क्रूरता से सहमे व्यक्ति की आत्म–रक्षा की भावना ही अन्त में अस्तित्ववाद के नाम से पुकारी जाने लगी ।अस्तित्ववाद मानव की महत्ता को स्थापना में अटूट आस्था रखता है। अस्तित्व–रोध की वेदना अज्ञेय को भी पीड़ित करती है, वे लिखते हैं कि–

ष्वेदना अस्तित्व की, अवसान की दुर्भावनायें

भव–मरण, उत्थान अति दुःख–सुख की प्रक्रियायें।

3. चिन्तनषीलतता– अज्ञेय आधुनिक–बोध से सम्पन्न एक सजग चिन्तनषील कवि हैं। उनकी भावपूर्ण कविताएं भी पाठक को कुछ सोचने और विवष कर देती है। षहिरोषिमाष कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

ष्मानव कारचा हुआ सूरज, मानव को भाप बना सोखकर गया।

पत्थर पर लिखी हुई यह जली हुई छाया, मानव की सखी है।ष

4. प्रकृति चित्रण– अज्ञेय के लोक साहित्य पर गाँवों, देहातों, षहरों, वीरानां तथा पवर्ततों, घाटियों आदि नमी का गहन प्रभाव पड़ा हैं ष्बावरा अहेरीष कविता, में प्रकृति और विधान को अखण्ड रूप में देखने की चेश्टा की गयी है। सत्य के चिन्तन, निरीक्षण और परीक्षण की प्रवृत्ति ने सौन्दर्य–बोध के स्तरों को प्रभावित किया है। नगण्य वस्तुओं के सौन्दर्य का भी विवेचन किया गया है–

ष्कौन – सा वह अर्थ जिसको अलंकृत कर नही सकती

यही पैरों तले की घास।श

5. रहस्यात्मकता– विराट आत्मा से तादात्म्य स्थापित करने के लिये कवि ने कहीं–कहीं अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त किया है। कवि प्रकृति के सन्नाटे में उस मौन के दर्षन करता है जिसने उसे आत्म–साक्षात्कार कराया है–

श्पर सबसे अधिक मैं

वन के सन्नाटे के साथ पौन हूँ! मौन हूँ—क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ, ?

जोड़ता है मुझको विराद से।

6. आस्था एवं भविश्य के प्रति विष्वास— अज्ञेय के काव्य में आस्था की जो प्रवष्त्ति उपलब्ध ा होती है, वह उत्कर्श और उन्नयन की भावनाओं को प्रेरित करती है। उनकी आस्था की प्रवष्त्ति दो रूपों में दृश्टिगोचर होती है, एक तो कवि के अभिन्न अंग के रूप में दूसरे सष्जन के उद्घोश के रूप में। अज्ञेय की आस्था ष्भोलीष है साथ ही गर्व से भरी हुई है, पर सरल होने के साथ—साथ यह आस्था कर्म—बल को प्रेरणा देने में पूर्णतः समर्थ है।

7. आस्था एवं संषय के स्वर— पूँजीवादी संस्कृति के काले बादलों के मध्य आस्था का चाँद खो गया था। पूँजीवाद ने मानवता को कुचल दिया था। उच्च वर्ग के प्रति किया यगा विद्रोह असफ हो गया था। विद्रोह की इस असफलता ने व्यक्तियों को निरष बना दिया था। साहित्य में भी अनास्था, संषय एवं निराषा के स्वन तीव्र हो गये थे, एक उदाहरण देखिये—

श्मैं ही हूँ, वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता—या फिर ••••••• मैं हूँ।किसी बीते साल के

सीले कलेंडर की एकबस एक तारीख जो हर साल आती है।

8. प्रखर युगबोध— अज्ञेय में प्रखर युग—बोध का भाव दृश्टिगोचर होता है। उन्होंने अनतरल में बहती उद्दाम एवं अप्रतिहत युगधारा को निरन्तर पहचाना है, किन्तु स्वयं इस धारा में वे कही बहे नहीं हैं। यंत्र—युग की व्यवस्था से उत्पन्न कुण्ठा की अज्ञेय जी ने चित्रित किया है। देखिये ष्धड़ धड़ाहटष को सुनकर घुटन से स्याह पड़ी एक षाम का दृष्य—

सूनी सी साँझ एक, दबे पाँव पर मेरे कमरे में आई थी।

9. वेदना की नवीन व्याख्या— अज्ञेय की दुःख सम्बन्धी रचनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि वे भोक्ता को अपेक्षा चिन्तक ही अधिक रहे हैं। उन्होंने दर्द का उतना भोगा नहीं है, जिसतना कि सोचा है। सूली पर लटकते ईसा अपना अन्तिम वरदान भी उच्छष्खल सैनिकों के ही हित में माँगते हैं। ईसा की यह यातना अज्ञेय के लिये आदर्ष बन जाती है—

4. ष्ईसा की सब सहने वाली, चिर जागरूक रहने वाली।

यातना तुझे आदर्ष बने, कटु सुन मोठा कहने वाली।

10. क्षण के महत्व का बोध— अस्तित्व की अस्थिरता के कारण ही व्यक्ति को क्षणों का महत्व स्वीकार करना पड़ा। अज्ञेय जी ने विषिश्ट क्षणों की अनुभूतियों को गहराई के साथ व्यंजित करने पर विषेश बल दिया। ऐसे क्षणों में हमारी मनः स्थिति जैसी होती है, वैसी भविश्य में

फिर की नहीं होती है। झील के निर्जन किनारे पर बिताये हुए भव्य––क्षण की अनूभूति कवि को दुबारा नहीं होती है। देखिये कवि के षब्दों में––

ष्झील का निर्जन किराना, और वह सहसा छाये सन्नाटे का

एक क्षण हमारा, वैसा सूर्यासत फिर नहीं देखा।

11. सामाजिक आग्रह– आलोचक अज्ञेय कविता में सामाजिक तत्व को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका आरोप है कि अज्ञेय की कविता व्यक्ति प्रधान है– अति वैयक्तिक है। किन्तु जिस वाद का आरोप अज्ञेय पर लगाया गया है वह वास्तव में यूरोप में पनपा व्यक्तिवाद ह । अज्ञेय का व्यक्ति वाद यूरोप . जैसा संकीर्ण नहीं है। वह षुद्ध भारतीय है और भारतीय वेदान्त के महावाक्य ष्अहं ब्रह्मास्मिष् से परिचालित है। ष्नदी के द्वीपष् नामक कविता में अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि हम नदी – रूपी समाज के व्यक्ति रूपी द्वीप ह। देखिये कवि के षब्दों में––

ष्हम नदी के द्वीप हैं।

हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर श्रोतस्विनी बह जाय

वह हमें आकार देती है।

माँ है वह ! हैं इसी से हम बने हैं।

12. व्यंग्यात्मकता– अज्ञेय जी ने सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करने के लिये व्यंग्य का प्रयोग किया है। यद्यपित व्यंग्य कवि की सहजवषत्ति नहीं है। फिर भी उनकी कुछ रचनाओं में व्यंग्य की धार बड़ी पैनी है। जैसे– ष्साँप के प्रतिष् या ष्सागर और षिमिटष् रचनायें ऐसी ही हैं। आज के सभ्य कहे जाने वाले मनुश्य के प्रति उनका सषक्त व्यंग्य देखिये–

ष्साँप ! तुम सभ्य तो हुये नहीं, नगद में बसना भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूछें (उत्तर दोगे), तब कैसे सोखा डसना, विश कहाँ पाया?

13. विद्रोहात्मकता– अज्ञेय के काव्य में कुन एवं धनी वर्ग के प्रति तीव्र विद्रोह और पददलितों के प्रति सच्ची सहानुभूति के दर्षन होते हैं। वे मानते हैं कि दुःखी और सुखी की कोई अन्तिम श्रेणियों जीवन में नहीं होती है। आततायी परिवेष को उन्होंने पूरे दम्भ के साथ ललकारा है–

ठहर, ठहर आततायी। जब सुन लेमेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।

14. व्यक्तिवादी विचार– अज्ञेय में ष्अहंष् बाब उग्र था। वे सोचते थे कि समाज–व्यवस्था और परम्परा से टूट कर भी व्यक्ति अपने अस्तित्व का माली–भाँति निर्वाह कर सकता है। वे व्यक्ति के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास का हनन नहीं करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने बाधक सामाजिक परिस्थितियों के प्रति विरुद्ध आवास उठायी। यथा–

ष्हमे दुःख है, हमें क्लेष, उसे जला डालेगी ज्वाला ।

पद—दलितों के डर से उठकर सारा अम छा लेगी वाला।।ॽ

15. कला—संयम— अज्ञेय का प्रयोगवादी काव्य प्रयोगवादी को विषेशताओं से ओत—प्रोत है। अज्ञेय काव्य के कथ्य, षिल्प काव्य धारा के प्रणेता हैं। उनके सम्पूर्ण काव्य पर नये भाशा प्रयोग की छाप है। उन्होंने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में नये—नये प्रयोग करके नये मानदण्ड स्थापित किये हैं। कविता के कला क्षेत्र में भी भाशा एवं षिल्प— सम्बन्धी प्रयोग भी अज्ञेय ने किये। अज्ञेय के अनुसार षायद एक षिल्प से एक ही सत्य को अभिव्यक्त किया जा सकता था और सत्य अनेक थे। अतः इनसत्यों को अभिव्यक्ति के लिये अनेक षिल्प रूपों की आवष्यकता थी अथवा यह कहा जायेकि प्रत्येक षिल्प एक सत्य को अभिव्यक्त करके पुराना पड़ जाता था। अतः नित नये षिल्पोंकी खोज हुई। अज्ञेय का षिल्प कौषल व्य ापक चिन्तन से गर्भित है। अतः उनकी कलाकाव्य की आत्मा को तिरस्कृत नहीं करती गणित सेन्स प्रतीति को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुआ है।

निश्कर्श— उपर्युक्त विवेचन से स्पश्ट है कि अज्ञेय जी प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक और नई कविता के प्रेरणा श्रोत रहे है। उनका काव्य—सर्जन उनके सहयोगियों में सर्वोपरि है।

(ए) कलगी बाजरे की कविता का मूल भाव

अज्ञेय हिन्दी कविता के प्रयोगवादी कवियां में अग्रगण्य हैं। उन्होंने हिन्दी में आधुनिकता की नये रू सिरे से व्याख्या की है और हिन्दी कविता को एक नये सौन्दर्य—बोध से सम्पन्न बनाया है। प्रस्तुत कविता ष्कलगी बाजरे कीॽ भी उनके इसी प्रयास को एक क्रम है। वे यह मानते हैं कि प्रत्येक युग में कवि को अपनी सहज अभिव्यक्त के लिये एक नई काव्य—भाशा की आवष्यकता होती है, जिसमें नये—नये उपमानों के प्रयोग से काव्य में नवता (नवीनता) आ जाती है। यद्यपि उपमेय नहीं बदलते हैं, किन्तु उनको देखने, समझने एवं अनुभूति करने का तरीका बदल जाता है। इसीलिए नये—नये उपमानों की आवष्यकता होती है। इनके प्रयोग से काव्य के प्रचलित और रूढ़ कथ्य में एक नई ताजगी आ जाती है। कवि का यह मानना है कि जिस प्रकार किसी बासन (बर्तन) को बार—बार घिसने व माँजने से उन पर चढ़ा हुआ मुलम्मा छूट जाता है, उसी प्रकार प्राचीन काल से प्रयोग किये जाते हुये उपमान भी सच्ची संवेदना को जगा नहीं पाते हैं। फलतः कविता निश्प्राण एवं सौन्दर्य हीन होकर बोझिल —सी प्रतीत होने लगती है। इस सम्बन्ध में कवि के षब्द दृश्टव्य हैं—

ष्बल्कि केवल यही

ये उपमान मैले हो गये हैं।

देवता इन प्रतीको के कर गये हैं कूचा

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

प्रस्तुत कविता में कवि अपने उक्त दृश्टिकोण के साथ अपनी प्रिया को बाजरे की ष्कलगीॽ की उपमा से अलंकृत करता हुआ कहता है कि हे प्रिये! अगर मैं तुमको सांयकालीन आकाष मण्डल की अकेली तारिका या षरदकालीन भोर की ओस में भगी हुयी कुई या चम्पे की

ताजी कली आदि उपमानों से अलंकृत न करके हवा में लहलहाती हुयी बाजरे की छरहरी ष्कलगीष को या फिर बिछली घास की उपमा दूँ, तो तुम यह न समझना कि मेरा प्यार मैला हो गया है या मेरा हृदय भाव षून्य हो गया है। ये प्राकृतिक नये–नये उपमान ही मेरे सच्चे प्यार के प्रतीक हैं, इन्हीं प्रतीकों में सृश्टि का सम्पूर्ण विस्तार और ऐष्वर्य समाहित है। इस सन्दर्भ में कवि की ये पंक्तियाँ हैं–

कहीं सच्चा, कही प्यार,

एक प्रतीक

बिछली घास है

दृश्टव्य या षरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर

दोलती कलगी अकेली

बाजरे की।

इतना ही नहीं, कवि का यह स्वानुभूत तथ्य है कि ये नये–नये प्राकृतिक उपादान अधिक ताजगी प्रदान करते हैं और एक नई स्फूर्ति का संचार करते हैं, ऐसा लगता है कि इन उपमानों में खुली हुयी वीरानगी सिमट कर घनी हो गयी है और समर्पण का भाव इनमें समा गया है। अतः स्पश्ट है कि षब्दों का चमत्कार उत्पन्न करने वाले उपमानों की अपेक्षा ये नये प्राकृतिक उपमान अधिक सार्थक और प्रभावी हैं।

नाच कविता का सांराष

उत्तर– कवि कहता है कि समाज की पूँजीवादी प्रवषत्तियों के फलस्वरूप आज समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया है। एक और समाज में अमीर पूँजीपति वर्ग है तो दूसरी ओर उपेक्षित षोशित श्रमिक मणपूर परी है। कोपों को चीन में ही नाच कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

वर्णधर्म

कवि के अनुसार उक्त दोनों वर्ग दो खम्भे हैं, इन दोनों वर्गों के बीच में व्याप्त वर्ग संघर्श दोनों खम्भों से बँधी हुयी, तनी रस्सी है और कविता द्वारा वर्ग संघर्श को विशय बना कर रची गयी कविता ही तनी रस्सी पर नेट द्वारा किया गया नाच है।

कवि कहता है कि आज के आर्थिक युग में वर्ग संघर्श समाज का बहुचर्चित विशय है क्योंकि समाज में उपेक्षित, षोशित एवं पीड़ित व्यक्ति अधिक है। पूँजीपति अमीर लोगों ने धन के बल पर सत्ता प्राप्त कर ली है। इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अमीर वर्ग हीषासन कर रहा है और गरीब वर्ग का षोशण कर रहा है। इस प्रकार वर्ग संघर्श समाज की चर्चा का प्रमुख विशय बन गया है, सभी का ध्यान इसी ओर केन्द्रित है। ऐसे वातावरण में वर्ग संघर्श को विशय बनाकर रची गयी मेरी कविता सभी को उसी प्रकार आकर्शित कर रही है जैसे कि तीखी रोषनी के बीच में दो खम्भों के मध्य तनी रस्सी पर किया जाने वाला नाच बरबस ही लोक–लोचनों को आकृश्ट कर लेता है।

आगे कवि कहता है कि मैं जिन खम्भों के बीच बंधी हुयी रस्सी पर जो नाच नाचता हूँ अर्थात् मैं अमीर और गरीब वर्ग के बीच व्याप्त जिस वर्ग संघर्श को अपनी कविता का विशय बनाकर काव्य रचना करता हूँ, वह आज के समाज का बहुचर्चित विशय है। इस विशय पर विभिन्न विचारकों, चिन्तकों, समाज—सुधारकों, कवियों, मनीशियों एवं राजनेताओं द्वारा विविध प्रकार के विचार, मत एवं तयि प्रकट किये जा रहे हैं। इससे मेरी कविता उसी प्रकार आलोकित हो उठी है, जिस प्रकार रोषनी के पड़ने से नट पका नाट जगमगा उठता है। अर्थात् मेरी कविता की प्रसिद्धि का यही कारण है कि इसका प्रतिपाद्य विशय आज का बहुचर्चित विशय है।

अन्त में कवि कहता है कि उन खम्भों की बीच बँधी उस रस्सी पर उस रोषनी में मैं सचमुच नट की तरह नाच नहीं नाचता हूँय अर्थात् जिस प्रकार नट दूसरों का मनोरंजन करके पैसा कमाने के लिये रस्सी पर नाच नाचता है, उसी प्रकार में दूसरों का मनोरंजन के लिये वर्ग संघर्श को कविता का विशय बनाकर कविता की रचना नहीं करता है। आषय यह है कि मेरी कविता का उद्देष्य मनोरंजन न होकर समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण करना, यथार्थता का बोध कराना और उसमें परिवर्तन लाना

उपर्युक्त विवेचन से स्पश्ट है कि कवि अपनी कविता के माध्यम से समाज की वस्तुस्थिति का बोध कर एक ओर पूँजीपतियों के हृदय पर मार्मिक चोट करता है तो दूसरी ओर षोशित वर्ग में संघर्श की चेतना जगाता है। सामाजिक परिवर्तन ही उसकी कविता का प्रमुख उद्देष्य है। इस प्रकार कवि ने नट के नाच और अपनी काव्य—रचना के उद्देष्य में भिन्नता प्रतिपादित की है।

(1) अज्ञेय : व याख्यात्मक भाग

नाच एक तनी हुयी रस्सी है जिस पर मैं नाचता हूँ।

जिस तनी हुयी रस्ती पर मैं नाचती हूँ, वह दो खम्भों के बीच है।

रस्सी पर मैं जो नाचता हूँ, वह एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक का नाच है।

दो खम्भों के बीच जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ ।।

उस पर तीखी रोषनी पड़ती है, जिसमें लोग मेरा नाच देखते हैं।

न मुझे देखते हैं जो नाचता है

न रस्सी को जिस पर से नाचता हूँ, न खम्भों को जिस पर रस्सी तनी है। न रोषनी को ही जिसमें नाच दीखता है, लोग सिर्फ नाच देखते हैं द्यद्य सन्दर्भ— प्रस्तुत अवतरण नई कविता के सषक्त कविवर अज्ञेय जी द्वारा विरचित ष्नाचष षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है।

प्रंसग— प्रस्तुत अवतरण में कविवर अज्ञेय जी ने समाज को अमीर और गरीब दो वर्गों में विभाजि कर उनके मध्य अन्तराल को विशय बनाकर की गयी अपनी काव्य—रचना को नट के नाच के प्रतीक के प्रतीक के रूप में प्रतिपादित किया है।

व्याख्या — कवि कहता है कि समाज की पूँजीवादी प्रवषत्तियों के फलस्वरूप आज समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया है। एक ओर समाज में अमीर पूँजीपति वर्ग है तो दूसरी ओर

उपेक्षित षोशित श्रमिक मजदूर गरीब वर्ग है। यह वर्गभेद ही वर्गसंघर्श को जन्म देता है। इन दोनों वर्गों के बीच में व्याप्त वर्गसंघर्श हो नई कविता का प्रमुख प्रतिपाद्यं है।

कवि के अनुसार उक्त दोनों वर्ग दो खम्भे हैं, इन दोनों वर्गों के बीच में व्याप्त वर्ग संघर्श दोनों खम्भों से बँधी हुयी, तनी रस्सी है और कवि द्वारा वर्ग संघर्श को विशय बनाकर रची गयी कविता ही तनी रस्सी पर नट द्वारा किया गया नाच है।

कवि कहता है कि आज के आर्थिक युग में वर्ग संघर्श समाज का बहुचर्चित विशय है क्योंकि समाज में उपेक्षित, षोशित एवं पीड़ित व्यक्ति अधिक है। चन्द पूँजीपति अमीर लोगों ने धन के बल पर सत्ता प्राप्त कर ली हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अमीर वर्ग ही षासन कर रहा है और गरीब वर्ग का षोशण कर रहा है। इस प्रकार वर्ग संघर्श समाज की चर्चा का विशय बनाकर रची गयी मेरी कविता सभी को उसी प्रकार आकर्शित कर रही है जैसे कि तीखी रोषनी के बीच में दो खम्बों के मध्य तनी रस्सी पर किया जाने वाला बरबस ही लोक लोचनों को अकृश्ट कर लेता है।

आगे ंिकहता है कि उक्त नाच को देखते समय लोग तन्मय हो जाते हैं कि वे स समय न तो नाचने वाले को देखते है, न रस्सी को देखते हैं, न खम्भों को देखते हैं और न रोषनी को देखते हैं, बल्कि लोग केवल नाचे देखते हैं।

कवि का आषय यह है कि इसी प्रकार आज की सामाजिक परिस्थितियाँ भी बहुत कुछ ऐसी ही हैं। आज लोग वर्ग संघर्श को प्रतिपाद्य बनाकर रची कविताओं को केवल सुनते हैं पढ़ते हैं और आनन्द–मग्न हो जाते हैं, कोई भी व्यक्ति अमर व गरीब वर्ग की सामाजिक–आर्थिक या राजनैतिक स्थिति को न तो देखता है और न समझता है। दोनों वर्गों के मध्य व्याप्त वर्ग संघर्शो के कामों पर विचार भी नहीं किया जाता है। वर्ग संघर्श को प्रतिमाहा र कविता रचने वाले कवि की मनः स्थिति एवं उसके पीछे देवों का ओर भी ध्यान नहीं दिया जाता है। लोग तो केवल कविता पढ़कर या सुनकर ष्मनोरंजन करते हैं। यही कारण है कि कविता का उद्देष्य पूरा नहीं होता है और आज भी वर्ग संघर्श की भावना बलवती है।

विषेश– (1) समाज में व्याप्त वर्ग संघर्श के कारणों को निरूपित किया गया है। (2) कविता के उद्देष्य को प्रतिपादित किया है। (3) समाज की मनोरंजनात्मक प्रवषत्ति को अभिचित्रित किया गया है । (4) भाशा–षैली सरल, सहज, व्यावहारिक एवं सुबोधमयी है। (5) प्रतीक योजना सषक्त एवं व्यावहारिक है।

(1) जितना तुम्हारा सच है

कहा सागर ने रू चुप रही।

मैं अपनी अबाधता जैसे सहता हूँ, अपनी मर्यादा तुम सहो ।

जिसे बाँध तुम नहीं सकते, उसमें अखिन्न मत बहो ।

मौन भी अभिव्यंजना है जितना तुम्हारा सच है, उतना ही कहो ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष् में संकलित षजितना तुम्हारा सच हैष् षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर अज्ञेय जी हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कवि ने प्रकृति के माध्यम से मनुश्य को मर्यादित मानव जवन के आदर्षो के साथ जीवन यापन करने की प्रेरणा दी है।

. व्याख्या– कवि प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से मनुश्य को मर्यादित मानव–जीवन यापन करने की प्रेरणा देता हुआ कहता है कि जिस प्रकार समुद्र मौन भाव से निरन्तर अपना कार्य करता रहता है और अबाधित रूप से उसमें हिलोरें उठती रहती हैं, उसी तरह मनुश्य को अपनी मार्यादा में रहकर बिना विचलित हुये चुपचाप अपना कार्य करते रहना चाहिये, क्योंकि जिस विचार को बाँधा नहीं जा सकता है, उसके प्रति हमें अप्रसन्नता भी व्यक्त नहीं करनी चाहिये। चुप रहना भी एक अभिव्यक्ति है, जिस सच्चाई को तुम देखते हो, अनुभूति करते हो और समझते हो, उसी को तुम्हें कहना चाहिये, अर्थात् अभिव्यक्ति अनुभूतिजन्य होनी चाहिये, यही यथार्थता की सच्ची कसौटी है। नदी का भी यही सन्देष है कि चुप रहना ही सार्थक है। जिस रूप की चमक तुम्हारी आँखों की ज्योति से अधिक है, उसका बूँघट तुम्हें नहीं खोलना चाहिये अन्यथा तुम्हारी आंखों की ज्योति मलिन पड़ जायेगी, अर्थात तुम्हें अपनी कार्यता से अधिक कार्य नहीं करना चाहिये।

विषेश– (1) आत्मिक जीवन जीने की प्रेरणा दी गयी है। (2) मानव प्रकृति का यथार्थवादी चित्रण है। (3) प्रकृति का मानवीकरण हृदयस्पर्षी है। (4) भाशा प्रतीकात्मक होकर भी सहज और सुबोधमयी है।

(1) हरी बिछली घास कलगी बाजरे की

दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुम को, ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका ।

अब नहीं कहता, या षरदा के भोर की नीहार न्हायी कई ।

बंदज कली चम्पे की, वगैरह तो नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है।

या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यहीः ये उपमान मैले हो गये हैं।

देवता इन प्रतीकों क कर गये हैं कचा

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा टूट जाता है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक पर्वाचीन हिन्दी काव्यष् में संकलित ष्कलगी बाजरे कीष् षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता कविवर सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ष्अज्ञेयष् जी हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण में प्रयोगवादी कविवर अज्ञेय जी ने आधुनिक सन्दर्भों में प्राचीन उपमानों की निरर्थकता एवं नवीन उपमानों के प्रयोग की महत्ता को प्रतिपादित करते हुये अपनी प्रिया के बाजरे (एक विषेश प्रकार का अनाज) के पौधे की ष्कलगीष् की उपमा से अलंकृत किया है।

व्याख्या— कवि अपनी प्रिया को नूतन उपमानों से उपमित करता हुआ कहता है कि हे प्रिये! यदि मैं अब तुम्हें सांयकालीन लालिमायुक्त आकाष —मण्डल में सुषोभित होने वाली ष्अकेली तारिकाष् कहकर नहीं पुकारता हूँ अथवा षरद—काल की प्रातःकालीन ओस से नहायी हुयी ष्कुईष् को उपमा से उपमित नहीं करता हूँ अथवा चम्पा पुश्प की ष्ताजी कलीष् कह कर सम्बोधित नहीं करता हूँ अथवा इसी प्रकार अन्य पारम्परति उपमानों से तुम्हारे सौन्दर्य की उपमा नहीं देता हूँ, तो तुम्हें यह कदापि नहीं सण चाहिए कि मेरा हृदय तुम्हारे सौन्दर्य के प्रति भावहीन हो गया है अथवा मेरे हृदय में आकर्शक का वेग कम हो गया है अथवा हमारा प्यार मलिन पड़ गया है।

कवि के कहने का आषय यह है कि हे प्रिये। आज हमारे पयार का वेग पहले की अपेक्षा अधि क है और तुम्हारा सौनदर्य भी मेरे हृदय में नयी—नयी भावनाओं एवं कल्पनाओं को जमा रहा है, जिनकी अभिव्यक्ति इन पारम्परिक उपमानों से नहीं हो पा रही है। ऐसा लगता है कि जिस प्रकार से बासन (बर्तन) को बार—बार घिसने व माँजने से उसका चमकीला मुलम्मा छूट जाता है और बासन मलिन पड़ जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे सौन्दर्य के लिये प्रयोग किये जाने वाले ये पारम्परिक उपमान बार—बार प्रयोग करने से अथवा प्राचीन कालसे निरन्तर प्रयोग किये जाने के कारण मलिन पड़ गये हैं। वे तुम्हारे सौन्दर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में सक्षम नहीं हैं क्योंकि इन प्रतीकों के देवता अब इन में प्रतिश्ठित नहीं रह गये हैं अर्थात् इनक देवत्व षक्ति लुप्तप्राय सी हो गयी है। इसीलिये अब ये पारम्परित उपमान आकर्शणहीन होकर आज की कविता के लिये अनुपयोगी हो गये हैं। अतः कवि का यह मानना है कि उपमेय तो नहीं बदलते हैं लेकिन समय के अनुरूप अभिव्यक्ति कीपूर्णता के लिये नये—नये उपमानों का प्रयोग करने से काव्य में नवता आती है और काव्य के प्रचलित एवं रूढ़ कक्य की अभिव्यक्ति में एक नयी ताजगी का संचार होता है। यही कारण है कि कवि को अपनी प्रिया की सौन्दर्यानुभूति के लिये ष्हरी बिछली घासष् और हवा में लहलहाती हुयी बाजरे का ष्छरहरी कलगीष् की उपमा अधिक सार्थक प्रतीत होती है । इसीलिये वह इन्हीं उपमानों से उसे अलंकृत करता है।

कवि उक्त नये प्राकृति उपमानों से अपनी प्रिया को उपमित कर यह अभिव्यंजित करना चाहता है कि उसका सौन्दर्य आज भी हरी बिछली घास की तरह कोमल, सरस, सुगन्धि ात एवं ताजगी लिये हुये है तथा उसमें समर्पण का भाव निहित हैं कवि कहता है कि हे प्रियो यदि तुम्हें हवा में लहलहाती बाजरे की ष्छरहरी ष्कलगीष् की उपमा दूँ तो इसे मेरा भाव यह हैं कि तुम्हारा सौन्दर्य नैसर्गिक है, जिसकी अनुभूति प्राकृतिक परिवेष में ही की जा सकती है, ष्बाजरेष् की तरह तुम्हारा सौन्दर्य पुश्टिवर्धक है और तुम्हारा छरहरा ष्यामल षरीर ष्छरहरी कलगी की तरह षोभायमान हो रहा है। इस प्रकार कवि ने इन नये—नये प्राकृतिक उपमानों के द्वारा नवीन भावों की अभिव्यक्ति की है।

विषेश— (1) काव्य में नवीनता का संचार करने के लिये नये—नये प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग करने की प्रेरणा दी गयी है। (2) पारम्परिक उपमानों की आकर्शणहीनता को

प्रतिपादित किया गया है। (3) प्रेम एवं सौन्दर्यानुभूति की हृदयस्पर्षी अभिव्यंजना की गयी है। (4) भाशा का षब्द – विन्यास एवं लालित्य अनुपम है। (5) षैली सरस एवं अभिव्यंजना–प्रधान है। (6) मुक्त छन्द का सौन्दर्य दर्षनीय है।

इकाई – 16 सुभद्रा कुमारी चौहान समीक्षात्मक भाग

जीवन परिचय – हिन्दी साहित्य में देष–प्रेम एवं राश्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण काव्यकारों में सुभद्रा कुमारी चौहान का विषेश स्थान रहा है। उनकी कविताओं में मातष्त्व एवं नारीत्व की भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

जीवन परिचय – सुभद्रा कुमारी चौहान का जान सन् 1904 में नागपंचमी के दिन प्रयाग के निहालपुर नामक मुहल्ले में हुआ था। इनके पिता ठा. रामनाथ सिंह चौहान विद्या– प्रेमी एवं ईष्वर भक्त थे। वे आधुनिक संस्कारों वाले सुषिक्षित व्यक्ति थे। सुभद्रा कुमारी की प्रारंम्भिक षिक्षा प्रयाग के ही क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में सम्पन्न हुई। सन् 1919 में पन्द्रह वर्श की अवस्था में इनका विवाह जबलपुर के प्रतिश्ठित वकील ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ सम्पन्न हो गया। विवाह के उपरान्त वह अपने पति की अज्ञानुसार वाराणसी के थिय ोसोफिकल स्कूल के अध्ययन करने गई। लेकिनअसहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर आपने अपनी पढ़ाई और पति ने वकालत छोड़ दी।इसके बाद दोनों पति–पत्नी पूरी तरह देष और समाज के लिये समर्पित हो गये। देष के

स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्होंने अनेक बार जेल की यात्रायें कीं। देष की स्वतन्त्रता के पष्चात् ये मध्य प्रदेष विधान सभा की सदस्या मनोनीत हुई। जबलपुर में रहते हुये श्री माखनलाल चतुर्वेदी को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से आपकी साहित्य–साधना विकसित हुई। इस प्रकार ये एक यषस्वी कन्या, समर्पित पत्नी ममतामयी माँ, उदार मित्र, सजग स्फतिवान नारी, धैर्यमयी कुषल ग्रहस्थिन, निश्ठावान राजनीतिक कार्यकर्त्ता, उदात्त मनोस्पर्षी

कहानीकार व भाव – प्रवण कवयित्री के रूप में हिन्दी जगत में प्रतिश्ठित हुयीं। 12 फरवरी, सन् 1958 को विधान सभा जाते हुए एक मोटर दुर्घटना में आपकी मष्त्यु हो गयी।

रचनायें– सुभद्रा कुमारी चौहान ने गद्य और पद्य दोनों में रचनायें की हैं, जो तीन रूपों में उपलब्ध होती हैं–– काव्य– मुकुल, झांसी की रानी, त्रिधारा ।

कहानी संग्रह– बिखरे मोती, उन्मादिनी, सीधे–सादे चित्रा

बालोपयोगी सभा के खेल।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान को सन् 1931 में ष्मुकुलष् और ष्उन्मादिनीष् कृतियों पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रसिद्ध ष्सेक्सरिया पुरस्कारष् दो बाद प्रदान किया गया।

सुभद्रा कुमारी चौहान की राश्ट्रीय भावना अथवासुभद्रा कुमारी चौहान रू राश्ट्र चेतना के स्वर

सुभद्रा कुमारी चौहान बीसवीं सदी के भारतीय साहित्य की सर्वाधिक यषस्वी कवयित्रियों में से एक हैं। उनकी कवितायें जाने–पहचाने मानव–व्यापारों के अनुपम चित्र हैं तो दूसरी ओर अदम्य राश्ट्र–प्रेम, त्याग व बलिदान की भावना और अतीत का गौरव गान के रूप में संघर्शमयी राश्ट्र– चेतना के दर्षन होते हैं, जिसकी विवेचना निम्नानुसार दृश्टव्य है–

(1) स्वदेष प्रेम – सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में मुख्य रूप से स्वदेष प्रेम तथा राश्ट्रीय भावनाओं का चित्रण हुआ है। उनकी राश्ट्रीय निश् का प्रमाण वह घटना देती है जिसमें उन्होंने कारागार में रहते हुये भूख से रोती बेटी को बहलाने के लिए अरहर दलने वाली महिला कैदियों से अरहर की दाल लेकर तने पर भून कर खिलाई थी। वे पूरी तरह देष और समाज के लिये समर्पित थीं इसीलिये उन्होंने गाँधी जी के सहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर अपनी पढ़ाई बीच में दोड़ दी और वे आजादी की लड़ाई में सक्रिय रूप से योगदान देने लगीं। उन्होंने अपने स्वदेष–प्रेम को व्यक्त करते हुये कहा था कि मेरे मन में तो मरने के बाद भी इस धरती को छोड़ने की कल्पना भी नहीं है। मैं चाहतीहूँ, और ऐरी एक समाधि हो, जिसके चारो ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहे,स्त्रियों गाती रहें, कोलाहल होता रहे।

(2) त्याग और बलिदान की भावना– सुभद्रा की रचनायें वीरतापरक हैं। उनमें एक ओर तो इतिहास के वीर पुरूशों का स्मरण है तो दूसरी ओर स्वाधीनता के लिये सर्वस्य न्यौछावर करने का आह्वान है। आपकी कविताओं में जन–चेतना में जादुई स्कूण जगाने की क्षमता है। इस दृश्टि से ष्वीरों का कैसा हो बसन्तष और ष्झाँसी की रानीष दोनों रचनायें विषेश रूप से महत्वपूर्ण हैं। ष्वीरों का कैसा हो बसन्तष रचना में कवयित्री ने बसन्तकालीन मादकता के भोग को त्यागकर वीरोचित भाव से बसन्त शि की खुषी को व्यक्त करने की प्रेरणा दी है।

कवियित्री की निम्नलिखित पंक्तियों दृश्टव्य हैं, जिनमें हिमालय अपने वीरों को पुकार रहा है–

आ रही हिमालय से पुकार है उदधि गरजता बार–बारप्राची, पष्चिम, भू–नभ अपार–सब

पूँछ रहे हैं दिग–दिगन्तवीरों का कैसा हो बसन्त?

इसी प्रकार ष्झाँसी की रानीष कविता में रानी लक्ष्मीबाई के त्याग और बलिदान की ज्योति प्रज्जवलित है, उनकी समाधि आज भी बलिदान की प्रेरणा देती है–

ष्इस समाधि में छिपी हुयी है, एक राख की ढेरी ।

जलकर जिसने स्वतंत्रता की, दिव्य आरती फेरी

(3) अतीत का गौरव गान सुद्धा कुमारी जी ने भारतीयों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा देने के साथ—साथ भारत के गौरवषाली अतीत का भी गौरव गान किया है। वे लंका और कुरूक्षेत्र के माध्यम से भारत के अतीत के वैभव का वर्णन करते हुये कहते हैं—

ष्कह दे अतीत अब मौन त्याग, लंके, तुझमें क्यों लगी आग ? ऐ कुरूक्षेत्र ! अब जाग

जाग, बतला अपने अनुभव अनन्त,वीरों का कैसा हो बसंत?

उपर्युक्त विवेचन से स्पश्ट है कि कुवयित्रि सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविताओं के द्वारा नवयुवकों में सोई हुयी राश्ट्रीय चेतना को जाग्रत किया है। उन्होंने तन एवं मन से राश्ट्र और साहित्य की सेवा की है। भारतवर्श के स्वतंत्रता संग्राम में उनका अमूल्य योगदान रहा है, जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य की उत्तर—छायावादी काव्य—धारा में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की नारी चेतना

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान मूलरूप से कवयित्री थी। उनकी रचनाओं में राश्ट्रीय, सांस्कृतिक, ऐतिहांसिक, गौरवमयी पष्ठभूमि में सामयिक जीवन को जगाने का आह्वान ही उनकी कविताओं में राश्ट्रीयता का अबाध स्वर होने से वीरता तथा घरेलू जीवन की विविध भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक दृश्टिगोच होता है।उनकी नारी भावनाओं की विवेचना निम्नलिखित षीर्श — बिन्दुओं के अन्तर्गत दृश्टव्य है—

(1) आत्म—स्वातंर्त्य की छटपटाहट— सुभद्रा जी आत्म—स्वातंर्त्य की छटपटाहट से भरी हुयी थी। उनकी स्वतंत्रता का लक्ष्य अंग्रेज विहीन राश्ट्र की स्थापना मात्र न था। ये नारी को स्वस्थ और समुन्नत राश्ट्र की विधायिका षक्ति मानती थी। इसीलिये वे नारी स्वतंत्रता की पक्षधर थीं।

(2) नारी चेतना की सम्पूर्णता सुभद्रा जी की कवितायें नारी चेतना की सम्पूर्णता से समन्वित हैं। इसीलिये उनकी गद्य—पद्य की रचनाओं में स्त्रियाचित सागर की—सी गहराई तथा आकाष जैसी ऊंचाई एवं धैर्य और तद्नुरूप चिन्तन का आवेग दिखाई देता है। उनकी कविताओं में नारी का प्रणय—निवेदन है और प्रिय और न्यौछावर हो जाने की प्रबल कामना भी है। इसके साथ ही एक ओर पत्नी का लचीला समर्पण हे तो दूसरी ओर प्रिय पर अपने स्वामित्व का भाव भी है। इस प्रकार उनकी कविताओं में नारी मन अपनी पूरी गरिमा और अपनी षक्ति की केन्द्रित सीमा दोनों ही स्थितियों में व्यक्त हुआ है समर्पण भाव की अभिव्यक्ति की दृश्टि से निम्नलिखित पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं—

ष्प्रेम—भाव से हो अथवा हो दया भाव से ही स्वीकार

ठुकराना मत इसे जानकार, मेरा छोटा—सा उपहार ।।

(3) वात्सल्य — भावना — सुभद्रा जी कवयित्री होने के साथ एक ममतामयी माँ भी थी। उनकी कविता में वात्सल्य रस का उनेक पर्याप्त मात्रा में मिलता है। ष्बालिका का परिचयष

कविता वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। इसमें मातृत्व–भाव का अनूठा वर्णन मिलता है। कवयित्री जी अपनी बेटी का परिचय देती हुयी कहती हैं–

दीप षिखा है अन्धकार को, घनी घटा की उजियाली।

कवियित्री जी को अपनी बेटी में अपना नया बचपन दिखाई देता है। बेटी के रूप में नया बचपन पाकर उनके जीवन में नवीनता का संचार हो जाता है और उनका मातष–हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। बिटिया को मिट्टी खाता हुआ देखकर वे पूँछने लगती हैं–

ष्पाया मैंने बचपन फिर से, बचपन बेटी बन आया।

उसकी मंजुल मूर्ति देखकर, मुझमें नव जीवन आया।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुभद्रा जी की वात्सल्य भावना कोमल भावनाओं से परिपूर्ण है और श्उसमें पवित्र आह्लाद भरा हुआ है।

(4) अनुरागी – प्रकृति– सुभद्रा जी प्रकृति से अनुरागिणी थी। उनके हृदय का अनुराग असीम था, जो अपनों की परिधि को पार करके अपने देष और हवा रहने वाले देषवासियों में व्याप्त हो गया था। उनके हृदय का अनुराग उनके नारी–मन की बहुरंगी हवियों में सर्वत्र झलकता हुआ दृश्टिगोचर होता है। उनकी ष्मेरी प्यालीष षीर्शक कविता प्रेम रस से परिपूर्ण हैं। वे स्वयं को मादक बसन्त की मतवाली कायेल के रूप में अभिचित्रित करती हुयी कहती हैं–

अपने कविता – कानन की मैं हूँ कोयल मतवाली!

मुझमें मुखरित हो गाती, उपवन की डाली–डाली

उपर्युक्त विवेचन से सपष्ट है कि सुभद्रा जी का अनुभव सम्पन्न जीवन हर तरह से भरा–पूरा और परितष्प्त था। संभवतः यही कारण है कि उनकी कविता में नारी का सहज रूप अनायास ही अपनी समग्रता और सरलता में उभय आया है। यही कारण उनका नाम बीसवीं सदी के भारतीय साहित्य की सर्वाधिक यषस्वी कवयित्रियों में गिना जाता है । सुभद्रा जी प्राचीन भारतीय स्त्रियों के षौर्य को यादव दिलाने वाली कर्मठ नारी थीं। उनकी नारी चेतना प्रखर औरसमुज्जवल थी, इसीलिये वे नारी– भावनाओं का सहज एवं प्रभावी चित्रण करने में समर्थ हो सकी हैं।

(1) सुभद्रा कुमारी चौहान रू व्याख्या भाग बलिका का परिचय

मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद, काबा–लाषी यह मेरी ।

पूजा–पाठ, ध्यान–जप–तप है, घट वासी यह मेरी ।।
कृशणचन्द्र की क्रीड़ाओं को, अपने
आँगन में देखो।

कौषल्या के मात्–मोद को, अपने जो मन में लेखो

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक रू अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित षबालिका का परिचयष से अवतरित किया गया है। इसकी रचयिता कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कवयित्री जी ने अपनी बिटिया को अध्यात्मिक उपादानों से उपमित करते हुये उसमें ईष्वर–रूप को निरूपित किया है।

व्याख्या– कवयित्री कहती है कि यह मेरी गोद की नन्हीं मुनी बिटिया ही मेरा मन्दिर, मस्जिद, काबा, काषी, पूजा–पाठ, ध्यान–जप–तप हे और प्रत्येक प्राणी में निवास करनेवाले परमात्मा का स्वरूप है। अर्थात् वे अपनी विटिया के बला–रूप में ईष्वर रूप की अनुभूति करती हुयी उसे ही अना सर्वस्व मानती हैं। उसकी सेवा–षुश्रुशा और उसका लालन–पालन ही उनके लिये साधना हैं इसलिये वे उसे ही साधना की स्थली और साधना का उपकरण मानती हैं। एक माँ के द्वारा सन्तान के बाल रूप में परमात्म–रूप के दर्षन की अनुभूति करना स्वाभाविक भी है, क्योंकि सन्तान भी के हृदय का एक अंष होती है और उसकी आत्मा का प्रतिबिम्ब, जिसमें वह अपनी छाया को देखकर आल्हादित हो जाती है।

आगे कवयित्री कहती है कि मुझे अपनी बिटिया की बाल–क्रीड़ाओं में भगवान बाल–कृश्ण की लीलाओं के दर्षन हो रहे हैं, और उसे आँगन में खेलता हुआ देखकर के मुझ बालकृश्ण की लीलाओ के आनन्द की अनुभूति हो रही है। आज मेरी मन मातष्त्व के आनन्द से उसी प्रकारआप्लावित हो रहा है जिस प्रकार भगवान् श्रीराम बालरूप के दर्षन करके माता कौषल्या कामन प्रमुदित हो उठा था।

कहने का आषय यह है कि मातष्त्व का आनन्द अलौकिक होता है जो सौभाग्यषाली नारी को ही प्राप्त हो पाता है। इसके लिये माता यषोदा और माता कौषल्या ने कठोर तपस्या की थी, तब कहीं उन्हें ईष्वर के बालरूप के मातष्त्व सुख की अनुभूति करने का सौभाग्यं प्राप्त हो सका था। यही कारण है कि आज कवयित्री सुभद्रा जी भी अपनी बिटिया में उसी रूप का दर्षन करके मातष्त्व के आनन्द की अनुभूति कर रही हैं और अपने आपको धन्य समझ रही हैं।

यहाँ पर कवयित्री ने अपनी बिटिया में भगवान श्रीराम और भगवान श्री कृश्ण के बाल रूप को आरोपित करके बालक–बालिका में समतव भाव की अनुभूति करने तथा पुत्री को भी पुत्रवत् महत्व देने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार उन्होंने बालिकाओं के प्रति समाज में व्याप्त संकीर्ण भावनाओं को औचित्यहीन निरूपित करके उन्हें दूर करने को एक सफल प्रयास किया है।

विषेश

1. वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है।

2. मातष्त्व–भाव की अभिव्यंजना अभिव्यंजित है।

3. भाशा–षैली सरल, सरस, सहज एवं प्रवाहमीय है।

(1) वीरो का कैसा हो बसन्त

कह दे अतीत अब मौन त्याग, लंके, तुझ में क्यों लगी आग? ऐ कुरुक्षेत्र। अब जाग, जाग, बतला अपने अनुभव अनन्त, वीरो का कैसा हो वसन्त?

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा रचित ष्वोरों का कैसा हो बसन्तष नामक कविता से अवतरित है।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण कवयित्री ने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देने के लिये भूतकालकी घटनाओं का सांकेतिक चित्रण किया है।

व्याख्या– कवयित्री कहती है कि हे भूतकाला तू अपने मौन को छोड़कर वीरों द्वारा आत्मोत्सर्ग की घटनाओं का बखान कर दें। जिससे दुविधा में पड़े हुये इन भारतीय युवकों को अपना पथ निष्चित करने में सहायता मिल सके। हे लंका) तुझमें ष्आग क्यों लगी थी? जरा इन वीरों को बता दे कि जब राम अन्यायी, अत्याचारी रावण के अत्याचारों से पृथ्वी को मुक्ति दिलाने हेतु युद्ध में प्रवृत्त हुये, तभी तो आग लगी थी। हे कुरुक्षेत्र। तुम भी अपने अनेक अनुभव बताने के लिये अब तो जाग जाओं और इन भारतीय युवकों को बताओ कि स्वार्थी, कपट्टी, अन्यायी कौरवों के विरूद्ध हो तो आग तुम्हारे क्षेत्र में बरसी थी । यह सब जानकर और अन्याय, अत्याचार दमन की प्रेरणा लेकर ही वीरों को तय करना है कि अब उनहें बसन्त कैसे मनाना चाहये, रस– विलास में निगम्न रहकर या कठोर कर्तव्य पथ पर आत्मोत्सर्ग करके बसन्त को सार्थक बनाना चाहिये।

विषेश– (1) हमारा अतीत गौरवषाली और प्रेरणादायक है, आज की युवा पीढ़ी को उससे प्रेरणा लेनी

(2) ओज गुण समन्वित, सरल, सरस, भाशा का प्रयोग है।

(3) जाग में अनुप्रास एवं पुनरुक्ति प्रकाष और अतीत में मानवीकरण भी है।

(1) उत्साह उमंग निरन्तर रहते मेरे जीवन में।

उल्लास विजय का हँसता, मेरे मतवाले मन में। आषा आलोकित करती, मेरे जीवन का प्रतक्षण। हैं स्वर्ण–सूत्र से बलयित, मेरे असफलता के घना सुख भरे सुनहले बादल, रहते हैं मुझको घेरे।

विष्वास, प्रेम, साहस हैं, जीवन के साथी मेरे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियाँ सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता ष्मेरा जीवनष से उद्धृत है। इस कविता में जीवन कैसे जिया जाये, इसकी ओर संकेत किया गया है और सही जीवन जीने की सत्प्रेरणा दी गयी है।

व्याख्या– कवयित्री कहती है कि मेरा जीवन हर क्षण निरन्तर उत्साह और उमंग से भरा रहता है, उसमें कहीं भी निरुत्साह नहीं है, मेरे मतवाले मन में विजय का उल्लास ही हँसता रहता है, पराजय की चिनता मैंने कभी नहीं की है। मेरे जीवन का प्रतिक्षण आषा के द्वारा आलोकित रहता जाता है। मेरे जीवन की असफलता के बादल भी स्वर्ण–सूत्र से घिरे रहते

हैं अर्थात् असफलतायें भी मुझे सत्प्रेरणा देकर उत्साहयुक्त ही बनाती हैं उनमें भी मैं जीवन के दमकने को प्रेरणायुक्त चमक ही देखती हूँ। वे भी मुझे निरुत्साहित नहीं कर पाती हैं, मेरे जीवन को सुख के स्वर्णि घन ही घेरे रहते हैं। मैंने विष्वास, प्रेम और साहस को अपना साथी बना लिया है।

ष्युग के युग क्षणिक हुये इस तरह

वह ही क्षण जीत गयाअब तक जो हारा था।

इकाई – 17 वीरेन्द्र मिश्र समीक्षात्मक भाग

वीरेन्द्र मिश्र के भाव भरे गीतों में एक प्रेमी प्रणय की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। इसके साथ ही उनके गीत व्यथा एवं पीड़ा के मार्मिक स्वरों की अभिव्यक्ति भी करते हैं। इस प्रकार गीतकार मिश्र जी की दृश्टि व्यापक हैं, जो उनके प्रणय को विकृत न बनाकर उनको सामाजिकता का विस्तार करती है। इस सन्दर्भ में कवि की निम्नलिखित पंक्तियों दृश्टव्य हैं–

ष्सारे मतभेदों को पाट कर इच्छा की नर्म बाँह थामने वर्शों की दूरी को काट करआया

था एक निमिश सामने कलापक्षीय विषेशतायें–मिश्र जी के गीत कलापक्षीय विषेशताओं

से समष्द्ध है।

जनसाधरण के यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति के लिये, सरल, व्यावहारिक तथा लोक प्रचलित षब्द बहुला भाशा को अपनाया है। उनके गीतों में कसावट और संगीतात्मकता है। उन्होंने कहीं–कहीं अप्रस्तुत विधान के सौन्दर्य द्वारा अपने गीतों को सजाया और संवारा है। उनके गीतों में यत्र–तत्र अलंकारों का सहज प्रयाग दृश्टिगोचर होता है। जैसे–

ष्यामा–सी बंकिम यह देह (उपमा)

और भी ष्सज–धज कर आयी हर राताष (मानवीकरण)

आपके गीतों की षैली प्रतीकात्मक है, प्राकृतिक उपादानों को प्रतीकों के रूप में ग्रहण कर विविध मानवीय भावों की अभिव्यंजनायें की गयी हैं, जो अत्यन्त सषक्त और स्फूर्तिवान् हैं। आपके गीत मुक्त छन्द में अवतरित हुये हैं, लेकिन संगीतात्मकता से परिपूर्ण हैं।

निश्कर्शतरू हम यह सकते है कि गौतकार वीरेन्द्र मिर की नीति योजना भाव–पक्ष की दृश्टि से यदि समष्द्ध है तो कला–पक्ष या अभिव्यक्ति की दृश्टि से सषक्त और प्रभावी है।

वीरेन्द्र मिश्र का देष प्रेम एवं राश्ट्रीय विचार वीरेन्द्र मिश्र ने सन् 1940 से कांव्य रचना का आरम्भ किया था। उस समय प्रयोगवाद एवप्रगतिवाद से प्रभावित होकर आपने मार्क्सवाद को रेखांकित करने वाली बहुत–सी कविताएँलिखीं। सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र होने के पष्चात् आपकी भावनाओं में बहुत परिवर्तन हुआ।आपके हृदय में देष–प्रेम का भाव सबसे प्रबल एवं प्रधान हो गया। आप राश्ट्र–प्रेम सेसराबोर हो उठे। उसके बाद आपको अपनी धरती के कण–कण से, अपने देष के जन–जनसे असीम प्यार हो यगा। उन्हें अपना देष सभी दृश्टियों से अद्वितीय प्रतीत होने लगा। उन्हेंअपने देष के क्रोध, षक्ति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य पर गर्व होने लगा। प्राकृतिक सौन्दर्य सेलगाव के साथ–साथ उन्हें अपने देष के इतिहास से, इसकी संस्कृति से भी प्यार है। यथा–

इसकी मिट्टी में है गर्मी काल, इसमें ताक है उठते भूचाल की । इतिहासों की गाथा इसके मूल में, ष्एक चमकती दुनियाँ इसकी धूल में। इसके पवन झकोरों में वह प्यास है,

Notes

सिर्फ बहारों को जिसका अभास है।

इस देष की प्राकृतिक छटा निराली है। यहाँ जैसी घिरती काली धाराएँ, चमकती बिजली, रिमझिम बरसती बूँदें और चमकती हुई बिजली अन्यत्र कहीं नहीं हैं। वास्तव में ये प्राकृतिक घटनाएँ अथवा गतिविधयों सर्वत्र एक–सी होती हैं, पर कवि मिश्र का अपने देष के प्रति प्रेम उन्हें सारे संसार से निराला बना देता है। कवि अत्यन्त विष्वास के साथ पुकार उठना है

संझा और सकारे ऐसे हैं कहाँ,

सूरज चाँद सितारे ऐसे हैं कहाँ ।

ष्याम घटा बिजी–बरसा मनभावनी, रिमझिम बूँद फुहार चंदनिया सावनी द्य

(1) संस्कृति से लगाव – कवि का देष–प्रेम और राश्ट्रीयता प्रकृति का साकार सौन्दर्य देखकर हो सन्तुश्ट और षानत नहीं हो गयीं। उसकी ममता और आत्मीयता साकार सौन्दर्य को पार करके निराकर संस्कृति और सभ्यता तक पहुँची। कवि को अपनी लोक कला और लोकगीत भी निराले प्रतीत होने लगे। चाहे जितने बदल गये हो, पर गाँवों में अब भी प्राचीन संस्कृति सुरक्षित हैं बुन्देलखण्ड में गया जाने वाला वीरकाव्य आल्हा और वृन्दावन में राध ाा–कृश्ण एवं गोपियों को प्रेमलीला पर आधारित रास संसार में कहाँ है? रास देखने तो ब्रजभूमि में ही आना पड़ेगा। रासलीला में यदि राधा–कृश्ण का प्रेम मिलन है तो कृश्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों की विरह व्यथा भी सिसकती जान पड़ती है। यह सब सांस्कृ तिक संगीत एवं नृत्य कवि मिश्र के अपने देष के हैं, इसलिए संसार की श्रेश्ठतम कला और संस्कृति भी इनका सामना नहीं कर सकती–

आल्हा की हुँकार, रमायने की कथा,

वष्न्दाकर का रास, गोपियों की व्यथा।

(2) अपने देष से गहरा लगाव – अपने देष की मिट्टी, उसकी आवोहवा और उके कण–कण से कवि को गहरा लगाव है, इसीलिए एक क्षण को भी वह अपने देष से अलगाव बर्दाष्त नहीं कर पाता। अपने देष की धरती को वह जीवन भर पूजना चाहता है। उसे अपने देष की धूल को सिरमाथे लगाने में सर्वसुख की अनुभूमि होती है–

जाऊँगा अपनी धरती को पूजता, देखूंगा अब नहीं स्वप्न को टूटता, सिरमाथे लेना है ऐसी धूल को, जिसने जन्मा है मधुवन के फूल को।

1 युद्ध

(3) युद्ध की विभीषिका का विरोध– कवि युद्ध को देष विरोधी ही नहीं, वरन् मानवता का षत्रु भी मानता है। उसे लगता है कि युद्ध खुषहाली, सुख–समृद्धि का संहारक होता है। चाहे कोई भी जीते या हारे– सबकी कमर तोड़ देता है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद पाकिस्तान ने कष्मीर पर आक्रमण करके भारत पर युद्ध थोप दिया था। यह अपने देष की अस्मिता और अस्तित्व पर सीधा आक्रमण था, जो कवि को झकझोर गया। इसके बाद

भी पाकिस्तान ने पुनः युद्ध किया और भारत को जबरन युद्ध में रत होना पड़ा। इधर पड़ौसी चीन ने भी विष्वासघात करके भारत को युद्धं की आग में झोंक दिया।

बिनाष युद्धों से देष का विकास रूकता है, इसलिए वीरेन्द्र मिश्र को प्रत्येक युद्ध बुरा लगने लगाहै। चाहे वह विष्व के किसी भी कोने में हो। आखिर युद्ध से जन–साधारण को प्रदूशण,चीख–पुकार, और बेकारी हो तो मिलती है–

अर्वाचीन हिन्दी काव्य

लेकिन यह क्या होती है आवाज क्या,

धुआँ– आग– चीत्कार–ध्वंस है राज क्या।

युद्ध का एक रूप षीतयुद्ध भी है। बहुत से कूटनीतिक किसी देष के विरूद्ध स्पश्ट रूप से युद्ध आरम्भ नहीं करते, पर असहयोग करते, विरोध करते अथवा चुपचाप ऐसे काम करते हैं, जिससे उनके विरोधी देष की प्रगति और प्रतिश्ठा को धक्का लगे। इस खींचतान में भी बहुत से देष लगे हैं। भारत को भी कुछ देष षीतयुद्ध के द्वारा परेषान करना चाहते हैं। कवि मिश्रजी को यह देखकर भी आष्चर्य होता है। वे पूछने लगते हैं–

देषों में होती है खींचातानी क्यों?

षीतयुद्ध से दुनिया है हैरान क्यों?

कवि दृढ़तापूर्वक षीतयुद्ध और षत्रयुद्ध दोनों का विरोध करता है । षीतयुद्ध करने वाला चोरी–छिपे अथवा चुपरात भारत के उज्जवल भविश्य को समाप्त करना चाहता है। कवि परमाणु युद्ध न हो इस सम्भावना मात्र से व्याकुल है और इस युद्ध का प्रबल विरोध करता है। उसे युद्ध नहीं, अपने प्रष्नों का उत्तर चाहिए–

(1) मेरे सुख सपनों पर किसका हाथ है?

क्यों पीछे चलती छाया–सी रात है?

वीरेन्द्र मिश्र व्याख्यात्मक भाग

एक निमिश ढल जाता, और मैं तुम्हारा था।

सारे मतीदों को पाटकर, इच्छा की नर्म बाँह थामने।

वर्शो की दूरी को काट कर आया था एक निमिश सामने।

उस क्षण तुम को विलोक, दूर से पुकारा था ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष में संकलित ष्तीन गीत ष्(दो) ष षीर्शक गीत से अवतरित थिका यगा है। इसके रचयिता गीतकार वीरेन्द्र मिश्र जी हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण में गतकार मिश्र जी ने ष्क्षणवादष् की नवीन अभिव्यंजना के साथ ष्क्षणष् के महत्व को निरूपित किया है।

व्याख्या— गीतकार मिश्र जी अपने जीवन के विषिश्ट क्षणों की अनुभूतियों को गहराई के साथ अभिव्यंजित करते हुये अपनी प्रेयसी से कहते हैं कि हे प्रियतमा एक पल बीतने के बाद मैं तुम्हारा हो गया होता, क्योंकि वर्शों की दूरी को व्यतीत करके और सारे मतभेदों को भुलाकर के हमारी इच्छा की कोमल बाँह को थामने के लिये जैसे ही मिलन का क्षण हमारे सामने आया, अर्थात् जब हम कई वर्श बीतने के बाद आने सारे मतभेद भूल गये, तब हमारी मिलन की कोमल इच्छा के पूर्ण होने का एक क्षण हमारे जीवन में आया था, उस क्षण मैंने तुम्हें देख करके दूर से पुकारा भी था, लेकिन मिलन न हो सका।

कहने का आषय यह है कि यह सांसारिक जीवन क्षणभंगुर है अर्थात् क्षणभर में ही नश्ट होने वाला है और यह भी सुनिष्चित नहीं है कि किस क्षण क्या घटित होने वाला है? इसीलिये मानव जीवन का प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण है, जिसे हमें यों ही व्यर्थ में नश्ट नहीं करना चाहिये। किस क्षण किसका मिलन हो जाये और किस क्षण किससे वियोग हो जाय? यह कहा नहीं जा सकतजा है। अतः हमें प्रत्येक क्षण को सावधानीपूर्वक व्यतीत करना चाहिये और उसके महत्व को समझ करके उस विषिश्ट क्षण को सार्थक बनाना चाहिए।

विषेश— 1. क्षणवादष् की वैचारिक अभिव्यंजना दृश्ट

2. जीवन के क्षणों के महत्व का प्रतिपादन हुआ है।

3. भाशा—षैली सरल, सहज एवं प्रवाहमयी है।

4. अमूर्त भावों को मूर्त रूप से अभिचित्रित किया गया हैं।

(2) बैजनी अमावस मे चुटकी भर चाँदनी न दो,

अमष्त जो पी जाये तुम ऐसी वारुणी न दो।बाँधी तो चन्द्र किरण से बाँधो पायल का

गीत चरण से बाँधसभागार को लकिन, क्षणभर की रागिनी न दो।

सन्दर्भ— प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य—पुसतक ष्अर्वाचीन हिन्दी काव्यष् में संकलित ष्तीन गीत (तीन)ष् षीर्शक गीत से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता गीतकार वीरेन्द्र मिश्र जी हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण में गीतकार मिर जी ने ष्क्षणवादष् को नवीन अभिवयंजना के साथ ष्क्षणष् के महत्व को निरूपित किया है।

व्याख्या— गीतकार कहता है कि हे साहित्य सष्टी आज मानव के जीवन में अमावस का काला चना अन्धकार फैला हुआ है, जिसे तुम्हारी यह चुटकी— चाँदनी अर्थात् कर्णप्रिय क्षणिकायें दूर नहीं कर पायेंगी। इसके लिये तुम्हें प्रखर एवं गम्भीर साहित्य की रचना करनी चाहिये। तुम भोगवादी भौतिक साहित्य की मदिरा पिलाकर इनकी अमष्त तुल्य जीवन—दर्जा को नश्ट न करो। इसस इनके जीवन की जीवन्तता नश्ट हो जायेगी । यदि तुम इन्हें

मर्यादित करना चाहते हो तो इन्हें चन्द्र–किरणों से बाँधा और इनके पैरो से पायल का गीत बाँधों, लेकिन इस सभागार की क्षणभर के लिये आनन्दित करने वाली रागिनी न दो।

कहने का आषय यह है कि हे काव्य सष्टा । आज क्षणिक रूप से मनोरंजन करने वाली प्रेमपरक रचनाओं की आवष्यकता नहीं है। आज तो प्रकृतिपरक, संवेदनषील, मानवीय संस्कारों से सुसंस्कृत बनाने वाले ह्रदयस्पर्षी साहित्य की आवष्यकता है, जो हमें मानवीय गुणों से संस्कारित करके प्राकृतिक ढंग से से जीवन जीना सिखा सके और हमारे जीवन को स्थायी रूप से सुखी एवं समष्द्धषाली बना दे। विषेश–

(1) भोगवादी एवं अष्लील रचना–लेखन की बढ़ती यी प्रवषत्ति के प्रति चिन्ता प्रकट की गयीं।
(2) प्रकृति का मानवीकरण रूप अभिचित्रित है।

(3) गम्भीर, संवेदनारील, जीवनपरक काव्य–रचना के महत्व का निरूपण हुआ है।

(4) भाशा–षैली प्रतीकात्मक, सहज एवं प्रवाहमयी है.

इकाई – 18 दुष्यंत कुमार समीक्षात्मक भाग

नव लेखन काव्यधारा के सषक्त कवियों में दुश्टन्त कुमार जी अग्रणी हैं। आप एक सवसथ मौलिक चिन्तक और संघर्शमयी चेतना के अद्वितीय रचनाकार हैं। आपका जन्म 1 सितम्बर, सन् 1933 ई. में उत्तरप्रदेष के बिजनौर जिले के राजापुर नवादा नामक गांव में हुआ था। आप एक सम्धानत कृशक परिवार के थे। आपकी आरम्भिक षिक्षा बिजनौर में तथा उच्च षिक्षा इलाहाबाद विष्वविद्यालय में हुई। आपकी ख्याति एक गायक कवि के रूप में हुयी। आपने आकाषवाणी के विभिन्न केन्द्रों में कार्य किया। कुछ समय तक आप अध्यापन कार्य करते रहे। मध्यप्रदेष की राजनधानी भोपाल में राज्य सरकार के भाशा – विभा में सहायक निदेषक के पद पर कार्य करते हुये 30 दिसम्बर, 1975 को आपका निधन हो गया।

कविवर दुश्यन्त कुमार जी ने कविता, नाटक, उपन्यास आदि सभी विधाओं में रचनायें की हैं। आपके काव्यसंकलन– ष्सूर्य का स्वागतष में वि की रूमानी आस्था मुखरित हुयी है। ष्आवाजों के घेरेष में कवि का काव्य–संसार अधिक विस्तृत और पमृद्ध होकर मुखरित हुआ है। ष्एक कंठ विशपायोष दुश्यन्त कुमार जी का एक समर्थ गीति नाट्य है। इसमें जर्जर रूढ़ियों और परम्पराओं के षप से लिपटे लोगों के

सन्दर्भ में नये मूल्यों को निरुपित किया गया है। सन् 1957 से 1973 तक आप निरन्तर साहित्य रचना करते रहे। वर्श 1975 में ष्साये में धूपष उनका अन्तिम गजल संग्रह था।

दुश्यन्त कुमार के गीतों का मूल स्वर

उत्तर– हिन्दी–साहित्यके समकालीन कवियों में दुश्यन्त कुमार का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविता जन–जन की कविता है। कवि ने अपनी रचनाओं में सहज विष्वास के साथ मध्यवर्गीय व्यक्ति के आत्म संघर्श और उसको छटपटाहट को अभिव्यक्ति प्रदान की है। अतः यह कहना कि दुश्यन्त कुमार जी समकालीन हिन्दी कविता के समर्थ हस्ताक्षर हैं, सार्थक

प्रतीत होता हैं इस तथ्य की पुश्टि उनके काव्य वैषिश्ट्य से सहज ही हो जाती है। भावपक्षीय काव्य वैषिश्ट्य की विवेचना निम्नलिखित

रूप में दृश्टव्य हैं–

भाव पक्ष– दुश्यन्त जी भाव पक्ष साधुनिक सन्दर्भों से जुड़ा बुना हुआ है। आपके भाव–पक्ष की निम्नलिखित विषेशतायें हैं–

(1) वैयक्तिक चेतना – दुश्यन्त की वैयक्तिक चेतना के प्रधान कवि हैं। इसके माध्यम से आपने मध्यवर्गीय संघर्शषील व्यक्ति के समग्र जीवन को अभिचित्रित किया है। आपने वर्तमान से संघर्श करते हुये भविश्य के प्रति आस्था प्रकट की हैं–

ष्परिचित उन राहों में एक बार,

विजय, गीत गाते हुये जाना है

जिनसे मैं हार चुका हूँ।

(2) आत्म–संघर्श – आज का आम आदमी आत्म–संघर्श और घुटन का जीवन जी रहा है। वह सांसारिक परेषानियों से घिरा हुआ आत्म–व्यथित हो उठता है। ष्दृश्टान्त कविता में कवि ने इसी पीड़ा को अपने आप को महाभारत के ष्अभिमन्युष की संज्ञा देते हुये मुखरित किया है। कवि की निम्नलिखित

पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं

हर धोखे से मुझे लील लो,

मेरे जीवन को दृश्टान्त बनाओ। नये महाभारत का व्यूह वरूँ मैं। कुंठित षस्त्र भले हो हाथों में।

(3) कुषासन के प्रति आक्रोष – आज के षासन की गलत नीतियों के कारण समाज में अराजकता फैलती जा रही है षोशणकारी, तानाषाही ताकतें फल–फूल रहीं हैं और देष आतंकवाद से ग्रसत हो

चुका है। षासन नाम की कोई चीज षेश न रह गयी है। इसलिये अंब तो इसे बदलना ही होगा–

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,ये कमल के फूल मुरझाने लगे हैं।

(4) क्रान्ति का स्वर – दुश्यन्त जी समाज की षोशणकारी व्यवस्था को पूर्ण रूपेण बदलने

के प्रबल पक्षपाती हैं। इसके लिये उनकी लेखनी विद्रोही रूप धारण कर लेती है और उनकी वाणी से

क्रान्ति की लपटें निकलने लगती हैं। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

ष्जब मेरे पेन की स्वाही में आँसू झलकें,

वाणी में लपटें उतरें

कागल पर छन्दों में विद्रोही नक्षे दीखें

तब मुझसे ये मत कहनाष

(5) संवेदनषीलता – कविवर दुश्यन्त जी आम आदमी के कवि हैं। आज समाज में जनसाध ा रण की चीत्कारों एवं करुण क्रन्दने से कवि का ह्नदय दहल उठता है और समजा के चारों छोरों से आने वाली आवाजों को प्रतिध्वनियाँ उसकी आत्मा से टकरा टकरा कर उसे मर्माहत करती हैं और उसे अपना ¨ जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगता है–

ष्कवि कहलाने का क्या मतलब?

जब मैं आवाजों के घरे में हूँ

(6) वष्ढ़ संकल्पवादी – दुश्यन्त जी दृढ़ संकल वादी हैं। वे यह मानते हैं कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिये दृढ़ संकल्प–षक्ति की आवष्यकता होती है। कार्य की सफलता साध न पर निर्भर न होकर व्यक्ति दृढ़ संकल्प षक्ति पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

ष्यह पहाड़ी पाँव क्या चढ़ते, इरादों ने चढ़ी है।

कल दरीचे ही बनेंगे द्वार, अब तो पथ यही है ।।

(7) राश्ट्रीय – भावना – कविवर दुश्यन्त जी की राश्ट्रीय भावना पवित्र और आउम्बर रहित है। उन्हें देष–प्रेम के नाम पर किये जाने वाले दिखावे (आडम्बरों) से भारी चिढ़ है । कवि कहता है कि लोग देष–प्रेम के नाम पर युद्ध की और मातष्–भूमि की बातें करते हैं, वे देष के लिये लड़ते–लड़ते मर जाने का संकल्प लेते हैं, किन्तु क्या यहीं देष–प्रेम है? कब कहता है कि मुझसे यह सब दिखावा नहीं होता है– कि– लोग

युद्ध और मातष्भूमि की बात करते हैं, लड़ने–मरने का संकल्प करते हैं,

मुझसे वह भी नहीं होता।

कविवर दुश्यन्त जी अपने राश्ट्र की दीनहीन दषा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुये लिखते हैं

(8) जीवन की नष्वरता का प्रतिपादन – ने मानव जीवन को कौंच के घर की तरह निरुपित कर जीवन की नष्वरता का प्रतिपादन करते हुये जीवन के संघर्श मार्ग पर अग्रसर होकर यथाषीघ्र जीवन के लक्ष्य को पाने की प्रेरणा दी है। देखिये कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ–

ष्क्या भरोसा, च का घर है किसी दिन फूट जाये

अधूरी छूट जाये

• एक मामूली कहानी है, अधूरी छूट

उपर्युक्त भावपक्षीय विषेशताओं के विवेचन से वह सुस्पश्ट है कि दृश्यन्त कुमार की कविता का मूल स्वर आम आदमी है। इसी आम आदमी के सुख–दुःख, उनका परिवेष ही उनकी कविता के केन्द्र में रहा है। इसी आम आदमी की वेदना, बेचौनी, संबन्धों का खोखलापन, सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक मूल्यों के पराभव को उन्होंने अपनी सीधी–सादी भाशा में बयान किया है। इस सम्बन्ध में स्वयं दुश्यन्त कुमार जी का निम्नलिखित कथन दृश्टव्य

ष्ये कवितायें इसी हद तक मेरी हैं कि मैंने इन्हें लिखा और भोगा है। मेरे पास कविताओं के मुखैटे नहीं हैं। अन्तर्राश्ट्रीय मुद्रायें नहीं है और अजनवी षब्दों का लिवास नहीं है। मैं एक साधारण आदमी और इतिहास एवं सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबान, अभाव और उसके सम्बन्धों के उलझावों को जीता और व्यक्त करता दुश्यन्त कुमार और हिन्दी गजल आधुनिक हिन्दी कविता में षाजल विधाष का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के युग से हुआ है। इसके बाद मुख्य रूप से निराला, त्रिलोचन और षमषेर बहादुर सिंह ने इस विधा को अपनाकर रचनायें लिखी हैं। समकालीन कवियों में तो अधि ाकांष कवि हिन्दी गजलें लिख रहे हैं।

वर्तमान समय में हिन्दी की षाजल – विधाष अत्यन्त लोकप्रिय विध मानी जाती है। इसे लोकप्रियता के षिखर तक पहुँचाने का बहुत कुछ श्रेय दुश्यन्त कुमार को हैं। दुश्यन्त कुमार की गजलों का संग्रह ष्साये में धाप अतयन्त लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। आज उनकी गजलें जन–जन की कंठहार बन चुकी हैं। उन्होंने गजल की उर्दू परम्परा को एक नया मोड़ देते हुये हिन्दी को गजल विधा से समृद्ध बनया है। इस प्रकार उन्होंने अपने कवि–कर्म द्वारा अपने अनुयायी कवियों को एक नयी जमीन और एक नयी दिषा प्रदान की है। इतना ही नहीं आपने अपनी गजलों के माध्यम से वर्तमान की राजनीति तथा समाज के क्रूरतम सन्दर्भों में फँसे व्यक्ति ससन्दर्भ प्रस्तुत करके और उसे मुखर बनाकर एक नई ऊँचाई तक पहुँचाया है। इस प्रकार वे इंसान को जोड़ने वाली षक्ति पर सब कुछ न्यौछावर कर देना चाहते थे इस सन्दर्भ में उनकी ये पंक्तियाँ दृश्टव्य हैं–

ष्मेरी जबान से निकली, तो सिर्फ नज्म बनी।

तुम्हारे हाथ में आयी तो मषाल हुयी ।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पश्ट है कि दृश्यन्त कुमार की गजलों में आम आदमी के जीवन को उसी की जबान में अभिचित्रित किया गया है। इसीलिये उनकी गजलें अत्यनत लोकप्रिय हुयी हैं। आज लोकप्रियता के कारण ही उन्हें षहिन्दी गजलष के ष्पर्यायष के रूप में जाना जाता है। अर्थात् ष्दुश्यनत कुमारष और षहिन्दी गजलष एक–दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। उनकी हिन्दी गजलों ने अपार रचनात्मक सम्भावनाओं का द्वार खोल दिया है। इससे उन्हें अपार ख्याति मिली है। अगर वे कुछ दिन और जीवित रहते तो हिन्दी गजलों को बहुत समृद्धषाली बना देते। उनका गजल संग्रह ष्साये में धूपष हिन्दी गजल – विध

के क्षेत्र में अमूल्य और अद्वितीय है। इस योगदान के लिये वे सदैव चिरस्मरणीय बने रहेंगे।

दुश्यन्त कुमार रू व्याख्यात्मक भाग दृश्टान्त इतिहासोंमेंनहींलिखाजायेगा।

ओ इस तम में छिपी कौरव सेनाओ!

आओ ! हर धोखे से मुझे लील हो ।

मेरे जीवन को दृश्टान्त बनाओं, नये महाभारत का व्यूह वरूँ मैं। कुंठित षस्त्र भले हों, हाथों में, लेकिन लड़ता हुआ मरूँ मैं !

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण कविवर व्यन्त कुमार जी द्वारा विरचित ष्दृश्टान्तष षीर्शक कविता से अवतरित किया गया है।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कवि के पौराणिक अभिमन्यु की गाथा के माध्यम से अपने जीवन को करूक्षेत्र – यपी मैदान मानकर तथा स्वयं को अभिमन्यु मानते हुये आपना रूपी कौरव सेना से स्वयं को अकेले संघर्श करते हुये अभिचित्रित किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि मेरा जीवन संघर्श कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है। अतः मेरे जीवन की लड़ाई को इतिहास के पन्नों में भले ही न लिखा जावे, लेकिन मैं अपने जीवन रूपी कुरूक्षेत्र के आपदा–रूपी कौरव सेनाओं से लड़ने के लिये तत्पर हैं।वह आह्वान करता है कमरे जीवन का अन्धकार में छिपी हुयी है आपदारूपी कौरव सेनाओं! तुम मुझ से लड़नेके लिये मेरे जीवन २५ मैदान में आओ और अभिमन्यु की तरह हर धोखे से मुझे कालकवलित कर लो, जिससे मेरा जीवन भी अभिमन्यु का तरह दुश्टानतवन कर धन्य हो जावे।

कवि के कहने का आषय यह है कि जीवन भर आपदाओं से संघर्श करना चाहता है। इस संघर्श में उसे अभिमन्यु की तरह विष्वासघात एवं अन्यायपूर्ण प्रतरों का सामना करना भी स्वीकार है, क्योंकि वह अपनी उद्‌भुत संघर्श – क्षमता का प्रदर्षन करके अपने जीवन–संघर्श को एक दृश्टान्त के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है।

आगे कवि कहता है कि जीवन–संघर्श की इस कड़ाई में मेरे हाथों में भले अभिमन्यु की तरह तीक्ष्ण षस्त्र नहीं हैं, अर्थात जीवन की लड़ाई को लड़ने के मेरे हथियार (साधन) भी कुठित (ध ए–रहित) हैं, फिर भी मैं चाहता हूँ कि जीवन के आखिर समय तक लड़ाई लड़ता रहूँ और इस जीवन रूपी नये महाभारत के समय–चक्र–रूपी व्यूह को जी लूँ, अन्यथा लड़ते हुये वीर गति को (मृत्यु) प्राप्त करून

(1) विषेश– (1) जीवन–संघर्श की प्रेरणा स्फूर्तिदायक है एवं एक नये सोच को विकसित करती है। (2) नई कविता की संघर्शषीलता का उत्कृश्ट रूप दृश्टिगोचर होता है। (3) भाशा षैली प्रवाहमयी एवं हृदयस्पर्षी है।

गजलें यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है, चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिये। न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढंक लेंगे, ये लोग कितने मुनासिव हैं, इस सफर के लिये e

सन्दभर्रू प्रस्तुत अवतरण हिन्दी जगत् के ख्यातिलब्ध गजलकार श्री दुश्यन्त कुमार जी द्वारा विरचित ष्दो गजलेंष षीर्शक से अवतरित किया गया है।

प्रसंग प्रस्तुत अवतरण में गजलकार ने पूँजीवादियों को षोशणवादी प्रवृत्तियों का पर्दाफाष करते हुये षोशितों की निरीहता, बेबसी और दीनता का मार्मिक–चित्रण किया है।

व्याख्या– गजलकार दुश्यन्त कुमार जी कहते है कि समाज के पूँजीपति विषाल दरख्तों अर्थात् वक्षों के समान हैं, जो हर तरह से सम्पन्न हैं, और दूसरो को संरक्षण देने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं, लेकिन ये लोग अपने अधीनस्थ काम करने वाले लोगों को संरक्षण व आश्रय न देकर स्वयं उन पर अन्याय और अत्याचार करते हुये नाना प्रकार से उनका षोशण करते हैं और उन्हें उत्पीडित करते हैं। इस प्रकार इन मजदूरों, गरीबों और आम आदमी को समाज के इन पूँजीपति रूपी दरख्तों से छाया की षीतलता की अनुभूति न होकर कठोर ध ूप के ताप से छटपटाहट ही मिलती है। यह सब भोग करके और देख करके आम आदमी का मन वितष्णा से भर जाता है और वह इस संसार में ऊब करके हमेषा–हमेषा के लिये संसार को त्यागने के लिये विवष हो जाता है।

आगे कवि कहता है कि समाज का यह मजदूर– गरीब वर्ग जीवन के अभावों, पीड़ाओं कश्टों और अत्याचारों को सहता–सहता इतना लाचार और निरीह हो जाता है, कि तन ढकने की कमीज न होने पर ये लोग अपने नंगे पैरो से ही पेट ढाँकने का असफल प्रयास करते हैं अथवा नंगे बदन रहकर और मजदूरी से रूखा–सूखा खाकर अपना जीवन यापन करते हैं इनके निरीह जीवन का देखकर ऐसा लगता है कि सचमुच ये लोग इस षोशणवादी समाज के लिये कितने उपयुक्त हैं? अर्थात् षोशण का प्रतिकार न करने के कारण पूँजीपति लोग इन्हें अपने लिये बड़ा उपयुक्त मानते हैं।

कहने का आषय यह है कि आज हमारे समाज में षोशणवादी प्रवृत्तियों इसलिये फल–फूल रही हैं, क्योंकि षोशित–वर्ग उनका प्रतिकार नहीं करता है और अपनी दयनीय दषा को अपने दुर्भाग्य का फल मान करके सहज भाव से स्वीकार कर लेता है और जीव–भर पीढ़ी दर पीढ़ी दुःखों को भोगता रहता है। इस प्रकार कवि अपनी काव्य–रचना द्वारा उन्हें षोशित जीवन से मुक्ति पाने की प्रेरणा देता है। विषेश– (1) षोशकों और षोशितों की मनोदचत्रण किया गया है।

कवि–हृदरापडित्र की अभिव्यंजना हुयी है।

समाज के पूँजीपति निक वर्ग की दूशित प्रवषत्तियों की तीखी निन्दा की गयी है।

भाशा–षैली सरल, सहज और प्रतीकात्मक है।

कई फाँके बिताकर और गया, जो उसके बारे में,

वो सब कहते हैं अब ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा। यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,

खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा?

सन्दर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण में गजलकार दुश्यन्त कुमार त्यागी ने वर्तमान समाज में फैली हुयी भुखमरी एवं गरीबी का मार्मिक चित्रण करते हुये पूँजीपतियों के उपेक्षित व्यवहार को व्यंग्यात्मक ढंग से तीखी आलोचना की है।

व्याख्या— कवि कहता है कि आज हमारे समाज में प्रतिदिन सैकड़ों लोग भूख से छटपटाते हुये मर जाते हैं, उनके प्रति किसी को संवेदना नहीं होती है। कवि इसी प्रकार की एक घटना का चित्रण करते हुये कहता है कि एक मजदूर बिना भोजन किये हुये कई दिन बिता कर भूख की पीड़ा से छटपटाते हुये मष्त्यु को प्राप्त हो गया। इस सच्चाई को वे लोग अब कह रहे हैं, लेकिन उस समय वे लोग भी इस सच्चाई को नहीं कह सके थे।

कहने का आषय यह है कि वर्तमान समाज का मनुश्य निजी स्वार्थों और कायरता की प्रवष्त्ति के कारण सच्ची बात को भी कहने के कतरता है, अर्थात् उसमें सच बोलने का साहस नहीं होता है क्योंकि उसे यह भय बना रहता है कि सच बोलने से यह संकट से फँस जायेगा। यद्यपि वह बाद में उस सच्चाई को स्वीकार करता है, लेकिन मन के समय वह उसकी सच्चाई को नहीं कह पाता है। यही आज के समाज की विडम्बना है कि आज का गरीब मजदूर भूखे मर रहा है और समाज के लोग मौन—मूक भव से उसे भूख से मरता हुआ देख रहे हैं, लेकिन षासन के समक्ष उसकी पुश्टि नहीं कर पाते हैं, फलतः समाज की दषा ज्यों की त्यों बनी हुयी है।

आगे कवि कहता है कि इस अर्थवादी गुग में पूँजीपति, धनिक और सम्पन्न वर्ग लोग निजी स्वार्थी और धन—वैभव के भोग—विलास में बनाने के कारण ती संकीर्ण मानसिकताओं से ग्रसत होने के कारण संप—षून्य हो गये हैं। उन्हें समाज में व्याप्त मजदूरों एवं गरीबों की पीड़ायें दर्दनाक चीत्कारें, अकाल मष्त्यु का करुण, क्रन्दन, भूख की छटपटाहट और उनके बच्चों का रूदन न तो सुनाई देता है और न ही उनकी दयनीय दषा उन्हें दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि ये समाज के ठेकेदार गूँगे और बहरे हो गये है। ये लोग सहानुभूति के दो षब्द भी व्यक्त करने में हिचकिचाते हैं। इनके उपेक्षित और षोशित व्यवहार को देखकर कवि भारतवर्श के स्वर्णिम अतीत के प्रति षंका प्रकट करता हुआ कहता हैं कि ईष्वर जाने, मानवीय मूल्यों की दृश्टि से भारतवर्श का अतीत काल स्वर्णिम रहा भी है या नहीं। आषय यह है कि आज भारतीय समाज की दुयनीय दषा को देखकर यह विष्वास करना कठिन हो गया है कि यह भारतवर्श वही है, जहाँ किसी समय मानवता की पूजा होती थी और मानवीय गुणों का व्यवहार ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य था। इस प्रकार कवि स्वर्णिम अतीत की ओर ध्यान आकृश्ट करने हमें दूशित प्रवष्त्तियों को त्यागने और आदर्ष मानव बनने की प्रेरणा देता है।

विषेश— (1) स्वर्णिम अतीत की और ध्यान आकृश्ट करके वर्तमान की दयनीय दषा को सुध ा रने का प्रबल आग्रह किया गया है।

(2) मानव को अमानवीय सोच की तीखी आलोचना की गयी है। (3) भाशा—षैली सरल, सहज, प्रवाहमयी एवं व्यंग्यात्मक है।

इकाई — 19 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

टिप्पणी— अनुषासित पुस्तक में सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष तृतीय क्रम में हैं, किन्तु पाठ्यक्रम का भाग नहीं है। छात्रों के ज्ञानार्जन हेतु यहां सम्बन्धित सामग्री संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है।

जीवन परिचय– पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष जहां एक छायावादी कवि हैं वहीं दलितों के मसीहा भी हैं। तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता कविताएं उनके षोशण के विरूद्ध क्रान्तिकारी स्वभाव एवं प्रगतिवादी रूझान को दर्षाती हैं। जीवन के कठोर यथार्थ उन्हें विद्रोही बना दिया। उनके काव्य में जहां कबीर की अक्खड़ता है वहीं प्रसाद की कोमलता, तुलसी की भक्ति तथा सूफियों की सरलता और सरसता भी है। यथार्थ में वे निरालें ही कवि थे। डॉ. राजेष्वर प्रसाद चतुर्वेदी के षब्दों में, श्निराला युगप्रवर्तक कवि थे। हिन्दी में मुक्त छन्दों को प्रयुक्त करने का श्रेय उन्हीं को है। उनका भाव जगत विस्तृत है और उन्होंने छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद को अलंकृत किया है।

जीवन परिचय– पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष का जन्म बंगाल प्रान्त में मेदिनीपुर जिले की महिशादल नामक रियासत में सन् 1897 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम पं. रामसहाय त्रिपाठी था, जो उत्तर प्रदेष के उन्नाव जिले में गढ़कोला नामक ग्राम के रहने वाले थे वे अपने परिवार को छोड़कर बंगाल की महिशादल नामक रियासत में जाकर रहने लगे थे। निराला के जनम के तीन वर्श भाद ही उनकी माता की मृत्यु हो गयी थी जिससे इनके पिता पं. रामसहाय त्रिपाठी बड़े ही खिन्न रहने लगे थे। वे कठोर हो गए थे जिससे निरला का जीवन मां की ममता से वो रह गया। पिता का भरपूर प्यार–दुलार न मिल सका। निराला की षिक्षा बंगाल में होने के कारण उन्होंने बंगला भाशा का भी अध्ययन किया। बाद में संस्कृ त साहित्य का अध्ययन कर काव्यषास्त्रीय बारीकियों से अवगत हुए। उन्हें अंग्रेजी का भी ज्ञान था तथा भारतीय दर्षन में विषेश रूचि लेते थे।

उनकी जब निराला लगभग 14 वर्श के थे तब उनका विवाह मनोहरा देवी के साथ हो गया। पत्नी भी हिन्दी भाशा और साहित्य में विषेश रुचि रखती भी निराला जी अपनी पत्नी मनोहरा देवी की प्रेरणा से ही साहित्य और संगीत में रूचि पैदा हुई थी। 22 वर्श की उम्र में निरालाजी की पत्नी का देहान्त हो गया। इससे निराला अधिक खिन्न रहने लगे थे। वे महिश दल रियासल की नौकरी छोड़कर चले आये। उसी समय षसमन्वयष के सम्पादक बने जो कि रामकृश्ण मिषन द्वारा संचालित था। बाद में षमतवालाष का सम्पादन भी किया। षमतवालाष को भी छोड़कर लखनऊ आ गए और बाद में इलाहाबाद चले आये। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने के बाद आपनी कविता में और निखार आया। निराला जी को महिशादल रियासत की नौकरी छोड़ने के बाद आर्थिक कठिनाइयों को सामना करना पड़ा। अर्थाभाव में ही उनकी पुत्री सरोज की मृत्यु क्षयरोग से हो गयी। वे उसका समुचित उपचार भी न करा सके। इसी वेदना से व्यथित होकर उन्होंने षसरोज स्मृतिष लिखी। वे लिखते हैं–

प्रगतिवाद की विचारधारा भी पल्लवित है। इसमें षोशण का विरोध एवं मजदूरों का समर्थन है। साथ ही भक्ति और दार्षनिक विचारों से ओत–प्रोत कविताएंव भी मिलती हैं। जीवन के अन्तिम वर्शों में लिखी गयी उनकी कविताओं में भक्त हृदय से आर्त पुकार सुनायी पड़ती है। निराला ने साहित्यिक जीवन ष्जन्मभूमि की वन्दनाष कविता का सृजन कर प्रारम्भ किया। 1921 में उनका एक लेख ष्सरस्वतीष में छपा उनका प्रथम लेख था। इसके बाद ष्जूही की कलीष नामक कविता ने कवि के यष में चार–चांद लगा दिये। आज वे छायावाद के चार स्तम्भों में एक गिने जाते हैं। ये चार सम्भ हैं–– (1) जयषंकर प्रसाद, (2) निराला, (3) सुमित्रानन्दन पन्त एवं (4) महादेवी वर्मा।

रचनाएं– निराला बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। काव्य के अतिरिक्त उन्होंने कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण और आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी पहचान बनायी। उनकी रचनाएं निम्नलिखित हैं–

(क) काव्य–रचनाएं–

1. परिमल– यह निराला की छायावादी रचनाओं का संग्रह है, जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। इसमें ष्बादल रागष, षमिक्षुकष, तथा षविधवाष आदि प्रगतिषील रचनाएं भी संकलित है। 2. अनामिका– इसके दो संस्करण प्रकाषित हो चुके हैं। सन् 1923 ई. में प्रकाषित प्रथम संस्करण में निराला जी की प्रारम्भिक रचनाएं संकलित हैं। इसकी तीन कविताएं– ष्पंचवटी प्रसंगष, ष्जूही की कलीष तथा ष्तुम और मैंष विषेश उल्लेखनीय हैं। इसका द्वितीय संस्करण सन् 1931 ई. में प्रकाषित हुआ। इसमें संगृहीत ष्राम की षक्ति पूजा ष्सम्राट अश्टम एडवर्ड के प्रतिष, ष्सरोज स्मृतिष, ष्दानष, ष्तोड़ती पत्थरष आदि कविताएं हिन्दी साहित्य का गौरव हैं। ष्राम की षक्ति पूजाष जैसी प्रौढ़ रचना तो आज तक हिन्दी काव्य में नहीं लिखी गयी है।

3. गीतिका – इसका प्रकाषन सन् 1926 ई. हुआ था। यह एक सौ एक गीतों का लघु संग्रह है। इसमें प्रेम, प्रकृति, राश्ट्रीय एवं दार्षनिक भावनाओं से परिपूर्ण कविताएं हैं।

4. तुलसीदास– गोस्वामी तुलसीदार पर लिखा गया एक खण्डकाव्य हैं। यह निराला का एक मात्र खण्ड–काव्य है, जिसमें छायावादी काव्य कला का चरमोत्कर्श दिखायी देता है।

5. कुकुरमुत्ता, नये पत्ते– ये दो ग्य प्रदान कविताओं के संग्रह हैं। इनमें सामाजिक भ्रश्टाचार पर तीखे व्यंग्य किए गये हैं। कुकुरमुत्ता, दलित, षोशित सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है, तथा गुलाब षोशक वर्ग का ।

6. अन्य कृतिया– ष्अणिमाष, ष्अपराष, ष्बेलाष, ष्आराधनाष, तथा ष्अर्चनाष भी निराला की अनुपम काव्य रचनाएं हैं।

(ख) गद्य रचनाएं– षलिलीष, ष्चतुरीष, ष्अलकाष, ष्प्रभावतीष, ष्अप्सराष एवं षनिरुपमाष इनकी श्रेश्ठ गद्य रचनाएं हैं।

भाशा षैली

(क) भाशा– निराला की भाशा परिमार्जित साहित्यक खड़ी बोली हैं। इस पर इनके संस्कृ त के ज्ञान का प्रभाव है। भाशा में अनेक स्थानों पर उर्दू, फारसी एवं बंगला षब्दों के अतिरिक्त संस्कृत के तत्सम षब्दों का प्रयोग हुआ है जिसमें इनके भावों को समझने में कठिनाई होती

है। भाशा पर निराला का पूर्ण अधिकार था। इनकी भाशा में ओज, माधुर्य, संगीतात्मकता आदि गुणं विद्यमान हैं। इनकी भाशा का एक उदाहरण देखिये–

लंका पदतल षतदल, गर्जितोर्मि सागर जलधोता षुचि चरण युगल, स्तव कर बहु–अर्थ

भरे।

(ख) षैली– निराला ने दूरूह एवं सरल दोनों षैलियों का प्रयोग किया है। एक ओर राम की षक्ति पूजा है तो दूसरी ओर ष्तोड़ती पत्थरष जैसी सरल षैली में लिखी रचना । रचना की दृश्टि से आपने मुत्कक षैली को अपनाया। प्रबन्ध के रूप में एकमात्र ष्तुलसीदासष ही हैं। आगे चलकर छन्द के बन्ध ज को तोड़ती हुई इनकी कविता उफनती हुई सरिता सी दृ श्टिगोचर होती है। ष्कुकुरमुत्ताष और तोड़ती पत्थर इसके उदाहरण हैं। देखिये–

श्वह तोड़ती पत्थर देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ परा वह तोड़ती पत्थर

हिन्दी साहित्य में स्थान– निरालाजी छायावाद के प्रमुख सतम्भ हैं साथ ही उनकी कविता में प्रगतिवादी तत्व भी उपलब्ध होते हैं। वे ओज और औदात्य के कवि हैं तथा हिन्दी में मुक्त छन्द के आविश्कर्ता माने जाते हैं। अपने विलक्षण व्यक्तित्व एवं प्रतिमा के कारण वे हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि के रूप में आदर प्राप्त करते रहे

1. जूही की कली कविता का परिचय– ष्जूही की कलीष निराला की प्रसिद्ध कविता है जो सन् 1916 ई. में लिखी गयी थी। इस कविता को प्रारम्भ में उन्होंने ष्सरस्वतीष पत्रिका में प्रकाषित होने के लिए भेजा था किन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसमें निहित श्रृंगार भावना को लक्ष्य कर इसे प्रकाषित करने में असमर्थता व्यक्त कर दी। बाद में जब यह कविता अन्यत्र प्रकाषित हुई तो इसने हिन्दी काव्य जगत् में तहलका मचा दिया। प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कवि ने इस कविता में जुही की कली को नायिका के रूप में तथा वासंती पवन को नायक के रूप में कल्पित करते हुए उनके मिलन का चित्रण किया है। मुक्त छन्द में रचित इस कविता में भले ही अन्तिम तुक के निर्वाह पर बल न दिया गया हो किन्तु उसमें एक अद्‌भुत लय, ताल एवं संगीतात्मककता विद्यमान है। इस कविता का सार इस प्रकार है–

निर्जन वन की एक लता पर जुही की कली अपने नेत्र बन्द किये हुए पत्तों की गोद में सोती हुई प्रेमयुक्त स्वप्न देख रहीं थी । वासंती रात्रि थी, उसका प्रियतम ष्मलयानिलष किसी दूर देष में था। उसे अपनी प्रिया की याद आ गई। वह लता, कुंजो, बनों पर्वतों को पार करता हुआ उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ उसने कभी प्रिया के साथ मधुर काम–क्रीड़ा की थी। उसने देखा कि उसकी प्रिया जुही की कली सो रही थी। पवन रूपी नायक ने उसके कपोलों पे चूम लिया। कली सोती ही रही तथा नींद की खुमारी में डूबे अपने नेत्रे को बन्द किये रही । यौवन की मदिरा से उन्मत्त वह नायिका नायक को खुलकर खेलने का अवसर दे रही थी।

निर्दय नायक ने निश्ठुरता का परिचय देकर उसका गोरे कपोलों को मसल दिया, उसे आलिंगबद्ध कर सुन्दर कुसकुमार देह को झकझोर दिया। तब जाकर वह जागी और चौंककर प्रियतम को अपनी सेज के पास देखकर विनम्रता से हँस पड़ी और प्रिय के साथ मधुर काम–क्रीड़ा में लिप्त हो गयी।

भाशा, भाव, अलंकार योजना, प्रकृति–चित्रण आदि सभी दृश्टियों से यह कविता छायावादी षिल्प को वहन करती है। छायावादी कवियों ने प्रकृति पर मानव चेतना का आरोप करते हुए उसे नारी के रूप में चित्रित किया है। कविता में भाशा की कोमलता, नांद–जोन्दर्य देखते ही बनता है। पवन की गति को व्यंजित करने के लिए कवि ने इकहरे वर्णों वाली ऐसी परिन का प्रयोग किया है जिसे एवं साँस में पढ़ा जा सकता है। लगता है जैसे पवन बेरोक–टोक बढ़ रहा हो। यह पंक्ति हैं–

फिर क्या था पवन उपवन सर सरित गह गिरि काननकुंज लता पुश्पों को पर कर पहुँचा।
कविता की तीसरी उक्ति में प्रयुक्त षब्द ष्कुंजष और पुंजो से पवन की गति अवरूद्ध यगी

सी लगती है और पहुंचा जैसे उसके गन्तव्य का बोध कर रहा है।

(1) विजन वन वल्लरी पर कहते हैं मलयानिल।

जिसे षब्दार्थ– विजन – निर्जन, वल्लरी – लता, सुहागभरी = सौभाग्यवती, स्नेह स्वप्न मग्न – प्रेम के सपनों में डूबी हुई, अमर स्वच्छ, तनु लम्बे, पतली, छरहरी काया वाली, दृग बन्द

आँखे बन्द किये हुए, षिथिल – ढीली, पत्रांक

पत्तो की गोद में, निषा = रात्रि,

किये विरह–विधुर – विरह से व्यथित (लक्षणा से), मलयासि – चंदनी ग्रन्ध वाला पवना

सन्दर्भ– प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर सूर्यकान्त त्रिराठी षनिरालाष द्वारा रचित कविता ष्जुही की ष्कलीष से उद्धृत की गयी है। मूलतः यह कविता कवि के काव्य–संकलन ष्परिमलष में संकलित हैं, जिसे हमारी पाठ्य–पुस्तक ष्आधुनिक काव्यांजलिष में संकलित किया गया है।

प्रसंग– प्रकृति पर मानवी चेतना का आरोप करता हुआ कवि जुही की कली का चित्रण नायिका के रूप में कर रहा है, जो प्रेम के सपनों में खोई हुई निर्जन वन की लता पर पत्तों के बीच सो रही थी। उसका प्रियतम पवन किसी दूर देष में । विरहिणी जुही की कली की इस दषा का चित्रण इन ष्पंक्तियों में किया है।

व्याख्या– निर्जन वन की एक लता र कोमल बदन वाली तरूणी जुही की कली ऑखें बन्द किये षान्त भाव से पत्तों की गोद में सो रही थी। वह कोमलांग होने के साथ–साथ दुबली–पतली एवं छरहरे वदन की नायिका जैसी थी तथा सौभाग्यवती नायिका के सदृष प्रेम के सपनों में खोयी हुई पत्रांक में षिथिल होकर सो रही थी।

बसन्त ऋतु की मदमाती रात थी। उसका पति चंदनी गन्ध विकीर्ण करने वाला पवन इस समय कहीं दूर देष में था। विरह व्यथित मलयान्ति प्रिया से विमुक्त होकर उसकी याद में व्याकुल हो रहा था।

साहित्यिक सौन्दर्य

(1) छायावाद की एक प्रमुख प्रवषत्ति प्रकृति का मानवीकरण है, जसका परिचय इन पंक्तियों में मिल जाता है। जुही की कली एवं मलयानित दोनों का मानवीकरण यहाँ किया गया है।

(2) जूही की कली का चित्रण कवि ने स्वकीया नायिका के रूप में किया है क्योंकि उसे सुहागभरी (सौभाग्यवती) कहा गया है।

(3) छायावादी कवि प्रेम और सान्दर्य के हैं। प्रकृति पर मानवी चेतना का आरोप इन पंक्तियों ने प्रायः श्रषंगार निरूपण में किया है।आलोचकों का एक वर्ग यह भी मानता है कि इन्होंने प्रकृति में नारी को देखा है।

(4) सांकेतिक षैली में श्रृंगार की व्यंजना की गई है। अमल षब्द जहाँ नायिका की ष्पवित्रताष का बोध कराता है, वहीं षषिथिलष षब्द रतिक्रीड़ा के उपरान्त होने वाली थकान को व्यंजित करता है।प्रेम के सपनों में डूबी नायिका को सम्भवतु प्रिय के साथ व्यतीत किये गये मधुर क्षणों कीयाद आ रही है। रति–क्रीड़ा के उपरान्त होने वाली वही षिथिलता उसके षरीर में दिखाईदे रही है।

(5) स्मृति संचारी वियोग श्रृंगार

(6) भाशा की कोमलता, संगीतात्मकता दृश्टव्य है।

(7) निराला को मुक्तछन्द का जनक कहा जाता है। मुक्त छन्द में लिखी इस कविता में लय, ताल, नाद का पूरा ध्यान रखा गया है।

(8) मानवीकरण के साथ–साथ अनुप्रास अलंकार की योजना भी की गयी है।

(2) आयी याद बिछुड़न. कली खिली साथा

षब्दार्थ– विछुड़न – वियोग, कान्ता – प्रेयसी, कम्पित = काँपता हुआ, कमनीय सुन्दर, गात = षरीर, उपवन = बगीचे, सर–सरति तालाब एवं नदियों, गहन गिरि कानन – दुर्गम पर्वत एवं निर्जन जंगल, कुंज झाड़ियों, पुंज समूह, केलि = क्रीड़ा।

प्रसंग– विरह व्यथित पवन को अपनी प्रिया का स्मरण हो आया और वह उस जुही की कली से मिलने को बेचौन हो उठा। गहन पवन, कुंज, सरोवर एवं नदियों को पार करता हुआ वह उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ उसको प्रेयसी आँख बन्द किये पत्रांक में सो रही थी।

व्याख्या– वासंती रात्रि में मादक वातावरण ने नायक पवन को प्रिया से मिलने के लिए व्यग्र कर दिया। विरह व्यथित मालयानिल को विभाग के इन क्षणों में भी मिलन का यह दृष्य याद हो आया अब अर्द्ध–रात्रि की बेला में चाँदनी खिली हुई थी और उसने प्रिया के साथ रसकेलि की थी। उसे अपनी प्रिया का काँपता हुआ सुन्दर षरीर स्मरण हो आया। बस, फिर क्याथा वह पवन रूपी नायक बाग–बगीचों, नदी–तालाबों, गहन वनों एवं पर्वतों, कुंजों एवं तालाबों के झुरमुटों को पार करता हुआ उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ प्रिया के साथ उसने मिलन सुख का आनन्द प्राप्त करते हुए काम–क्रीड़ा की थी।

साहित्यिक सौन्दर्य

(1) पवन एवं कली का मानवीकरण किया गया है।

(2) प्रकृति का चित्रण छायावादी कवियों ने आलम्बन के रूप में किया गया है।

(3) स्मषति संचारी, संयोग श्रषंगार

(4) मानवीकरण, विरोधाभास, एवं अनुप्रास अलंकार को छटा इस अवतरण में देखी जा सकती है। (5) कविवर षदिनकरष ने ष्उर्वषीष में लिखा है कि पुरवा को जब अपनी प्रेयसी उर्वषी के साथ व्यतीत पल याद आते हैं तो उसे लगता है कि षरी के रक्त के उद्‌भुत माध से ओत–प्रोत हो षाया है, प्रिया के एक–एक अंग का रोमांच, कम्पन्नै याद आते हैं, स्मृतियाँ बुलबुलों सी फूटने

लगती हैं–

बुलबुलों सी फूटने लगतीं मधुर स्मषतियाँ ह्रदय में याद आता है मंदिर उल्लास में फला हुआ वन याद आते हैं तरंगित अंग के रोमांच कम्पन

स्वर्ण वर्ण वल्लरी में फूल से खिलते हुए मुख कामनाएँ प्राण को हिलकोरती हैंचुम्बनों के

चिन्ह जग पड़ते त्वचा में (6) सरल, सरस, प्रवाहमयी भाशा का प्रयोग इन पंक्तियों में

किया गया है।– दिनकर (उर्वषी)

(7) मिलन के लिए व्याकुल नायक पवन की व्यग्रता का सुन्दर चित्रण इन पक्तियों में है। कौन कहे ?

(3) सोती थी जाने कहो षब्दार्थ– कपोल रू गाल, वल्लरी लता, हिंडोल = झूला, निद्रालस – नींद का आलस्य, वंकिम = तिरछे, किंवा – अथवा, यौवन की मदिरा पिये = यौवन के नषे में चूर।

प्रंसग– प्रिया का स्मरण आने पर पवन रास्ते की समग्र बाधाओं को पार करता हुआ उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ जुही की कली लता पर पत्तों की गोद में सो रही थी। नायक ने वहाँ पहुँचकर उसके कपोलों पर चुम्बन अंकित किया, पर वह नींद की खुमारी डूबी रही। इन पंक्तियों में कवि ने इसी वष्तान्त का वर्णन किया है।

व्याख्या– मलयानिल रूपी नायक अपनी प्रिया जुही की कली रूपी नायिका का स्मरण कर उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ निर्जन वन में लता पर पत्रों की गोद में वह सो रही थी। ऐसी स्थिति में वह भला प्रिय के आने की बात कैसे जान सकती था नायक ने प्रेम विह्वल होकर उस सोती हुई नायिक जुही की कली के कपोलों पर मधुर चुम्बन अंकित किये। पवन के झोकों नसे सम्पूर्ण लता झूले के समान दोलन करने लगी किन्तु जुही की कली (रूपी नायिका) सोती ही रही। प्रिय आगमन पर भी सोती रहने वाली उस नायिका ने जागकर प्रिय का स्वागत अभिनन्दन न कर पाने की जो गलती की थी, उस चूक की क्षमा भी नहीं माँगी और नींद की खुमारी में डूबे हुए अपने विषाल नेत्र की जान–बूझकर मूँदे हो रही। आँखें खोलने के आवष्यकता भी उसने अनुभव न को । पता नहीं वह सो रही थी या सोने का बहाना किये हुए थी। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह यौन के नषे में चूर होकर प्रिय के चुम्बनों का सुख ले रही हो और जान–बूझकर सोने का बहाना किये हो। कौन जाने सच क्या था?

साहित्यिक सौन्दर्य–

(1) प्रकृति पर मानवी चेतना का आरोप करते हुए मानकीकरण अलंकार का विधान किया गया है। (2) वक्रोक्ति अलंकार का विधान है।

(3) नायिका वास्तव में सो रही थी, या सोने का बहाना किये हुए थी इसे कौन जानता है? लगता तो यही है कि यौवनोन्मत्त होकर वह प्रिय के चुम्बनों का सुख ले रही थी।

102 (4) बिहारी ने भी नायक–नायिका के इस चुम्बन सुख का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है– मैं सिहा सोयो समुझि मुँह चूम्यों ढिंग जाया हँस्यो विस्वानी गल गह्यो रही गरैँ लपटाय

अर्वाचीन हिन्दी काव्य

(5) श्रषंगार रस की योजना की गयी है।

(6) यौवन की मंदिरा में रूपक अलंकार

(7) वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल में उदाहरण अलंकार है।

(8) कोमलकान्त मधुर पदावली का प्रयोग है।

(9) संस्कृतनिश्ठ, षुद्ध परिमार्जित खड़ी बोरी प्रयुक्त है।

(10) इस कविता में निराला ने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है।

(4) निर्दय उस नायक ने षब्दार्थ– निर्दय निश्ठुर, निपट नितान्त निठुराई–बिहारी खेल

रंग प्यारे संगा

निश्ठुरता, हेर = देखकर, सेज –

सैय्या, नम्रमुखी जिसका मुख लज्जा से नीचे झुका हो ऐसी नायिका, खेल रंग नाना प्रकार की काम–क्रीड़ाएँ।

प्रसंग– विरह व्यथित नायक पवन रास्तें की आधाओं को पार करता हुआ अपनी प्रिया जुही की कली के पास जा पहुँचा, जो उस समय सो रही थी। नायक ने प्रिया के साथ जो प्रेम–क्रीड़ा की उसका वर्णन इन पंक्तियों में कवि ने किया है–

व्याख्या– नायक ने सोती हुई उस नायिका जुही की कली के कपोल चूम लिये। सारी लता हिंडोले के समान झूलने लगी पर वह सोती ही रही। निर्दय नायक ने नितान्त निश्ठुरता का परिचय देते हुए उस सोती हुई नायिका को अपने आलिंगन पाष में बाँध लिया और लगातार झोंके दे–देकर उसकी सुन्दर, सुकमार देह को झकझोर दिया।

नायिका के गोरे कपोल उसने निश्ठुरता से मसल दिये। युवती नायिका अचानक चौंक पड़ी अर्थात् चौंकने का अभिनय करते हुए वह जाग पड़ी और आष्चर्यचकित दृश्टि से चारों ओर देखने लगती, जैसे वह यह दिखाना चाहती थी कि जो कुछ हुआ है उसका उसे बोध ही नहीं है। तत्पष्चात् प्रिय को अपनी षैय्या के पास खड़ा देखकर वह प्रसन्न हो गयी, लज्जा से उसने अपना मुख झुकाकर काम–क्रीड़ा की मूक सहमति प्रदान कर दी और फिर प्रिय के साथ नाना प्रकार की काम–क्रीड़ाओं में निमग्य होकर आनन्दित हो गयी।

साहित्यिक सौन्दर्य

(1) छायावादी कवियों ने प्रकृति में भी नारी को देखा है। प्रकृति पर पानी का आरोप करते

हुए उन्होंने षृंगार की अभिव्यक्ति की है।

(2) नायक की निर्दयता यहाँ खटकती नहीं, अपितु यह नायिका को मनोभावना के

अनुकूल है।

(3) श्रषंगार रस की अभिव्यक्ति है। मुक्त बन्द का प्रयोग है।

(4) भाशा की कोमलता एवं नाद– सौन्दर्य गुश्टव्य है।

(5) लज्जा, सौत्सुक्य, उन्माद जैसे मनोभाव का उल्लेख इस अवतरण में है ।

(6) सरल, सरस, लालित्यपूर्ण भाशा का प्रयोग किया गया है।

(7) पवन एवं जुही की कली का मानवीकरण किया गया है।

कविता का परिचय

2. बादल राग

निराला की यह कविता मूलतः उनके काव्य–संकलन ष्परिमलष् में संकलित है। कवि ने यहाँ अपनी प्रगतिवादी भावना का परिचय देते हुए बादल की क्रान्तिदूत के रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी गम्भीर गर्जना से वह सर्वत्र आन्दोलन फैला देता है। निर्झ, सरिता, पर्वत, वृक्ष,

बिजी, जनाजन में एक नयी चेतना एंव स्फूर्ति का समावेष कर देता है। उथ–पथ पचा देने वाला बादल सबकों अपने गर्जनमय भैरव संसार से परिचित कराता है।

कविता की दूसरी विषेशता इसमें ध्वन्यात्मक षब्दों का प्रयोग है। नदी की ध्वनि, बादलों की ध्वनि, वृक्षों की मर्मर ध्वनि, झर–झर करने वाले झरने स जैसे समाप्त हो गये हैं। प्रकृति का उपयोग कवि ने मानवीय भावनाओं को जगाने व उद्दीप्त करने के लिए यहाँ किया है।

(1) झूम–झूम मष्दु गरण– गरज घनघोर ! राग अमर! अम्बर में भर निज रोर! झर झर झर निर्झर – गिरि–सर में मरु, मरु–ममेरे, सागर में, मन में विजन गो–कानन मेंआनन – आनन में रस घोर कठोर –.
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर !

षब्दार्थ– मृदु – मीठी, कोमला घन

मीठी, कोमला घन = बादल घोर = जोर से। अम्बर

षोरः निर्झर झरने। गिरि

की आवाजा तरु = वक्षा सरित

जंगल। आनंन मुख। रव

आकाषा षेर

पर्वत सर – सरोवरा मरु – मरूस्थल मर्मर – हवा से पत्तों के खड़कने

नदी । तड़ित – बिजली । विजन = निर्जन। गहन = गम्भीर। कानन ध्वनि। रोर = आवाज।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष द्वारा षबादल रागष नामक कविता से उद्धृत की गयी हैं। मूलतः यह कविता कवि के काव्य–संकलन षपरिमलष में संकलित है जिसे हमारी पाठ्य पुस्तक षआधुनिक हिन्दी काव्य में स्थान दिया गया है।

प्रसंग– कवि ने बादल से अनुरोध किया है कि तुम गम्भीर स्वर में गर्जना करते हुए सर्वत्र षोर मचा दो। नदी, वन, पर्वत, निर्झर, वृक्ष, सागर, बिजल, पवन में अपनी घनघोर आवाज व्याप्त करते हुए सर्वत्र अमर रागिनी का संचार कर दो। तुम क्रान्तिदूत हो, क्रान्ति के वाहक हो। तुम्हारे स्वरों से प्रेरित होकर ही सर्वत्र क्रान्ति का स्वरं गूंजता है।

गाव्या– हे बादल। तुम घनघोर गर्जना से आकाष को गुंजायमान कर दो। तुम्हारी वह गम्भीर गर्जना आकाष में वत्र व्याप्त हो जाये, परी आकांक्षा है। वह गर्जना केवल आकाष तक ही सीमित न रहे अपितु झर–झर झरने वाले निर्झरों, पर्वतों में, सरोवरों में, मर्मर ध्वनि करने वाले वक्षों में, जान तरंगों वाले सागर में व्याप्त हो जाये। यहीं नहीं अपितु वह घनघोर

ध्वनि नदी की धारा में आकाष में चमकने वाली बिजली में और गतिषील वायु में भी स समा जाये ऐसी मेरी आकांक्षा है।

क्रान्तिदूत बादल! तुम्हारी गर्जना प्रत्येक व्यक्ति गर्जना लोगों में क्रान्ति की चिनगारी भरदे और यह आक धारण करे, यही मैं चाहता हूँ।

को प्रभावित करें। तुम्हारी गुरू गम्भीर कठोर में गर्जना के स्वरों को अमररागिनी के रूप

विषेश

(1) इस कविता में कविवर निराला का प्रगतिवादी स्वर उभरा है। बादल की गर्जना क्रान्ति का प्रतीक है।

(2) बादल अपनी गर्जना से केवल आकष को ही गुंजापान न करे अपितु उसके ये स्वर सर्वत्र व्याप्त हो जायें।

(3) प्रस्तुत कविता की ध्वन्यात्मक षब्दावली. दर्षनीय है। झर–झर झर झूम–झूम–झूम, गरज– गरज ध रमल – तरु, जैसे षब्द इसी प्रकार के हैं। इनमें ध्वन्यर्थं व्यंजना एवं पुररुक्तिप्रकाष अलंकार है ।

– (4) झर – निर्झर में संभग पद यमक अलंकार है ।

(5) परे पद्य में मानवीकरण अलंकार है।

(6) षुद्ध, परिश्कृत, संस्कृतनिश्ठ साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग इस अवतरण में किया गया है।

(2) अरे वर्श के हर्श !

बरस तू बरस बरस रसधार!

पार ले चल तूं मुझको,

बहा, दिखा मुझको भी निज

गर्जन गौरव, संसार!

उथल–पुथल का ह्रदय–

मचा हलचल–

चल रे चल,

मेरे पागल बादल !

षब्दार्थ– हर्श – प्रसन्नता । रसधार – जल की धारा, रस की धारा । गर्जन = गर्जना द्य भैरव भयानका दलदल कीचड़ । नद बड़ी नदी । कलकल जल के बहने की आवाज।

प्रसंग– बादल को क्रान्तिदूत मानते हुए कवि उससे आग्रह करता है कि तू घनघोर गर्जना कर। रू तेरी आनन्ददायी रसधार जहाँ लोक–कल्याणा का संचार करेगी वहीं तेरी गर्जना उथल–पुथल मचा देगी। जलधारा को पाकर नदी कल–कल निनाद करती हुई बहने लगेगी। तू सर्वत्र हलचल मचा देने में समर्थ

व्याख्या– कवि बालद का आह्वान करता हुआ कहता है कि हे बांदल तू घनघोर गर्जना करता हुआ वर्शा कर तेरे द्वारा बरसाये गये जल से ही लोग वर्शपर्यन्त हर्शित रहते हैं। तू वस्तुतः जल की ध रा ही नहीं अपितु रस की धारा भी बरसाती है। हे बादला तू मुझको भी अपने साथ बहाकर ले चल और अपने गर्जन– तर्जन वाले भयानक संसार से मुझे परिचित करा दे। तेरी वह गर्जना मेरे हृदय में भी उथल–पुथल करके हलचल मचा दे, मैं यहीं चाहता हूँ।

भाव यह है कि कवि बादल को एक ऐसे क्रान्तिदर्षी व्यक्ति के रूप में देखता है जिसका विक्षोभ लोककल्याण का वाहक होता है। बाल की गर्जना अन्ततः जल की वह धारा बरसाती है जिससे लोगतष्प्त होते हैं। क्रान्तिकारी व्यक्ति का गर्जन–तर्जन भी अन्नतः उथल–पुथल मचा देता हैऔर वह भी लोककल्याण का विधान करता है। इसीलिए कवि स्वयं भी बादलों से उसकावह भैरव संसार दिखाने की इच्छा व्यक्ति कर रहा है।

विषेश– 1. बादल की गर्जना अन्नतः मूसलाधार जल की वर्शा करके लोगों की प्यास बुझाती है, खेतों को सींचकर अन्न उत्पन्न करने में सहायक बनती है। इस प्रकार बादल की गर्जना ष्लोक–कल्याणकारी होती है।

2. बादल क्रान्तिदूत है। वह क्रान्ति का प्रतीक है। कवि उससे क्रान्ति की प्रेरणा पाता है।

3. बरस – रसधार में सभंग पद यमुळे अलंकार है।

4. रसधार में ष्लेश अलंकार है क्योंकि इसके दो अर्थ हैं– रसं की धारा एवं जल की धारा ।

5. गर्जन भैरव संसार यहाँ क्रान्ति विक्षोभ एवं आक्रोष की अभिव्यक्ति करता है।

6. हलचल चल में पुनः संभग एह चमक है।

7. सरल, सरज, प्रवाहपूर्ण भाशा का प्रयोग है।

8. मुक्त छन्द का प्रयोग है जिसमें लय और ताल का निर्वाह है।धँसता दलदल हंसता है

नद खल– खलबढ़ता, कहता कुलकुल कलकल!देख–देख नाचता हृदय

बहने को महाविकल– बेकल, इस मरोर से इसी षोर से सघन घोर गुरु गहन रोर से मुझे गगन का दिखा सघन वह छोर !
– राग अमर! अम्बर में भर निक षेर!

षब्दार्थ धँसता = नश्ट कर रहा है। दलदल – कीचड़ा नद = बड़ी नदी । खल–खल = नदी के बहने का षब्द कल–कल जल–प्रवाह की मधुर ध्वांना महाविकल = अत्यधिक व्याकुल। बेकल

बेचौना गुरूगहन– गुरु गम्भीर। रोर = षोर ।

प्रसंग – बादल क्रान्तिदूत है। गम्भीर गर्जना करके वह जो जल बरसाता है उससे ही नदियों को जीवन (जल) मिलता है। बादल की गर्जना निष्चय ही लोक–कल्याणकारी है इसलिए कवि भी आकाष के उस दोर को देखना चाहता है, जहाँ बादल को गुरू गम्भीर गर्जना की आवाज व्याप्त है।

व्याख्या– हे बादल! तेरे द्वारा बरसायी गयी जलधारा के प्रबल वेग से इधर–उधर फैला दलदल समाप्त हो जाता है। नदियाँ भी जल पाकर विषाल नद बन जाती है और उनमें बाढ़ आ जाती है। बाढ़ से आप्लावित वे नदियाँ अब विषाद नद बनकर खल– खल हँसती हुई जान पड़ती हैं।

यहीं नहीं अपितु छोटी–छोटी नदियाँ, जलधाराएँ एवं झरने बरसात के जल को पाकर कल–कल निनाद करते हुए बहने लगते हैं। इस सम्पूर्ण दृष्य को देखकर मेरा हृदय प्रसन्नता से नाच उठता है और वह भी तेरी तरह द्रवित होकर लोक–कल्याण का वाहक (बनना चाहता है।

भाव यह है कि बादल स्वयं को नश्ट करके जल के रूप में बरसकर दूसरों का कल्याण करता है। मेरा मन भी दूसरों के दुःख को देखकर उसे दूर करने के लिए विकल हो उठता है। मैं भी चाहता हूँ कि तेरी भाँति द्रवित होकर लोक–कल्याण का विधान करूँ।

. कवि बादल से आग्रह करता है कि तू मुझेआन्तरिक पीड़ा से द्रवित होने की षिक्षा देता है। तेरी गुरु गम्भीर गर्जना मुळे भी प्रेरणा प्रदान करती है। मैं चाहता हूँ, कि तू मुझे आकाष का वह बादलों से भरा हुआ स्थान दिखा दे जहाँ तेरी घनघोर गर्जना के स्वर व्याप्त हैं। तेरा वह स्वर आकाष में अमर राग पर रहा है। मैं भी चाहता हूँ कि लोगों की पीड़ा द्रविः होकर क्रान्ति का वाहक बनूँ और तेरे समान लोक कल्याण का विधान करूँ।

विषेश– 1. बादल को कवि ने क्रान्तिदूत के रूप में स्वीकार किया है।

2. बादल का मानवीकरण करते हुए कवि ने प्रकृति पर मानवी चेतना का आरोप किया है,

जो सभी छायावादी कवियों की प्रमुख प्रवषत्ति है।

3. कविता में प्रयुक्त ध्वन्यात्मक षब्दावली वृश्टव्य है। इस षब्दावली के कारण यहाँ ध्वन्यर्थ

व्यंजना अलंकार है।

4. नद को हँसते हुए दिखाया गया है अतः मानवीकरण है।

5. मरोर, षोर, घोर, षेर, छोर जैसे षब्दों के कारण पदमैत्री अलंकार है।

6. सम्पूर्ण कविता में अनुप्रास की छटा विद्यमान है।

7. सरल, सहज, प्रवाहपूर्ण भाशा का प्रयोग है जिसमें लाक्षणिकता विद्यमान है।

8. बादल को ष्क्रान्तिकारीष् व्यक्ति का प्रतीक माना गया है।

9. कवि की प्रगतिवादी भावना मुखरित हुई है।

4. जागो फिर एक बार –

कविता का परिचय

सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष् द्वारा रचित ष्जागो फिर एक बारष् षीर्शक प्रस्तुत कविता भारतीय अतीत के गौरव का स्तरण कराने वाली राश्ट्रीय भावना से परिपूर्ण एक ओजस्वी कविता है। इस कविता की रचना दो खण्डों में हुई है। प्रथम खण्ड की रचना सन् 1918 ई. में तथा द्वितीय खण्ड की रचना सन् 1921 ई. में हुई थी। सम्पूर्ण कविता उद्‌बोधन गीत के रूप में है। प्रस्तुत कविता के द्वारा निराला जी ने भारतीय जन–मानस को अंग्रेजों से संघर्श के लिए प्रेरित किया था। जब सन् 1919 की 13 अप्रैल को वैषाखी पर्व के दिन पंजाब के जलियाँवाला बाग में आयोजित विरोध सभा में निहत्थी जनता पर अंग्रेजी फौन ने गोली चलाकर हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया था। पंजाब की जनता को प्रेरित करने तथा उसका उत्साहवर्धन के उद्देष्य से ही कवि ने इस कविता में गुरूः गोविन्द सिंह के ष्षौर्यष् एवं ष्सत्श्री अकालष् ने महत्व को प्रतिपादित किया है। कविता के अन्तिम अंष में कवि ने ज्ञान एवं कर्म विशयक भारतीय चिन्तन के उद्धरण प्रस्तुत कर मृत्यु का भर त्याग कर कर्मपथ पर अग्रसर होने के लिये देषवासियों का आह्वान किया है।

(1) जागों फिर एक बार !

समर में अमर कर सण, गान गाए महासिन्धु से सिन्धु–नद–तीरवासी।

सैन्धव तुरंगों पर चतुरंग चमू संग, सवा–सवा लाख प एक को चढ़ाऊँगा, गोविन्द सिंह निजी नाम जब कहाऊँगा

किसने सुनाया वह वीर–जन– मोहन अति दुर्जेय संग्राम– राग, फाग का खेला रण

बारहों महीनें में?– षेरों की माँद में आया है आज स्या

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ छायावाद की सुप्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष् द्वारा रचित ष्जागो फिर एक बारष् षीर्शक कविता से उद्धृत है। इनका संकलन हमारी पाठ्य–पुस्तक ष्आध निक हिन्दी काव्यष् के अन्तर्गत हुआ है।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों के कवि उद्‌बोधन देता है। वह भारतवासियों की पुरानी वीरता की बातें याद दिलाता है। वह बताता है कि उनके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है उन्हें तो केवल अपनी विस्मष्त षक्ति को याद करके उसका केवल उपयोग करना है। पहले अनेक बार वे अपनी षक्ति का परिचय दे चुके है, उनका उदाहरण देता हुआ कवि कहता है।

में व्याख्या– हे भारतवासियों एक बार पुनः जाग जाओ। पहले तुम सदैव जाग्रत रहे हो, किन्तु प्रमाद में पड़कर बेकार हो रहे हो अतः तुम अपने प्राचीन गौरव को भूल गये हो। हे

आर्य पुत्रों । तुमने सदैव ही महासिन्धु के समान गर्जना करते हुए युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी और इस प्रकार अपने नाम को अमरत्व प्रदान किया था। इस देष की वीरता की अमर कहानी विष्व के कोने—कोने में व्याप्त हो चुकी है। तुम्हीं ने सिन्धु देष की वीर घोड़ों पर चढ़कर तथा चारों प्रकार को हय, गज, रथ, पैदल सेना को साथ लेकर षत्रु सेना के विरूद्ध अभियान किया था। उस गोविन्द सिंह ने वीर पुत्रों को सम्मोहित करने वाला दुर्जेय युद्ध का संगीत यह कह कर सुनाया था कि मेरा नाम गोविन्द सिंह तभी सार्थक है जब मैं सवा—सवा लाख षत्रुओं की सेना के मुकाबले पर अपना एक—एक वीर अड़ाकर उसको बलिदान कर दूँगा अर्थात् मेरा प्रत्येक वीर सवा लाख षत्रु के लिए पर्याप्त हैं। यह वीरों को मोहित करने वाले भयंकर और दुर्गम संग्राम की भेरी किसने बजाई थी ।अर्थात् गुरू गोविन्द सिंह के रूप में तुम भारतीयों ने बजाई थी तुम्हारी वीरता का विष्वास करके ही उन्होंने ये षब्द कहे थे। जिस प्रकार होली के दिन मस्त होकर सभी व्यक्ति फाग खेलते हैं उसी वीरता के गीतों एवं कार्यों से देष का रोग—रोम विंधा था, किन्तु आज इस वीर प्रसू भूमि पर जो षेरों का निवास स्थान है, स्यार (अंग्रेज) प्रवेष कर आया। इसका कारण यह है कि भारतवासी षेर होकर भी अपने प्रमाद और आलसय में पड़े हुए हैं है देष के वीर षेरो। — तुम अपना प्रमाण और आलस्य त्याग दो और एक बार चौतन्य हो जाओं और षत्रु को देष की सीमा से बाहर खदेड़ दो।

विषेश— 1. प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने गुरू गोविन्द सिंह के पराक्रम के रूप में भारत की अतीतकालीन गौरवषाली परम्परा का ओजस्वी भाशा में उद्घाटन किया है।

2. प्रस्तुत पंक्तियों ध्वनि, लय तथा संगीत से युक्त हैं। इनमें उत्साह भाव की व्यंजना है। 3. अलंकार— षान गायेष, ष्चतुरंग चमूष में अनुप्रास, ष्समर — अमरष में पदमैत्री, ष्सवा—सवाष

में प्रनरुक्तिप्रकाष तथा ष्महासिन्धु सेष में उपमा अलंकार है।

(2) सत् श्री अकाल,

भाल अनल धक—धक कर जमा,

भस्म हो गया था काल—

तीनों गुण ताप त्रय,

अभय हो गए थे तुम

मष्त्युञ्जय व्योमकेष के समान,

अमष्त— सन्तान ! तीव्र

भेदकर सप्तावरण— मरण—लोकारू

षोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ

जहाँ आसन है सहस्त्रार—

षब्दार्थ– सत् श्री अकाल यह सिक्खों का धार्मिक नारा है। ये लोग यह कहकर एक–दूसरे से अभिवादन करते है। भाल–अनल श अग्नि से युक्त भान तीनों गुण – सात्विक, राजस तथा तामस द्य तापत्रय – तीन प्रकार के ताप, दैहिक, दैविक भौतिक ताप। अभय = निडर मृत्युंजय मृत्यु को जीतने वाला । व्योमकेष = महादेष अमृत–सन्ताह – देवताओं को सन्तान, अर्थात् भारतवासी । सप्तावरण – सात लोक (स्वर्ग की कल्पनासात लोकों के ऊपर की गई है।) मरण. लोक – पृथ्वी । सहस्वर कमला (योगियों ने यहीं पर ब्रह्म की स्थिति मानी है)

सहस्त्रदल

प्रसंग– यहाँ कवि सिक्खों की तथा भारतवासियों की वीरता का वर्णन करता हुआ कहता है। व्याख्या– गुरू गोविन्द सिंह तथा उनके साथी ष्सातु श्री अकालष की गर्जना करते हुए युद्ध–भूति में कूद पड़े। उनके माले आग की धकधक करके जलती हुई। ज्वालाओं के समान चमकने लगे। उनके वीरता की अग्नि तथा मालों की चमक के सामने साक्षात् काल भी भस्म हो गया था। अर्थात् जिस समय वीर पुत्र हाथों में चमकते हुए भाले लेकर युद्ध भूमि में बंद पड़े थे उस समय उनको मृत्यु का भी भय नहीं हो रहा था। वे भूल गये थे कि युद्ध करने से मौत की आती है। उनके समक्ष केवल एक ही लक्ष्य था युद्ध में षत्रु को पराजित दैहिक, दैविक तथा भौतिक तीन प्रकार के तापों से सात्विक, राजस और तामस तीनों प्रकार के गुणों से मुक्त हो गये थे। हे भारतवासियों। तुम उन्हीं अमर वीरों को सन्तान हो । तुम्हारी नसों में भी वही रक्त प्रवाहिता हो रहा है, जो सात लोकों को तीव्रता से भेदकर आठवें लोक स्वर्ग में पहुँच गये थे। उन्होंने एक दुःखदायी मृत्युलोक को छोड़ दिया था। इस प्रकार वे उस स्थान पर पहुँच गये थे जहाँ पर सहस्त्रदल कमल पर ब्रह्म का निवास है अतः एक बार पुनः उस उन्नति के षिखर तक पहुँचने के लिए तुम प्रमाद की नींद से जग जाओं और पुनः प्राचीन वैभव एवं गौरव प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

विषेश – 1. इस छन्द में सप्तावरण भेद की जो क्रिया आई है उससे एक अन्य यौगिक संकेत भी मिलता है। योगी मूलाधार में पड़ी हुई कुण्डलिनी षक्ति को प्राणायाम द्वारा सुशुम्ना नाड़ी में प्रवेष करता है और धीरे–धीरे चढ़ती हुई वह इड़ा को पार करती हुई, ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है और इस प्रकार साक्षात् ब्रह्म का दर्षन कर योगी अमर हो जाता है।

2. अलंकार– ष्सत–श्रीष, ष्धक–चिककरष, ष्ताप–त्रयष में अनुप्रास रू व्योमकेष के समानष में उपमा तथा ष्धक–धकष में तीप्सा अलंकार है । ष्वरण– मरणष एवं ष्लोक–षोकष में ध्वनिसाम्य है।

3. संस्कृत तत्सम प्रधान, समासबहुत तथा ओजगुणपूर्ण खड़ी बोली का प्रयोग दृटव्य है। 4. वह तोड़ती पत्थर कविता का परिचय – निराला को इस बहुख्यात कविता का संकलन उनके काव्य–संग्रह ष्परिमलष में हुआ है। कवि इलाहाबाद के पद पर एक युवती को सुदृढ़ हथौड़े से पत्थर तोड़ते देखता और बगल में ही अवस्थित गगनचुम्बी अट्टालिका को देखकार उसका हृदय अतिषय भाव– सबल हो जाता है । कवि उस युवती की क्रियाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। इस सबके वर्णन उपक्रम में कवि की वर्णन चातुरी को अपनी चारूता दिखाने को अवकाष प्राप्त हो जाता है। वहाँ का परिवेष, युवती की दृश्टि, उसका वेष, उसकी भगिमाएँ, उसकी सकर्मक– अविराम क्रियाषीलता, उसकी आत्मलीन–सी सहनीलता और उसकी बहुत कुछ कहती हुई आँखें सब का सब कवि ने अत्यन्त निपुणता

के साथ चित्रित किया है। कविवर निराला सचमुच निरा कवि हैं। वे सचेत और जाग्रत रचनाकार हैं। जीवन जगत् के विशय में उनका चिन्तन गम्भीर है। अषेश मानवता के प्रति उनके मन में असीम करूण और वेदना है। कवि की स्वीकारोक्ति भी है– .

इस कविता में देष–दुनिया से कवि के सकारात्मक– सकर्मक संवेदनषील सरोकार की अभिव्यक्ति हुई हैं। कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और उसकी वर्णन चातुरी के यहाँ सुन्दर दर्षन होते हैं।

(1) वह तोड़ती पत्थर

देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर,

वह तोड़ती पत्थर

गुरू हथौड़ा हाथ,

कोई न छायादार

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार

ष्याम तन, भर बँधा यौवन,

नत नयन, प्रिय–कर्म–रत मन,

करती बार–बार प्रहार,

सामने तरु–मालिका अट्टालिका, प्राकारा

षब्दार्थ – ष्याम तन काला षरीरा–भर बँधा = षरीर में बँधा हुआ और भरा हुआ, समाया हुआ। नत नयन रू आँखें झुकी हुई। गुरु भी प्रहार = चोट । तरु मालिका – पेड़ों की पंक्ति । प्राकार

चहारदीवारी

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण छायावाद कलाकार कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष जी की प्रगतिवादी कविता ष्वह तोड़ती पत्थरष षीर्शक से अवतरित किया गया है।

प्रसंग

प्रस्तुत अवतरण में निराला जी ने इलाहबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली श्रमिक महिला का मार्मिक चित्रण खींचकर पूँजीवादी व्यवस्था पर हथौड़ा का प्रहार किया है।

व्याख्या– कवि मजदूरिनी की दषा का चित्रण करते हुए कहता है कि मजदूरन अपने उदर–पोशण के लिए पत्थर तोड़ने जैसा कठोर श्रम वाला कार्य कर रही थी। मैंने उसे इलाहाबाद के मार्ग पर पत्थर तोड़ते हुए देखा था। वह पत्थर तोड़ने जैसा कठोर श्रम वाले कार्य को स्वयं स्वीकार करके जिस स्थान पर बैठकर पत्थर तोड़ने का कार्य कर रही थी यहाँ कोई छायादार वक्ष न था, जिसके नीचे बैठकर वह अपनी गर्मी को दूर कर लेती। इस प्रकार का बतावरण उसके कठोर कार्य को और भी अधि

के कश्टदायक बना रहा था।

कठोर श्रम करने के कारण उसका षरीर ष्यामला पड़ गया था, किन्तु वह यौवन से भरपूर और सुगठित था, परन्तु आँखें झुड़ी हुई थीं और उसका मन नि (मालिक) को प्रसन्न करने वाले कार्यों में लगा हुआ था। उसके कोमल हाथों में भारी हथौड़ा था, जिससे वह पूरी षक्ति के साथ बार–बार पत्थरों पर चोट करती हुई पत्थर तोड़ रही थी। मद्यपि उसके सामने कुछ दूरी पर वृक्षों की कतारों से घिरी हुई अट्टालिकाएँ और ऊँचे–ऊँचे महल थे।

कवि के कहने का आषय यह है कि मजदूरिन नारी–गुणों से भरपूर थी, किन्तु भूखे पेट की समस्या ने उसे लाचार और मालिक के षोशण के कारण ही आँखें नीचे की ओर झुकी हुई अपनी बेबसी और लज्जाषीलता को प्रकट कर रही थीं। पत्थरों पर पड़ती हुई हथौड़े की चोटें यह भाव अभिव्यंजित कर रही थीं कि ये चोटे पत्थरों को नहीं अपितु समाज की पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार है। मजदूरिन के सामने दिखाई देने वाली वृक्षों की कतारों से घिरी हुई अट्टालिकाओं और ऊँचे–ऊँचे महलों का निरूपण करके कवि ने समाज में पूँजीवादी वर्ग और गरीब वर्ग के बीच व्याप्त अन्तराल को प्रतिपादित किया है। कवि यह कहना चाहता है कि आज समाज में एक ओर पूँजीवादी वर्ग वैभवषाली जीवन व्यतीत कर रहा है तो दूसरी ओर श्रमिक और सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली यह मजदूरिन दीन–हीन है षोशित जीवन जा रही है। यह दषा समाज के लिए अभिषाप है।

विषेश– 1. प्रस्तुत कविता निराला की एक प्रगतिवादी कविता है, जिसमें उन्होंने पीड़ित, षोशित मानवता के प्रति सहानुभूमि व्यक्त की है।

2. एक तरफ तो धूप में बैठी हुई मजदूरनी है और उसके ठीक सामने है अट्टालिका, तरुमालिका जो परकोटे में बन्द है। सामा क विशमता का यह चित्र लोगों के मन में आक्रोष भर देता है। यहाँ प्रगतिवादी कवि का लक्ष्य भी है।

3. धनिक वर्ग को इतना असंवेदनषील दिखात गया है कि वह मजदूरनी को अपने पेड़ की

छाया में भी नहीं बिठा सकते। पेड़ उसने परकोटे के भीतर बन्द कर रखे हैं।

4. सामान्य विशय पर असामान्य कविता लिख सकना निराला जैसे समर्थ कवि के लिए

ही सम्भव था।

5. सहज, सरल, प्रवाहपूर्ण भाशा का प्रयोग हैं जिसमें संस्कृत षब्दावली भी दिख जाती है।

6. मुक्त छन्द, अनुप्रास की छटा, प्रसाद गुणो चढ़ रही थी धूप,

गर्मियों के दिन,

दिवा का तमतमाता रूप,

उठी झुलसाती हुई लू,

रूई ज्यों जलती हुई

गर्द चिनगी छा गई, प्रायः हुई दोपहर– वह तोड़ती पत्थर

षब्दार्थ– चढ़ रही थी धूप धी बढ़ती जा रही थी। दिवा = दिन। तमतमाता गर्म। झुलसाती = बदल को जमा देने वाली। लू गर्म हवा के थपेड़े। भू– पृथ्वी। गर्द = धूला चिनगी चिनगारियाँ

प्रसंग – इलाहाबाद की एक सड़क पर निराला जी ने एक मजदूरनी को धूप में बैठे हुए पत्थर तोड़ते हुए देख । गर्मी के दिन थे, ताप बढ़ रही था, लू चल रही थी चरन्तु वह इन विपरीत परिस्थितियों में भी पत्थर तोड़ने का कार्य कर रही थी। इन पंक्तियों में कवि ने इसी वष्तान्त का वर्णन किया है।

व्याख्या– निराला जी देखा कि गर्मी के दिनों में धूप की तीव्रता बढ़ती जा रही थी। सूर्य निरन्तर प्रखर होता जा रहा था और दिन तमतमाता हुआ जैसे और भी तीव्र ताप उगल रहा था। गर्म हवा के तेज झोंके लू के रूप में चलने लगे। पष्थ्वी रूई की भाँति जल रही थी। हवा में उड़ी हुई धूल रूपी चिनगारियाँ चारों ओर छा गयीं। अब लगभग दोपहर हो रही थी, किन्तु इन विपरीत परिस्थितियों में भी वह मजदूरनी पत्थर तोड़ने का काम निरन्तर कर रही थी।

विषेश– 1. दिवा का तपतमाता रूप में लग है। अलंकार की दृश्टि से इसमें मानवीकरण है।

2. रुई ज्यों जलती हुई भू में उपमा अलंकार है ।

3. गर्द चिनगी गर्द रूपी चिनगारियों में रूपक अलंकार है ।

4. सहज, सरल, प्रवाहपूर्ण भाश का प्रयोग है।

5. मजदूरनी को विपरीत परिस्थितियों में भी काम करना पड़ रहा है। यहीं दिखाना कवि का

लक्ष्य है।

6. प्रगतिवादी भावना, सामाजिक विशमता का चित्रण, गरीबों के प्रति सहानुभूति का भाव है।

देखते देखा, मुझे तो एक बार,

उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार,

देख कर कोई नहीं,

देखा मुझे उस दृश्टि से,

जो मार खा रोई नहीं।

सजा सहज सितार।

सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार द्य एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर

ढुलक माथे से गिरे सीकर,

लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा– ष्मैं तोड़ती पत्थरराष

षब्दार्थ– छिन्न–तार – टूटी हुई, खण्डित, काम रोककरा झंकार – षिराओं को झंकृत कर देने वाली स्वर–लहरी, अतिषय मधुर स्वर । सुवर = सुन्दर, रूचिर सुश्टां सीकर = पसीने की बूँदें।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में कविवर निराला जी ने पूँजीवादी व्यवस्था से पीड़ित – षोशित दीन–हीन मजदूरिनी की दैन्यता एवं विवषता का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या– कविवर निराला जी इलाहाबाद के मार्ग पर पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी के प्रत्यक्ष–दर्षन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं उसकी ओर देख रहा था, देखने को उसने भी मुझे देख लिया था। एक बार उसने मुझे देखा और एक बार उस भवन की ओर देखा, जो सामने वक्षों की कतारों के बीच में स्थित होकर अपना वैभवं बिखेर रहा था। इसके बाद उसने एक बार छिन्नतार हुए (अर्थात् जिसके धागे जीर्ण–षीर्ण होकर टूट चुके थे) अपने वस्त्रों की ओर देखा और यह देखकर कि वहाँ अन्य कोई नहीं है, इस प्रकार की कातर दृश्टि से उसने मुझे देखा, जैसे कोई मार खाने पर भी अर्थात् पीटा जाने पर भी न रोए। उस समय उसकी दृश्टि में जो कातरता होती है, वैसी ही कातरता उसकी दृश्टि में भी झलक रही थी।

आगे कवि ममन्तिक अनुभूति को रेखांकित करता हुआ कहता है कि मैंने भली प्रकार से सजा गए सितार पर भी वैसी ममन्तिक झंकार कभी न सुनी भी जैसी झंकार उसकी कातर दृश्टि मुझे सुन षायी थी। एक क्षण के बाद सुघर (सुगठित षरीर वाली) मजदूरनी काँप उठी थी, अर्थात् पूँजीवा व्यवस्था के षोशण व उत्पीड़न से वह मर्माहत हो गयी थी। उसके माथे से पसीने की बूंदे नीचे पत्थ पर गिर गयी थी, जिन्हें वह हथौड़े से तोड़ रही थी, मानों उसने उन पजल बिन्दुओं (पसीने की बूँदों के माध्यम से ये षब्द कह दिए थे कि ष्मैं पत्थर तोड़ रही हूँ।

कवि का आषय यह है कि जो नारी भारतीय संस्कृति में गष्ह–षोभा, गष्ह लक्ष्मी कही जा है, वही नारी आज इस मजदूरनी के रूप में पत्थर तोड़ती हुई भारतीय संस्कृति कीउक्त मान्यता के प्रति मुझसे व्यंग्य कर रही थी क्योंकि उसकी उक्त दीन–हीन दषा का कारण भारतीय समाज की पूँजीवादी व्यवस्था है।

विषेश– 1. उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकारों का सौन्दर्य दर्षनीय है।

2. जो मार खा रोयी नहींष– पंक्ति में मजदूरों की मार्मिक पीड़ा मुखरित हो उठी है। 3. श्रमिक सर्वहारा वर्ग के प्रति कवि की सच्ची सहानुभूति साकार होती हुई परिलक्षित होती है।

4. कवि का सूक्ष्म निरीक्षण अवलोकनीय है। परिवेष और क्रियाओं का जैसा यथार्थ निरूपण

यहाँ हुआ है,

है, वह अद्भुत है।

5. कविवर निराला के सौन्दर्य–चित्र अनुपम हैं। वे सौन्दर्य को एक नयी भागमा से निहारते और निररूपित करते हैं। और तो और उन्होंरू अपनी पुत्री सरोज के नव– तारुण्य का रूचिर

चित्रण किया है। इस कविता की ष्वहष् हो भी उन्होंने यथार्थ प्रेरित चित्रांकन किया है। यह कविता एक नये सौन्दर्यषास्त्र की माँग करती है।

6. अट्टालिका को षोशण के केन्द्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसकी ओर ष्वहष् (उस ष्यामा युवती) का छिन्नतार निहारना और किसी को निगरानी न करता पाकर थोड़ा आष्वस्त होना इसी ओर संकेत करता है।

7. कवि ने मौन की वाणी की प्रभावषीलता का अद्भुत वर्णन किया है। आज की भाशा में जिसे ष्बॉडी लैंग्वेजष् कहा जाता है, कवि ने वैखरी पर उसकी श्रेश्ठता सिद्ध की है। श्कह देने से अनकहा कहीं ज्यादा प्रभावषाली रहता है।श्— कवि ने इसी तथ्य एवं सत्य को प्रकट और स्थापित किया है।

8. मुक्त छन्द, सहज—सरल, भावानुरूपिनी भाशा और अभिव्यक्ति की नवल नूतन भोगमा से

कविता को प्रभावोत्पादकता बढ़ी है।

(उमेन्द्र सिंह)

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1 **नई कविता का इतिहास,, बैजनाथ सिंहल संजय प्रकाशन दिल्ली ,,पृष्ठ संख्या** 1977

2 **नई कविता ,,ओमप्रकाश अवस्थी पुस्तक संस्थान कानपुर पृष्ठ संख्या** 1972

3 **आधुनिक हिंदी कविता में व्यक्तित्व अंकन ,,सरजू प्रसाद मिश्रा पुस्तक संस्थान कानपुर पृष्ठ संख्या** 1977

4 **आधुनिक काव्य प्रवृत्तियां एक पुनर्मूल्यांकन,, गणेश खरे पुस्तक संस्थान कानपुर पृष्ठ संख्या** 1976

5 **काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका कमल कुमार,,, प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली पृष्ठ संख्या** 1988

6 **आधुनिक कवि और उनका काव्य,,, दयानंद शर्मा अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर पृष्ठ संख्या** 1989

7 **हिन्दी की नई कविता,, व्ही नारायण कुट्टी अनुसंधान प्रकाशन कानपुर पृष्ठ संख्या** 1968

MATS UNIVERSITY

MATS CENTER FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS : Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 M : 9109951184, 9755199381 Toll Free : 1800 123 819999

eMail : admissions@matsuniversity.ac.in Website : www.matsodl.com